– श्री सच्चिदानन्दायनमः –

अद्वैतानन्द

या

सच्चिदानन्द प्रकाश

(दसवाँ भाग)



जिसमें

पूज्यपाद श्री सतगुरु दयाल श्रीश्री १०८ श्री स्वामी

अद्वैतानन्द जी महाराज परमहंस

के

परमोपयोगी उपदेश

प्राप्ति स्थान :

श्री सच्चिदानन्द सत्संग प्रकाश,

श्री अद्वैत आश्रम, कृष्णानगर, मथुरा.

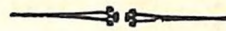
* श्रीसच्चिदानन्दायनमः *

अद्वैतानन्द

या

सच्चिदानन्द प्रकाश

(दसवाँ भाग)



जिसमें

पूज्यपाद श्री सतगुरु दयाल श्रीश्री १०८ श्री स्वामी अद्वैतानन्द जी महाराज परमहंस के

परमोपयोगी उपदेश



२०००] १९६८ [मूल्य ३)

प्रकाशक :—
श्री सच्चिदानन्द सत्संग प्रकाश,
श्री अद्वैत आश्रम, कृष्णानगर,
मथुरा.

मुद्रक :—
श्री हैमेन्द्रकुमार, बी. एस-सी., एल-एल. बी.
साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा.





श्री १०८ श्री स्वामी अद्वैतानन्द परमहंस महाराज

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥

अर्थात्—प्रणव तो धनुष है और जीवात्मा वाण के सदृश है। ब्रह्म को उसका लक्ष्य कहते हैं प्रमाद रहित (सतत सावधान) मनुष्य के द्वारा वह लक्ष्य वीधा जाने योग्य है, इसलिये साधक को उचित है कि उस लक्ष्य को वेधकर वाण की ही भाँति उसमें तन्मय हो जाय-सब वन्धनों से मुक्ति हो सदा परमेश्वर के चिन्तन में ही तत्पर रह कर तन्मय हो जाय।

(मुण्डकोपनिषद २।२।४)

श्री सतगुरु के चरणों में

तदहं सर्व प्रवक्ष्यामि, लोकानां हित काम्यया ।
येन विज्ञान मात्रेण, सर्वज्ञत्वं प्रपदयते ॥

ध्यान मूलं गुरोमूर्तिः, पूजा मूलं गुरु पदम् ।
मंत्र मूलं गुरोर्वाक्यम्, मोक्ष मूलं गुरोः कृपा ॥

पिता माता सुहृदबन्धु, विद्या तीर्थानि च देवता ।
न तुल्य गुरु सदृशो, शीघ्रं स्पृशन्यन्तु परमंपदम् ॥

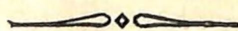
मुहब्बत तुझसे गर मुझको, न मेरे सतगुरु होती ।
कलम की ऐसे मज़मूं की, न हरगिज जुस्तजू होती ॥

यह एक तेरी मुहब्बत में, फकत तेरी मोहब्बत में ।
मेरा क्या सर फिरा था, यह जो पोथी लिखके मैं, धरता ॥
ज्वाहर कान से लेकर, सदीकों की नजर करता ।
जबां में सोज पैदा हो गया, तेरी मोहब्बत में ॥

यूं कौन जाने दरदे, मुहब्बत को न सहा ।
वह जाने जिसके चोट हो, दिल पर लगी हुई ॥
न सूरत देखता तेरी, न तुझ से गुफतगू होती ।
न कोई मुददया होता, न कोई आरजू होती ॥

जख्म वह दिल पर लगा है के दिखाये न बने ।
और जो चाहे छुपा ले, तो छुपाये न बने ॥

यह खबर तो कब है मुझको, के कशिश वह क्या है तुममें ।
यह इतना जानता हूँ, मेरा दिल पड़ा है तुम में ॥



ॐ

श्री अद्वैतानन्द

अर्थात्

श्री सच्चिदानन्द प्रकाश

भाग १०

(१) एक आदमी ने प्रश्न किया कि ज्ञान हो जाने से यह मन संसार में रह कर भी संसार से बिलग है, यह कैसे हो सकता है ? जो मन संसार में इतना फँसा और मिला हुआ हो वह एक दम से ऐसा अलग हो जाय, ऐसा किस तरह हो सकता है ? कमल-पत्र और जल का दृष्टान्त भी ठीक नहीं बैठता क्योंकि कमल-पत्र जिस दिन से पैदा होता है उसी दिन से जल से अलग रहता है और उसका स्वभाव आदि से ही ऐसा है। मन का स्वभाव उसके प्रतिकूल है वह तो आरम्भ ही से संसारी है। ऐसा कोई उदाहरण नहीं जिसमें कोई वस्तु पहले मिली हो फिर अलग हो जाये।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि इसके उदाहरण की आवश्यकता ही क्या है। यह तो नित्य व्यवहार की बात है। दो मनुष्यों के दिल आपस में मिले हुए होते हैं। जब किसी कारण से मन फट जाते हैं तो पास और साथ रहने पर भी दोनों को मन अलग-अलग हो जाता है। दृष्टान्त के तौर पर दूध और जल को ले लो आपस में मिले रहते हैं; परन्तु दूध को मथ कर निकाला गया मक्खन सदैव जल में पड़ा रहे तब भी जल में मिलता नहीं। इसी तरह से ज्ञान रूपी मथानी द्वारा जो मन संसार से अलग हो जाता है वह संसार में रहता हुआ भी संसार में लिप्त नहीं रहता। उससे कोई ऐसा कर्म नहीं बनता जिससे फल की आशा हो या आगे के लिए संचित हो सके। उसका शरीर ऐसे काम करता है जैसे कुम्हार खाली चाक को चला कर छोड़ दे तो उससे

बर्तन नहीं बन सकते, परन्तु वह घूमता अवश्य ही रहेगा। इसी तरह से ज्ञानी की शरीर यात्रा होती रहती है, परन्तु आगे के लिए कर्म नहीं बनते।

२—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि संसार में जितने काम हैं यानी सेवा, दुकानदारी, खेती-बाड़ी, वाणिज्य-व्यापार और राज-काज, इन सबके करने वाले और चलाने वाले तीन प्रकार के होते हैं। प्रथम, वे जो नया राज्य स्थापित कर लें और उसको अच्छी भाँति चलायें। द्वितीय, वे जो स्थापित तो न कर सकें, परन्तु स्थापित राज्य को भली भाँति चलायें। बल्कि, जैसे चल रहा था उससे भी अच्छी तरह करके दिखायें। तीसरे, वे मनुष्य हैं कि उनमें राज्य स्थापित करने की सामर्थ्य भी नहीं है और चलता हुआ राज्य उनको मिल जाये तो उसको भी ठीक तरह नहीं चला सकें उल्टा उसे खण्ड-खण्ड कर दें। इसी तरह से नई दुकान हाथ आ जाये तो उसे उसी भाँति चलाते रहना या बढ़ा देना, या चलती हुई दुकान को बैठा देना और दिवाला पीट देना। एक भेद और है; कर्म करने की नीति और सहकारिता या सहायता। जैसे राजकाज या दुकानदारी अकेले नहीं हुआ करती इसमें बहुत से मनुष्यों की सहायता की आवश्यकता होती है। राज्य में बड़े और छोटे कर्मचारी, फ़ौज, पलटन, पुलिस आदि ठीक प्रबन्ध के लिए आवश्यक हैं। उनकी सहायता ठीक प्रकार न मिले तो वे राज के विरोधी हैं। स्वयं अपनी प्रकृति या दूसरों के बहकाने से राज भंग करने के इच्छुक हों; दूसरी बात यह है कि राजा या मन्त्री की नीति कटु हो तो उससे कर्मचारी दुःखी होकर राजा को परास्त करने पर तत्पर हो जाता है दुकानदारी में प्रबन्ध ठीक न हो या स्वामी का स्वभाव या बर्ताव बुरा हो तो उससे तंग आकर मुनीम, गुमाश्ता और सेवक ख़राबी पैदा कर देते हैं या राज के कर्मचारी स्वयं खोटे हों या घूंस खाने वाले हों तो भी काम बिगड़ जाता है। इसी भाँति दुकानदारी, वाणिज्य-व्यापार, खेती-बाड़ी में नौकर-चाकर बेईमान, हरामख़ोर हों, चोरी करें, माल उड़ा दें, काम में आलस्य करें तब भी वह कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिए बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि इन सब बातों पर ध्यान देता रहे और जहाँ त्रुटि दिखलाई दे उसको ठीक करे, तब ही कार्य में सिद्धता प्राप्त हो सकती है और कार्य ठीक हो सकता है।

३—एक मनुष्य ने प्रार्थना की कि खान-पान के बारे में आप बात-चीत पसन्द नहीं करते और न राय देते हैं कि क्या खाना चाहिए और क्या नहीं। खाने वाले पदार्थों में मांस ऐसी चीज़ है जिस पर बहुत मतभेद है। खाने को हर मनुष्य की इच्छा है उस पर मुझे कोई ऐतराज़ नहीं। अपने जीवन को ठीक बनाने के लिए मैं यह जानना चाहता हूँ कि इसका असूल क्या है? श्रीमहाराज ने फ़रमाया कि चार प्रकार की जो सृष्टि है वह सब पांच तत्व से ही बनी है। तत्वों की न्यूनता और अधिकता, गुण, कर्म के भेद से चार प्रकार की हो गई है। फिर प्रत्येक प्रकार की सृष्टि के अन्दर भी गुण, कर्म, स्वभाव का भेद है। जैसे अण्डज में पक्षी, पक्षी के अण्डों में गुणों का भेद है। जेरज में भी यही बात है, परन्तु पांच तत्व न्यूनता और अधिकता के साथ सब में वर्तमान हैं। इसी से उनके गुणों में भी भेद हो गया है। जैसे पशु में पशुत्व; यह भाव धातु, पक्षी, पशु, मनुष्य सब में वर्तमान है। किसी में अधिक किसी में न्यून। शरीर को स्थिर रखने के लिए सब गुणों की आवश्यकता है। किसी मनुष्य में अगर पशुत्व कम हो गया है, उसको पूरा करना है। अगर तामसी गुण की बहुत कमी हो गई है तो पशु मांस की ज़रूरत है। अगर राजसी गुण की कमी है तो धातु में पशुत्व गुण वाले द्रव्य खिलाने चाहिए। अगर सात्विकी गुण में पशुत्व गुण को कमी है तो वनस्पति में पशुत्व गुण वाली वस्तु खिलानी चाहिए। मांस की जगह कटहल का साग समझ लो। उसमें मांस का सारांश होता है और बकरे के अण्डकोष की तरह बीज होते हैं। कटहल के बीज शक्तिवर्धक हैं और बकरे के अण्डकोष भी शक्ति बढ़ाते हैं। इसी तरह से वैदिक शास्त्र के पढ़ने और वैद्यों से राय लेकर अपने भोजन की विधि और अनुपान ठीक कर लें। निघण्टु आदि शास्त्रों में धातु, वनस्पति, पशु-पक्षी सब के गुण, उनके मांसों के गुण और दोष निर्णय कर के लिखे हैं।

४—एक रोज़ दो आदमी इत्तफ़ाक़ से साथ २ हाज़िर हुए। उनका आपस में बहुत झगड़ा था और मुकद्दमा-बाज़ी चल रही थी। बहुत धन उठ चुका था, अब दोनों राज़ीनामा करना चाहते थे, परन्तु अपनी २ ज़िद पर अड़े हुए थे।

श्री महाराज ने समझाने के लिए फ़रमाया कि जैसी प्रकृति होती है वैसा ही मनुष्य को अच्छा लगता है। सात्विकी मनुष्यों का मेल-मिलाप, नरमाई, चिकनाई, झुकाई, आदि से होता है। जैसे दूध और पानी को मिलाओ, झट मिल जायेंगे। मोम के दो टुकड़ों को गर्म करके मिलाओ झट मिल जायेंगे। लेही, गोंद, घी-तेल आदि चिकने पदार्थों से जड़ वस्तु मिल जाती हैं। दो नर्म वस्तुओं को झुका कर मिला देते हैं। रंग को पानी में घोल दो, मिल जाता है। रजोगुण प्रकृति का मेल गर्माई, पिघलाई, कटाई, झड़ाई, घिसाई, घुटाई, रगड़ाई आदि से होता है। सोने, चांदी आदि को गर्म करके पिघलाओ तो आपस में मिल जाते हैं। लकड़ी के दो टुकड़ों को ज़रा-ज़रा काट कर एक दूसरे के ऊपर चढ़ा देते हैं, फिर रंदे से छांट कर, रेती से घिस कर और रगड़ कर जोड़ देते हैं। तमोगुण प्रकृति का मेल झलाई, पिटाई, ठुकाई, घिसाई आदि से होता है। जैसे दो लोहे के टुकड़े लाल गर्म करके एक-दूसरे पर रख कर चोटें मारने से जुड़ जाते हैं। सख़्त चीज़ को रेती से घिस २ कर पीसकर मिलाते हैं। लोहे और लकड़ी में छेद कर के कीलों और पेचों को अन्दर डाल कर जोड़ देते हैं। आप लोगों ने अदालत में कितना धन ख़र्च कर दिया। अगर इसके दसवें भाग से एक भी दब जाता और बर्दाश्त कर लेता तो मामला शुरू में ही तय हो जाता।

५—एक दिन इर्शाद हुआ कि मनुष्य चाहे कितना भी धन संचय करे, चाहे जितना वैभव पैदा कर ले, परन्तु हृदय का सुख और शान्ति उसी को प्राप्त होती है जो माता-पिता, राजा, हाकिम और गुरु का आज्ञाकारी होता है। चाहे कोई जितनी विद्या पढ़ ले उसके सच्चे अर्थ उसी की समझ में आते हैं जो गुरु की सेवा करता है और उनका आशीर्वाद प्राप्त करता है। कोई चाहे जितना जप, तप और योग कर ले मुक्ति उसी को मिलती है जो भगवान का सच्चा भक्त और शरणार्थी होता है।

६—एक सेवक ने पूछा कि भजन किस तरह से करना चाहिए और उसके ठीक होने का क्या चिह्न है?

श्री महाराज ने फ़रमाया कि जैसे सेवा करने का इच्छुक स्वामी के पास जाकर अपना मनोरथ कह देता है कि मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ और

स्वामी उसको स्वीकार कर लेता है तो फिर सेवक को गुरु और स्वामी से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती, स्वामी स्वयं ही उसके खान-पान, भरण-पोषण की देखभाल करता है। बीमार हो तो उसकी दवा-दारू का प्रबन्ध करता है। सेवक तो हर समय अपने स्वामी की ओर आंख, कान और ध्यान लगायें बैठा रहता है और यह प्रतीक्षा करता है कि स्वामी क्या आज्ञा करते हैं जिसको सुनकर पूरा करूं। माला फेरना, मुख से, कंठ से, हृदय से जाप करना भी महात्माओं का बताया रास्ता है। भक्त को ईश्वर-परायण हो जाना चाहिए और ईश्वर की ओर ही ध्यान लगाए रखना चाहिए। फिर तो हर सेवा के लिए ईश्वर की ओर से ही आज्ञा होगी। उसको हित-चित से सुने। उसकी आवाज़ की तरफ ही ध्यान लगाए रहे। भजन के ठीक होने का चिह्न यही है। फल यह होगा कि:—

'कर का जपूं न मनका जपूं, मुख से कहूँ न राम।
राम हमारो हमें भजे, हम पायो विश्राम॥

७—एक आदमी ने अर्ज़ किया कि भगवान का क्या स्वरूप है और किस कर्म से वह प्रसन्न होता है?

श्री महाराज ने फ़रमाया कि जो कुछ प्राचीन ऋषि महात्माओं और समय २ के गुरु और उपदेशकों ने जो स्वरूप भगवान का बतलाया है अगर उस पर निश्चय आ गया तो उसी को भगवान का स्वरूप समझना चाहिए। विधि और निषेध को मानना चाहिए। रही यह बात कि ईश्वर क्या है, कहाँ है और क्या करता है? इसकी क्या गरज़ है और कब से है, क्यों कर हुआ है और कब तक रहेगा, उसका नाम क्या है और उसकी शक्ल कैसी है, और कौन से शुभ कर्म से प्रसन्न और कौन से अशुभ कर्म से अप्रसन्न होता है और कितना बड़ा है? इन सब बातों की वास्तविकता को कोई नहीं जानता। यह हाल उसने किसी को नहीं बतलाया और जिस पर कुछ खुल गया वह कुछ न कह सका। गूंगे का गुड़ हो गया।

पड़े भटकते हैं हज़ार मुल्ला, करोड़ पंडित व लाख सयाने।
ग़ौर करके जो खूब देखा, खुदा की बातें खुदा ही जाने॥

८—एक रोज़ प्रसाद बटा, कुछ लोग लेकर चले गये, कुछ प्रसाद

को हाथ में लिए बैठे रहे, कुछ ने जेब में धर लिया। एक सेवक को ज़्यादा प्रसाद दिया जा रहा था उसने कहा कि मुझे बहुत थोड़ा सा दो और उसको हाथ में लेकर माथे से लगाया और खा गये। उनसे पूछा गया कि आपने थोड़ा सा प्रसाद क्यों लिया तो बोले कि प्रसाद सम्हाल कर रखने की वस्तु नहीं है और उसका स्थान जेब या घर का बर्तन नहीं। हाथ में लेना, मुँह में डालना और पेट में पहुँचा देना चाहिए। जितना थोड़ा-थोड़ा प्रसाद बटेगा उतने ही ज़्यादा मनुष्यों को मिल सकेगा। ऐसी अनमोल वस्तु से जितने ज़्यादा मनुष्य लाभ उठावें उतना ही अच्छा है। यह पेट भरने की चीज़ नहीं है, भक्ति-भाव को स्थित रखने और बढ़ाने की सामग्री है।

९—एक मनुष्य ने अर्ज़ किया कि संसार से यह देखने में आ रहा है कि नेक और धर्मात्मा मनुष्यों को तकलीफ रहती है और दण्ड मिलता है। गुण्डे मौज उड़ाते हैं और इतने खोटे कर्म करते हैं कि गिनती नहीं हो सकती। फिर भी दण्ड तो क्या, उल्टे फलते-फूलते हैं।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि किसी कीमती रेशमी कपड़े पर ज़रा सा दाग़ या धब्बा लग जाये तो फौरन उसको साबुन लगाकर मला और खूब धोया जाता है और धब्बे को छुटा और मिटा कर साफ किया जाता है क्योंकि कद्र वाली और काम की चीज़ है। कम्बल, गुदड़ी और कथरी आदि मामूली वस्तु पर दाग़ और धब्बा लगे तो धोया-मली कुछ भी नहीं की जाती वे वैसे ही फट २ कर धज्जियाँ उड़ २ कर नाश हो जाते हैं। इसी तरह धर्मात्मा मनुष्य से परमात्मा नाना प्रकार के काम लेते हैं, इसलिए उनको स्वस्थ और स्वच्छ शरीर, वाणी, कर्म, मन और विचार ठीक रखने की ज़रूरत होती है। ज़रा सी भूल-चूक भी हो तो उसका प्रायश्चित कराके ठीक किया जाता है। गुण्डे और दुष्टों से संसार की क्या भलाई होती है वह तो नर्क का ईंधन हैं, उसमें एकदम से झोंक कर उनको नष्ट किया जाता है। मामूली सफ़ाई और धुलाई की ज़रूरत ऐसे दुष्टों के लिए बेकार है।

१०—एक रोज़ किसी ने अर्ज़ किया कि गीता के पहले श्लोक में 'धर्म-क्षेत्रे कुरु-क्षेत्रे' लिखा है। जहाँ मारकाट और लड़ाई हुई हो उसको धर्म-क्षेत्र क्यों कहा गया?

श्री महाराज ने फ़रमाया कि महाभारत का युद्ध मारकाट और नाश के लिये नहीं हुआ था। बात यह थी कि कौरव और पाण्डव दोनों अपने को धर्म पर कहते थे। यह निश्चय करने के लिये कि कौन धर्म पर है वहाँ एकत्रित हुए। संजय ने धृतराष्ट्र के प्रश्न के उत्तर में कह दिया था, "यतो धर्मस्ततो जयः", जिधर धर्म है उधर ही जय होगी। युद्ध में पाण्डवों की ओर धर्म का होना निश्चय हो गया, क्योंकि श्रीकृष्ण भगवान् उस ओर थे और भगवान् सर्वदा धर्म की ओर होते हैं। दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि यह मनुष्य शरीर ही धर्म और कर्म का क्षेत्र है। इसमें जो कर्म किया जाता है उसका फल आगे होता है और जितने धर्म, कर्म हैं उन सबकी साधना का यही "क्षेत्र" है। इसीलिये देवता तक मनुष्य शरीर की प्राप्ति के इच्छुक होते हैं। पशु, पक्षी आदि जितनी भी योनियाँ और शरीर हैं वे सब भोग योनि हैं। जैसा कर्म पहले किया है उसका भोग भोगने को वह शरीर मिला है उससे आगे कोई कर्म नहीं बनता। उदाहरणार्थ अगर कोई मनुष्य किसी को मार डाले तो उस कर्म का फल उसको भोगना पड़ेगा परन्तु गाय, बैल, घोड़ा, शेर आदि किसी को मार डालें तो उनको यह कर्म नहीं लगता। न ही भविष्य में उसका फल भोगना पड़ता है। वह तो किसी पहले कर्म के आधीन होकर ऐसा करने पर विवश होते हैं।

११—एक रोज़ किसी ने प्रश्न किया कि ब्राह्मणों को ही संन्यास का क्यों अधिकार है? दूसरे वर्णों को क्यों नहीं?

श्री महाराज ने फ़रमाया कि बिल्कुल ठीक है। कारण बतलाना तो मुश्किल है। ऐसा पता चलता है कि ब्राह्मणों का काम धर्म का प्रचार और कथा-वार्ता, ग्रह-नक्षत्र का हाल बतलाना इत्यादि था। पहले छापे का काम न था, पुस्तकें मुशिकल से मिलती थीं। फिर पुस्तकों को नाई की पेटी की तरह साथ-साथ बाँधे फिरना भी दुखदाई होता था। इसीलिये सब विद्या कण्ठ कर ली जाती थीं जिससे वह चाहे गृहस्थ आश्रम में हों, चाहे वानप्रस्थ या संन्यास में उनका काम हर समय ठीक चलता था। आश्रम बदलने से कोई बाधा नहीं पड़ती थी बाकी सब वर्णों का कर्म इस तरह का है कि किसी नियत स्थान पर करने से ही ठीक होता है। जगह-जगह और रोज़-रोज़ लिये फिरने से हानि

होती है। दुकानदारी, खेती-बाड़ी और दस्तकारी यह सब काम एक स्थान पर हुआ करते हैं, जब इन कामों के करने वाले संन्यासी हो जायेंगे तो सर्व जनता को लाभ पहुँचाने वाले कर्मों में भी बाधा हो जायेगी इससे संसार की सेवा के बजाय उल्टी हानि हो जायेगी। इसके उपरान्त और भी बहुत सी बातें हो सकती हैं। योग आदि कर्मों और संन्यास के नियमों को पालन करने के लिये बुद्धि, विवेक, विचार, प्रकृति, गुण स्वभाव और दिमाग़ की योग्यता जैसे ब्राह्मणों की बढ़ी चढ़ी होती थी ऐसी दूसरे वर्णों की नहीं हो सकती थी।

१२—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि संसार में तीन प्रकार का सम्बन्ध माना गया है। पहला लौकिक यानि रिश्ता-नाता। दूसरा वैदिक, यानि गुरु-शिष्य। तीसरा तादात्म्य पहले दो सम्बन्धों में अनुमान और प्रमाण, सद्‌गुण और असद्‌गुण परिवर्तन होता रहता है। तादात्म्य सम्बन्ध एक रस रहता है।

१३—एक मनुष्य ने किसी पंचायत का ज़िक्र किया कि उसमें न्याय ठीक नहीं हो सका। पंच ऐसे वैसे आदमी थे। श्रीमहाराज ने फ़रमाया कि सच्चाई मालूम करने और न्याय करने के लिये बहुत सी बातों की आवश्यकता है (१) पैर से चल कर वस्तु को देखना कि वह कैसी है, (२) हाथ से छू कर मालूम करना कि वह नर्म या कड़ी है। (३) जिह्वा से चख कर पता लगाना कि मीठी है या कड़वी। (४) नाक से सूँघ कर खुशबू और बदबू का हाल मालूम करना। (५) कान से सुन कर ठोस या पोली होने का भाव मालूम करना। (६) आँख से देख कर सफ़ेद काले का फ़ैसला करना। (७) त्वचा से गर्म ठण्डे का पता लगाना। (८) वाणी से पूछ-ताछ। (९) मन से संकल्प विकल्प करके परिणाम निकालना। (१०) चित्त से चिन्तन करना कि किस से लाभ और किससे हानि है। (११) अहंकार इसमें देखना कि वास्तविक क्या है। ऐसा न हो कि पंचों की बात सर माथे, पर परनाला यहीं गिरेगा। (१२) बुद्धि से निश्चय करना। (१३) तीनों गुणों से प्रकृति और स्वभाव का पता लगाना। (१४) आत्मभाव से न्याय करना अर्थात् दसों इन्द्रियों, चारों अन्तःकरण, तीन गुण और जीवात्मा इन सबके द्वारा निर्णय करने में ठीक न्याय होता है। वैदिक में भी १६ प्रकार से निदान होता है। पेशाब, पाख़ाना तक जांचा जाता है।

१४—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि आम तौर से साधुओं के मुँह से अमीरों और धनवान गृहस्थियों की बुराई सुनी जाती है । किसी ने तो ऐसा भी लिख दिया है कि: —"सुत दारा और लक्ष्मी, पापी के घर होय ।" गोया जिनके पास यह सामग्री होती है वे पापी समझे जाते हैं । हमको यह बात पसन्द नहीं । जिस हँडिया में खाना उसी में छेद करना भलाई का काम नहीं । गृहस्थियों को छोड़ दीजिये साधुओं का भी कौन सा काम बिना पैसों के चलता है और कुछ नहीं तो खाने पहरने के लिए ही धन की आवश्यकता पड़ती है । धनवान न हों और वह दान न दें तो ये वस्तुऐं कहाँ से आयें । साधू भी तो आख़िर स्त्री से ही पैदा होते हैं । तो फिर उस माता रूप की निन्दा क्यों करना । चेले भी तो स्त्रियों से पैदा होते हैं—गृहस्थियों में उत्पन्न हुए मनुष्यों में से ही बनाये जाते हैं । ऐसा न हो तो अकेले बाबाजी कितने दिन चलेंगे ? हमारा कहना तो यह है कि (१) जितना धन कमाया जाये कमाओ, (२) जितना धन बचाया जाये बचाओ । (३) जितना धन जोड़ा जाये जोड़ो । (४) जितना धन दिया जाये दो । स्वराज्य और जनराज्य में भी ऐसा बर्ताव और समान अधिकार धनवान ही कर सकते हैं । क्या भिखारी और निर्धन सबको अपने जैसा बना कर समान अधिकार के भाव को पूरा कर देंगे । जिस जाति, धर्म, मत, सभा व फ़िरक़ा के मनुष्य कम हैं या ग़रीब हैं या बेरोज़गार हैं, उनको धन्धे में लगा कर थोड़ा परिश्रम करा-कर सुख पूर्वक जीवन बिताने के लिए जितने धन की, मज़दूरी की, आवश्यकता है वह देकर और देश के क़ानून में उनका समान अधिकार समझ कर उनको सुखी बनाना, यह धनवानों, गुणवानों और बहुसंख्यक मनुष्यों का ही काम है । समान अधिकार मानने वाली बहुत सी जातियाँ यह कहती हैं कि राज्य ही मुख्य चीज़ है जो छोटे-बड़ों को अमीर ग़रीबों को समान अधिकार दे सकता है । हम अक्सर "राज्य" की जगह "हर जीव" को रखते हैं और उससे प्रार्थना करते हैं कि वह अपनी समझ, बूझ, बुद्धि, मन, वाणी, शरीर व धन से सबके साथ समानता का बर्ताव करें । राज्य के सिर पर इसका बोझा डालने की आवश्यकता ही क्या है ? जब हर एक प्राणी ऐसा करने लगेगा तो फिर राज्य के लिए काम ही क्या रहेगा ? या दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि हर जीव राजा हो गया ।

नौ

अब विचार कीजिए कि स्वराज्य इससे ज़्यादा और क्या हो सकता है। राजा के अधिकार और राजा की ज़िम्मेदारी हर जीव के सिर पर आ गई। देश उसका, प्रजा उसकी, घर उसका, पुरुष उसके, बच्चे उसके, अमीर उसके, ग़रीब उसके, धन उसका, सब मत और मज़हब उसके। अर्थात् सब कुछ उसी का हो गया। फिर जिस तरह का वर्ताव मनुष्य अपनी वस्तु से करता है वैसा ही सबके साथ करें तो बाक़ी ही क्या रह गया। बहुत धन उत्पन्न करने में बहुत परिश्रम करना पड़ता है। धन पैदा करने का पहला साधन परिश्रम है। परिश्रम और यत्न में मनुष्य तभी लगते हैं जब उनको यह निश्चय हो जाता है कि इस यत्न से हम धन या मनवांछित फल प्राप्त कर लेंगे। इससे यह तो निश्चय हो गया कि धनवान, परिश्रमी, ठीक यत्न करने वाले और श्रद्धालु होते हैं। यह ही गीता का उपदेश है। ठीक युक्ति और यत्न से ही काम के ठीक होने का निश्चय होता है।

१५—एक सेवक ने पूछा कि इस संसार की उत्पत्ति किस तरह से हुई है।

श्री महाराज ने फरमाया कि शास्त्र और महात्मा इस संसार को ब्रह्मा जी का संकल्प और स्वप्न कहते हैं। स्वप्न की वस्तु का क्या नियम और कर्म हो सकता है, परन्तु समझाने के लिए जो कुछ शास्त्रों में लिखा है उसी को मान लेना चाहिए। वेद शास्त्रों में आदि सृष्टि की उत्पत्ति शब्द से मानी गई है। मुसलमान और ईसाई भी शब्द से ही सृष्टि का प्रकट होना मानते हैं श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय सातवें, श्लोक ४-५ में लिखा है कि मेरी दो प्रकार की प्रकृति है। एक अपरा जिसमें आठ बातें हैं, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन बुद्धि और अहंकार, दूसरी परा जीव रूप, चैतन्य प्रकृति है जिससे यह जगत धारण किया जाता है। ये दोनों इस तरह से हैं, जैसे चिराग़ के ऊपर उजाला और नीचे अन्धेरा। परमात्मा इन सब की उत्पत्ति और प्रलय रूप है। अपरा प्रकृति से ऊपर की आठ चीज़ें गिलाफ के तौर पर परा प्रकृति यानी आत्मा को ढकने के लिए प्रकट हुई हैं। मूल प्रकृति यानी तीन गुणों की साम्य रूप या अहङ्कार, महत या बुद्धि, अहङ्कार या उच्च मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध परा प्रकृति के आधार पर ये ठहरे हुए हैं। जैसा

कि श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय १८ श्लोक ६१ में लिखा है कि अन्तर्यामी परमेश्वर शरीर रूपी यन्त्र में आरूढ़ होकर सब प्राणियों को माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमाता हुआ सब के हृदय में स्थित है। फिर मूल प्रकृति से तीन गुण सत, रज, तम यानी विकृत सतोगुणी अहंकार प्रकट हुए। विकृत सतोगुणी अहंकार से मन, तेजस, रजोगुणी अहंकार, प्राण और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ हुई। भूत आदि तमोगुणी अहंकार से तन्मात्रा और पाँच तत्व स्थूल हुए। मन से देवता और मनुष्य हुए। ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों द्वारा पशु पक्षी हुए; तन्मात्रा और स्थूल तत्व से वनस्पति व पहाड़, पत्थर आदि। इन्हीं तीन गुणों व तीन प्रकार के अहंकार से उद्भिज, अण्डज, पिण्डज, स्वदेज उत्पन्न हुए। जब तक यह तीन गुण प्रकट नहीं होते तब तक जगत की उत्पत्ति नहीं होती। जब अपरा प्रवृत्ति की आठों सूरतें पैदा हो जाती हैं तब एक गोलाकार अण्डे की भाँति बनता है। इससे विराट रूप प्रकट होता है जो चार खान चौरासी लाख चराचर स्थावर जंगम का समूह है। इसका वर्णन गरुड़पुराण और भागवत् में पूरा दिया हुआ है। श्रीमद्भगवद्गीता के ग्यारहवें अध्याय के ६ से ३० तक श्लोकों में विराट रूप का वर्णन है। उसको ब्रह्माण्ड भी कहते हैं। आलमे कबीर (बड़ी दुनियाँ) भी उसका नाम है। पिण्ड यानि मनुष्य देह इस छोटी दुनियाँ या ब्रह्माण्ड का पूरा नमूना है। जो कुछ बाहिरी संसार में होता रहता है वह मनुष्य देह में भी होता रहता है। मनुष्य देह ब्रह्माण्ड की रचना का सूक्ष्म परन्तु पूरा नमूना है। हर एक गुण अपने समय पर प्रधान हो कर शेष दो गुणों को दबाये रखता है। इसी को जय गुण, आत्मिक माया कहते हैं। इससे काम क्रोध मोह उत्पन्न होते हैं। जब सतोगुण होता है तब सतयुग प्रकट होता है। उसकी कुल रचना सात्विकी होती है। भगवान् का शुक्ल वर्ण माना है। चारों वर्णों के मनुष्य उसी रूप का ध्यान करते हैं और ऋगवेद के अनुसार सब काम करते हैं। उस वक्त राग द्वेष नहीं होता है। जब रजोगुण प्रधान होता है तो कामना प्रकट होती है जिससे दो भाग राग व द्वेष प्रकट होकर त्रेता व द्वापर युग हो जाते हैं और एक वेद के चार वेद होकर उनकी रीत्यानुसार युग अवतार का ध्यान और युग क्रिया होती है। राग द्वेष के कारण

मनुष्यों के स्वभाव दैवी सम्पत्ति और आसुरी सम्पत्ति वाले होकर दोनों में भेद होने लगता है और तमोगुण रूपी कलियुग प्रकट होता है जिससे धर्म का विचार नहीं रहता और अधर्म की वृद्धि होती है। उस समय देवता एकत्रित होकर भगवान् का ध्यान करते हैं और भगवान् आवश्यकतानुसार शक्ति धारण करके अवतार लेते हैं और वह काम करते हैं जिसका गीता के अ० ४ के श्लोक ७-८ में वर्णन है। साधुओं का उद्धार करते हैं, दुष्टों का नाश करते हैं, धर्म की स्थापना करते हैं जैसा कि श्रीमद्भगवद्गीता आदि ग्रन्थों में लिखा है और सदोपदेश करते हैं।

१६—एक दिन इर्शाद हुआ कि बाबा नानक जी, सन्त कबीर जी, सन्त दादू जी, भक्त रैदासजी और हज़रत ईसामसीह इत्यादि और भी अनेक महात्मा और गुरु हुए हैं जिनका भाव "अहिंसा परमोधर्मः" था। ऐसे महात्मा सच्चे बादशाह माने गये हैं। वैरी से बदला लेना और मूंजी को मारना भी उनके मत में अच्छा नहीं समझा गया। साँप, बिच्छू, शेर, बाघ इत्यादि उनके मतानुसार परमात्मा की ऐसी ही उत्पत्ति हैं जैसे गाय और हंस। मनुष्य मात्र को चाहे वह किसी मत का भी हो ऐसे महात्मा उन्हें ऊँची-नीची नज़र से कब देख सकते थे, और किसी को मारने या दुख देने की आज्ञा कैसे दे सकते थे, यह उनके अन्तरी भाव का चित्र है। क्या कबीरजी को चिढ़ाने और सताने में किसी ने कमी की और हज़रत ईसा के साथ तो अत्याचार की हद ही कर दी परन्तु जैसे पानी की बूँद से पहाड़ नहीं हिल सकता उसी प्रकार उनका निश्चय डगमगाया नहीं और वह इस कठिन परीक्षा में पूरे उतरे। भजन में एक ऐसा स्थान है जहाँ पहुँच कर पक्षपात नष्ट हो जाता है तो क्या अवतार, रसूल और पैग़म्बर इस दर्जे तक भी नहीं पहुँचे थे जो ऐसा कहते कि हम अपने मानने वालों और शिष्यों को इन्साफ के दिन बख्शवा देंगे। क्या उन्हें सब संसार के दुःखों से सहानुभूति न थी। ऐसी बात बुद्धिमान मनुष्यों के हृदय पर कुछ प्रभाव नहीं करती, वे तो प्रभु की कृपा और दया पर इतना विश्वास रखते हैं कि अपने पापों को जानते हुए भी परमात्मा से क्षमा मिलने की आशा रखते हैं। किसी ने सच कहा है—

ज़ाहिद तो बख़्शे जायें, गुनाहगार मुँह तकें,
ऐ रहमते ख़ुदा! तुझे ऐसा न चाहिए।

१७—एक दिन इर्शाद हुआ कि (१) अपनी सामर्थ्य से अधिक खर्च विवाह आदि किसी कार्य में नहीं करना चाहिए, यहाँ तक पुण्य-दान साधू सेवा और धर्म के कामों में भी वित्त से अधिक व्यय करना हानिकारक होता है, इसी कारण समता से चलना चाहिए जब तक रोज़मर्रा के गृहकार्य के खर्च से ऊपर धन एकत्र न हो जाय घर और ज़ेवर न बनाना चाहिए। ऋण लेकर बनवाने से तो यह सब सूद में ही चले जाते हैं। मनुष्य को चाहिए (२) एकान्त में पर स्त्री के साथ कभी न बैठे, यह नियम गृहस्थी और साधू सब के लिए है। स्त्रियों को भी चाहिए कि एकान्त में किसी भी साधू, महात्मा, गुरू तक के पास न बैठें। न तो बात करने के लिए, न ही सेवा और सत्सङ्ग के बहाने से और नशा करने वालों में और कुसङ्गति में न बैठे (३) पर-निन्दा न करे न सुने (४) आर्त्त का दुःख दूर करने और अर्थार्थी का अर्थ सिद्ध करने में जहाँ तक हो सके परिश्रम करना चाहिए। (५) किसी भी मनुष्य के पास जाओ तो नमस्कार व प्रणाम अवश्य करना चाहिए। साधू-महात्मा राजाधिकारी बड़े-बूढ़ों से जहाँ भी मिलना हो नम्रता और आदरपूर्वक प्रणाम अवश्य करना चाहिए।

१८—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि महाभारत के बारहवें पर्व में लिखा है कि जैसे पक्षियों का मार्ग और मछलियों का मार्ग निश्चित नहीं है इसी भाँति परोपकारी धर्मात्माओं का मार्ग निश्चित नहीं है। वे कितने ही प्रकार से दूसरों को लाभ पहुँचाते हैं। इसको कोई जान नहीं सकता।

१९—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि किसी कार्य को आरम्भ न करो जब तक तुम यह निश्चय न कर लो कि इसका परिणाम क्या होगा? राजसेवा देश-सेवा है। इसका उद्देश्य जनता को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाना है न कि ऊँचे पद को प्राप्त करना है। विद्या जीवन को सुखदाई और धार्मिक बनाने के लिए है न कि धन कमाने के लिए। जीवन सादा हो पर विचार उच्च कोटि के हों। कार-व्योपार वाले के पास व्यर्थ बैठ कर उसका समय नष्ट न करो। बल्कि तुम स्वयं काम करो और उसे भी अपना काम करने दो। किसी के समय को नष्ट करना पाप है। परोपकार और जनता की सेवा में पारितोषिक तो कम हैं, परन्तु परीक्षा और विघ्न बहुत हैं। मनुष्य को चाहिए कि साहस

और श्रद्धा से काम में लगा रहे। बदनामी के साथ हार मानने से हर्ष और भलाई के साथ जोखम सहना अच्छा होता है। सफलता के समय मनुष्य के हौंसले और हिम्मत का पता चलता है। यानी असफलता में घबरावे नहीं और सफलता में फूले नहीं।

एकान्तवास पापरहित मनुष्यों को ही करना चाहिए। बुराई के बदले भलाई करो और भलाई के बदले बुराई कभी भी नहीं करनी चाहिए। विद्या जीव का कल्याण करने के लिए है न कि धन बटोरने केलिए। मीठे वचन बोलने से कुछ खर्च नहीं होता वरन् लाभ ही होता है। जिस उत्तम व्यवहार से तुम प्रसन्न होते हो वैसा ही व्यवहार दूसरों से करो। शारीरिक बल से सुन्दर विचार, अच्छा बर्ताव, ठीक तदबीर (युक्ति) बुद्धिमत्ता और देशहित का दर्जा बड़ा है। आधुनिक सभ्यता का मूल्य अपने अपने खून और पसीने से चुकाना पड़ता है। धन आवश्यक नहीं, शारीरिक बल आवश्यक नहीं। स्वतन्त्रता से भी प्रयोजन नहीं है, स्वास्थ्य भी आवश्यक नहीं है। केवल सुन्दर आचार-विचार की आवश्यकता है और उसी से बेड़ा पार लगता है। वह बिगड़ गया तो सब गया।

इन्द्रियों का दमन, अन्तःकरण का शमन, जत-सत का जीवन और अन्तर बाहर का शौच करना चाहिए।

विद्या से ज्ञान प्राप्त करें। भारी तनख़्वाह और धन लाभ के लिए न बेचें।

किसी से भी कोई वचन किया हो उसे पूरा करने का ध्यान रखना और उसे पूरा करना चाहिए। यदि किसी से मिलने को भी कहा है तो निश्चित समय पर जाओ नहीं तो दूसरे का समय तुम्हारी प्रतीक्षा में व्यर्थ जायेगा।

२०—एक बीमार व्यक्ति ने विनय की कि मेरा वज़न इस माह से सात पौंड बढ़ गया है, परन्तु शरीर मोटा होने की जगह दुबला सा दिखलाई देता है बल्कि हल्का मालुम होता है। इस बढ़ोत्री का कारण समझ में नहीं आता। उस समय एक सत्सङ्गी बैठे थे जिन्हें बचपन से इस विद्या का बड़ा शौक़ था। वह बीसियों ग्रन्थ डाक्टरी, हिकमत, होम्योपैथिक, आयुर्वेदिक और

पानी तथा रंगों के इलाज के देख चुके थे और मुफ्त इलाज करते थे। श्री महाराज ने उनकी ओर इशारा करके फ़रमाया कि इस बात का कारण वह बतलायेंगे। वह बोले कि इसमें कुछ भूल सी हो रही है और यह भूल हमारे देश में ही नहीं वरन् समस्त संसार में फैली हुई है। साढ़े तीन सेर वजन महीने भर में घटना या बढ़ना साधारण रोगों में असम्भव प्रतीत होता है। यदि किसी भयङ्कर रोग में ऐसा हो तो शरीरान्त का भय है। हमारे विचार और अनुभव में तो ऐसा आया है कि जब वायु शरीर में अधिक हो जाती है तो वह फूला-फूला मालूम होता है, परन्तु चलने फिरने से आलस्य और भारीपन मालूम होता है और वज़न में भी कमी हो जाती है यदि किसी दवा दारू से वायु शरीर से निकल जाये तो शरीर दुर्बल और हल्का हो जायेगा। जीवित मनुष्य के शरीर को बराबर वाला आदमी हाथों में उठा सकता है परन्तु उतने ही बड़े मृतक शरीर को एक मनुष्य नहीं उठा सकता, चार-चार आदमी लगते हैं तब उठता है और फिर भी बोझल प्रतीत होता है, उसमें से सिवाय वायु यानि प्राण के और कुछ तो नहीं निकलता। इससे सिद्ध होता है कि इतनी अधिक घटाबढ़ी शरीर में थोड़े ही समय में वायु के निकल जाने और बढ़ जाने से ही होती है। प्राणायाम की विधि में ही देख लो। जब रेचक करते हैं तो शरीर भारी हो जाता है, पूरक करने से शरीर हल्का हो जाता है और अधिक समय तक कुम्भक किया जाय और वायु को अन्दर रोका जाय तो शरीर इतना हल्का हो जाता है कि अपने आप ऊपर उठ सकता है

२१—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि जो मनुष्य किसी दूसरे की धरती पर मकान बनाता है, जो किसी दूसरे के बाग़ में वृक्ष लगाता है जो ऊसर धरती में बीज बोता है, जो अति बुढ़ापे में विवाह करता है जो बाँझ स्त्री से शादी करता है ऐसे लोगों का सब करा धरा निष्फल जाता है।

२२—एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि जब परमात्मा ने इस संसार को अपनी मौज से इस लिये प्रकट किया है कि जो आनन्द वह एक रूप से ले रहा है वही आनन्द अनेक रूप से ले, तो इस आनन्द स्वरूप संसार को छोड़ कर भजन करने और परमात्मा को जानने जनाने की आवश्यकता क्या है।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि यदि मीठा ही मीठा खाने को मिले तो जी उकता जाता है। मीठे के पश्चात् नमकीन भोजन और फिर मीठा और फिर नमकीन खाने को मिले तो अधिक स्वादिष्ट मालूम होता है। इसी प्रकार पहले एक ब्रह्म ही ब्रह्म था। उस अवस्था से अनेक होने की मौज हुई फिर अनेक से एक होने के आनन्द की इच्छा स्वाभाविक बात है। उसी इच्छा को पूर्ण करने के लिये भजन, ध्यान, समाधि द्वारा ब्रह्म-चिन्तन, ब्रह्म-दर्शन और ब्रह्म अनुभव आदि की इच्छा और ध्यान किया जाता है और हर प्रकार का यत्न किया जाता है जैसा कि कहा है—

तुम्हें तो ख़ूब देखा ऐ बुतो, अब उसको देखेंगे,
"ख़ुदा" कौन जाने कैसा हो कि जब शाने ख़ुदा तुम हो।"

२३—एक दिन प्रेम के विषय में प्रसंग उठा—श्री महाराज ने फ़रमाया कि थियेटर, सिनेमा, किस्सा, नोविल आदि में जो प्रेम दरसाया जाता है वह प्रेम नहीं हो सकता। जो पुरुष किसी स्त्री को उसकी सुन्दरता बुद्धिमत्ता या लायक़ होने के कारण चाहता है वह भी प्रेम नहीं। प्रेम में ऊँचाई अथवा छोटाई, बड़ाई का भाव नहीं रहता, अच्छे बुरे की जाँच भी नहीं। जैसे कहावत है—दिल लगा गधी से तो परी क्या चीज़ है। प्रेम में पूर्ण समानता और पूर्ण अधिकार प्रेमी को दिये जाते हैं। वरन् मनुष्य मात्र को छोड़ दीजिये पशु पक्षियों को भी समान समझा जाता है। दूसरे पर कब्जा करने, अधिकार पाने या उसे आधीन करने के लिये जो प्रेम जतलाया जाता है वह प्रेम नहीं, स्वार्थ है। प्रेम तो आन्तरिक भाव से जाना जाता है किसी से प्रेम करने के यह अर्थ हैं कि उसके जीवन, उसके सुख, उसके विचार और उसकी उन्नति की सब की ज़िम्मेदारी ले लेना और जो कुछ मनुष्य सामर्थ्य में है उसकी भलाई के लिये करना। प्रेम शारीरिक वस्तु नहीं मानसिक भाव है। प्रेम का अधिक अंश देना है, लेना नहीं।

२४—एक व्यक्ति ने पूछा कि ज्ञान में क्या जाना जाता है? श्री महाराज ने फ़रमाया कि सब से पहली सीढ़ी यह है कि जो कुछ इस संसार के पदार्थों के विषय में जान लिया है उसे भुला दिया जाय। अबोध बालक मिट्टी के खिलौनों को ही सब कुछ मान कर खेलते रहते हैं। जब उनकी माता कोई

सुन्दर गुड़िया बना देती है तो बच्चे उसे मिट्टी के खिलोनों से अच्छा समझ कर लिये फिरते हैं। जब उनको पिता कोई रबड़ या पीतल आदि का खिलोना बाज़ार से ला देता है तो उसकी चमक दमक देख कर बालक मिट्टी और कपड़े के खिलोने को त्याग देते हैं; उनमें अच्छे और बुरे की प्रतीति हो जाती है। यानी बहुत छोटी अवस्था में मिट्टी और सोना बच्चों के ज्ञान में समान था अब थोड़ा-थोड़ा भेद प्रतीत होने लगा। यही हाल वस्त्रों का भी है। जो माँ ने बहुमोल या कम मोल पहना दिया पहन लिया और जो उढ़ा दिया ओढ़ लिया, धीरे-धीरे घर में और बाहर की वस्तुओं को देखकर अच्छे बुरे की प्रतीति होती जाती है। भोजन की भी यही गति होती है। बालक को जो खिलाओ खा लेगा। अश्वत्थामा ने किसी बालक को दूध पीते देखा और दूध मांगा। उनके घर में दूध का अभाव था। बच्चे को रोने से चुप करने के लिये द्रोणाचार्य जी ने खरिया मिट्टी घोल कर पुत्र को पिला दी। वह उसी को दूध समझ कर पी गया और चुप हो गया। भले बुरे, कम कीमत और बहुमोल वस्तुओं का बोध जैसे धीरे-धीरे माता पिता या आचार्य द्वारा या सांसारिक वस्तुओं को देख कर हुआ है उसे इसी प्रकार धीरे-धीरे मिटाना है और ऐसी अवस्था पैदा करनी है कि भोजन में चना, मोंठ, बाजरा, ताज़ी, बासी रोटी जो मिल जावे उसे पेट भरने की सामिग्री जानकर आदर पूर्वक पाले। यह नहीं कि पेड़े बर्फी दूध मलाई के बग़ैर कौर गले से नीचे उतरे ही नहीं और चित्त भरे ही नहीं। वस्त्रों में गज़ी, गाढ़ा, कम्बल यही मोटा झोटा जो मिल जावे उसी को पहन या ओढ़ कर मग्न रहे। धन सम्पत्ति जो प्रारब्ध अनुसार धर्म से प्राप्त हो जावे उसी में ही संतोष करे।

इसके उपरान्त ऐसी अवस्था आती है कि इन भोगों का रस और स्वाद ही साधक के हृदय से मिट जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय दो, श्लोक ५९ के अनुसार रस निवृत्ति में इनका राग ही मिट जाता है। तब चना जो भी समय पर मिले ऐसा स्वादिष्ट प्रतीत होता है जैसे मिष्टान्न और फटा पुराना वस्त्र भी उसे ऐसा सुहाता है जैसे पश्मीना, किमखाब और दरयाई कटा हुआ कम्बल और गज़ी गाढ़े की रज़ाई भी उसे मख़मली तोषक और रेशमी रज़ाई के समान सुख देती है। धन सम्पत्ति और निर्धन अवस्था में उसे हर्ष शोक कुछ नहीं होता। यदि पैसा भी पास नहीं तो उसकी प्राप्ति का ध्यान तक नहीं

आता। स्त्री, पुत्र पौत्र हो या न हो कुछ परवाह नहीं। बालक को जैसे अपनी माता ही से काम होता है वैसे ही इसे अपना इष्ट आदर्श है। इस घोर और अवधूत अवस्था को प्राप्त हो जाने पर तो मैले कुचैले और साफ वस्त्रों में भी उसे भेद प्रतीत नहीं होता चाहे कई बार स्नान करे चाहे बिल्कुल न करे, चित्त से ग्लानि ही मिट जाती है जैसे बालक अपने मल मूत्र से घृणा नहीं करता उसी भाँति ऐसी अवस्था भी आती है कि भले बुरे का भेद नहीं रहता। जैसे बालक साँप और खिलौने को समान जानता है। उसी प्रकार पूर्ण ज्ञानी साँप बिच्छू और अपने पुत्र आदि में उसी एक आत्मा को देखता है। इस अवस्था से आगे ब्रह्मलीनता है। उस अवस्था को ऐसा समझना चाहिये जैसे चार पाँच मास के बालक की अवस्था होती है; उसे अपने टट्टी पेशाब तक का विचार नहीं होता। जैसे बालक अबोध होता है वैसे ज्ञानी भी शरीर की ओर से अबोध अवस्था को प्राप्त हो जाता है और उसे अपनी देह की सुधि भी नहीं रहती, कि है भी या नहीं। यह जीते जी विदेह मुक्त-पद है। इस अवस्था में चेतनता होती है और बालक अचेतन होता है।

२५—एक सत्संगी बहुत दिन से भेष लेने के लिये कह रहे थे परन्तु उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं होती थी। एक दिन वे बहुत आग्रह करने लगे कि मुझे भेष देने में आपका क्या हर्ज है।

श्रीमहाराज ने फ़रमाया कि जिस हाकिम को अधिकार दिया गया है कि वह डिप्टी कलक्टर की आसामी पर मुकर्रिर कर सकता है तो वह हर तरह से उम्मीदवार में योग्यता देखता है। अगर प्रेम, मिन्नत, समाजत या कोरी सिफ़ारिश से किसी अयोग्य पुरुष को डिप्टी कलक्टर बना दे तो उसके ऊपर वाला हाकिम जवाबतलब कर सकता है। साधु की पदवी बहुत बड़ी है। इस भेष को राजा, महाराजा और बादशाह तक प्रणाम करते हैं और सिर झुकाते हैं। अर्थात् राजा और बादशाह से भी बड़ा पद है। फ़कीर को इसी कारण से शाह कहते हैं। क्या ऐसे पद को देते हुए योग्यता नहीं देखनी चाहिये और अधिकारी की निरख परख नहीं करनी चाहिये। आपस में एक गृहस्थी का दूसरे गृहस्थी पर, बल्कि एक घर और कुटुम्ब के मनुष्यों में भी एक दूसरे पर हर बात में पूरा विश्वास नहीं होता; परन्तु साधु पर हर तरह का विश्वास होता चला आया है।

२६—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि शुद्ध आत्मा में जो चेतना है वही ब्रह्म रूप होकर स्थित है। ब्रह्म में जो चेतना हुई वही 'मन' कहलाती है। यह मन सब अर्थों का बीज रूप अर्थात् सब का उपादान है और जड़ भाग अबोध दृश्य जगत रूप है अर्थात् चेतन मात्र में अहंकार का उत्थान दृश्य भ्रम दीखता है और चैतन्य भाव में स्थित होता है, तब शुद्ध रूप होता है उसी का नाम सनातन ब्रह्म है। चिन्मात्र कला में जो कला फुरती है वही समवेदन संकल्प में विकल्प से मिल कर मैला हो गया है और स्वरूप को भी भूल गया है उन्हीं का नाम मन है। मन भावना मात्र है और भावना फुरने को कहते हैं, फुरना क्रिया रूप है। इस फुरने की क्रिया से सब फल मिलते हैं। ब्रह्म तत्व की वृत्ति तो चैतन्य शक्ति है सो निर्मल है। जब वह स्फुरना रूप होती है तब कलना रूप घन भाव को प्राप्त होती है और विकल्प रूप धारण करती है और फिर तन्मय होकर मन रूप होती है। वही संकल्पमात्र से जगत को रचता है। कर्ता, कर्म या मन और कर्म, एक रूप हैं और इकट्ठे ही ब्रह्म से उपजे हैं। जैसे फूल और सुगन्ध इकट्ठे ही वृक्ष से उत्पन्न होते हैं। जब कोई देश से देशान्तर जाने लगता है तब जाने का संकल्प ही उसे ले जाता है वह चलना कर्म है। इससे यह सिद्ध हुआ कि स्फूर्तिरूप ही कर्म है, स्फूर्ति रूप मन का भी है इससे मन और कर्म में कुछ भेद नहीं। क्षोभ समुद्र रूपी ब्रह्म है इसमें द्रवता रूपी चेतना है, वह चेतना जीव रूप है, उसी का नाम मन है। समुद्र से द्रवता के कारण तरंगें उपजती हैं तैसे ही मन के फुरने से आत्मा से कर्म उपजते हैं, जैसे तरंगें समुद्र में मिल जाती हैं तैसे ही मन और कर्म परमात्मा में मिल जाते हैं और आत्मा के साक्षात्कार होने से मन और उसके विकार नहीं रहते। जिसके दर्शन मात्र से इनका अभाव हो भला उसका आत्मा के साथ सम्बन्ध कैसे हो सकता है। आत्म तत्व अनन्त रूप और सर्व शक्तिमान है जब उसमें संकल्प शक्ति फुरती है तब उसको मन कहते हैं। चैतन्य शक्ति और स्पन्द शक्ति के सम्बन्ध होने से मन उपजता है, जड़ और अजड़ के बीच में जो डोलता है, इसी मिले हुए रूप का नाम मन है। भाव रूप जो पदार्थ है उसके मध्य में जो सत्य असत्य का निश्चय करता है उसका नाम मन है। उसमें जो यह 'निश्चय' देह से मिल कर फुरता है कि मैं चिदानन्द रूप नहीं,

कृपण हूँ सो मन का रूप है। मन और देह का बाहर से स्नेह भासता है पर भीतर से आपस में शत्रु भाव है और एक दूसरे के नाशकी इच्छा करते हैं। मन तो दुःख के नाशकी इच्छा करता है पर देह कहती है कि मुझको दुःख कुछ भी नहीं जो कुछ दुःख भासता है वह इस मन के संग का फल है। जब इन्द्रियों का गाँव उजड़ जाता है तब जगत परमात्मा रूप हो जाता है। रूप, इन्द्रिय, मन इनका आपस में असंग भाव है जैसे मुख, दर्पण और प्रतिबिम्ब अलग-अलग असंग हैं परन्तु अज्ञान से मिले हुए भासते हैं, जैसे लाख से हीरे और सोने का संयोग होता है। कल्पना से रहित मन नहीं होता जैसे गुण बिना गुणी नहीं होता। शुद्ध समवत मात्र सत्ता फुरने की तरह जो स्थित हुई उसका नाम मन हुआ जब वह वृत्ति निश्चय रूप हुई तब भाव अभाव पदार्थों को निश्चय करने लगी उसका नाम बुद्धि हुआ। जब अनात्मा में आत्मभाव परिछिन्न रूप मिथ्या अभिमान दृढ़ हुआ तब उसका रूप अहंकार हुआ वही मिथ्या 'अहं वृति' संसार बन्धन का कारण है। किसी पदार्थ को बिना विचार किये लेता है; किसी को त्याग करता है उसका नाम चित्त है।

वृत्ति का धर्म फुरना है, इस फुरने में फल को आरोप करके उसकी तरफ़ दौड़ना और कर्त्तव्य का अभिमान फुरना कर्म है। पहले जो कर्म किये हैं उनको त्याग कर उनका संस्कार चित्त में रख कर स्मरण करने का नाम स्मरण है। पहले जिसका अनुभव नहीं हुआ और हृदय में फुरने लगे कि मैंने किया था उसका नाम स्मृति है। जिस पदार्थ का अनुभव हो और संस्कार हृदय में दृढ़ हो उसके अनुसार जो चित्त फुरे उसका नाम वासना है। आत्म तत्व अद्वैत है इसमें अविद्यमान विद्यमान हो भासता है उसका नाम अविद्या है। अपने स्वरूप को भुला कर अपने नाश के निमित्त स्पन्द चेष्टा करने और शुद्ध आत्मा में विकल्प उठने का नाम मूल अविद्या है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पाँचों इन्द्रियों को दिखाने वाला परमात्मा है और अद्वैततत्व आत्मा में जिसने दृढ़ जाल को रचा है उस स्पन्द कलना का नाम प्रकृति है जो सत्य को असत्य और असत्य को सत्य की तरह दिखाती है वह माया कहाती है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का अनुभव करना कर्म है और जिससे यह तन्मात्रा होती है वह कर्ता, कारण कहलाता है। शुद्ध चैतन्य चित्त को कलना

की तरह प्राप्त होता है। उस स्फुरन वृत्ति को विपर्य कहते हैं उससे जब संकल्प जाल उठता है तब उसको जीव कहते हैं। चित्त के संयोग से चैतन्य का नाम जीव है। चित्त-कला जीव तन्मात्रा से मिलकर प्राण नाम पाती है। हृदय कोष से निकल कर जो बाहर जाता है और फिर बाहर से भीतर जाता है और बाहर से भीतर आता है वह प्राण है। शरीर बैठा है और वासना से जो देश में फिरा करता है सो मन है। इसको योग अभ्यास करके वासना से रहित करना और प्राण वायु को स्थित करना यह दोनों मन को लीन करने के उपाय हैं। मन ही को बन्धन कहते हैं, मन न जड़ है, न चैतन्य। जड़ चैतन्य की गाँठ के मध्य भाव का नाम मन है जैसे नट अनेक स्वांग करने से अनेक संज्ञा पाता है। इसी तरह से मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, जीव आदिक अनेक संज्ञा इसी मन की हैं। शास्त्रकारों और अनेक मत मतान्तर वालों ने भिन्न-भिन्न नामों से इस मन को ही वर्णन किया है। न्याय-शास्त्र कहता है कि सृष्टि तत्वों के सूक्ष्म परिमाणों से उपजती है, जब प्रलय होता है तब स्थूल तत्व लय हो जाते हैं और उनके सूक्ष्म परमाणु रहते हैं। फिर उत्पत्ति काल में वही सूक्ष्म परमाणु दुगने होकर मोटे हो जाते हैं इन्हीं पाँचों तत्वों से सृष्टि होती है। सांख्य का मत है कि प्रकृति और माया के परिणाम से सृष्टि होती है वह परिणाम दो तरह का है—(१) अनुलोम परिणाम, जो अन्तर्मुख आत्मा की तरफ होता है और मोक्ष का कारण है इससे प्रतिलोम परिणाम जो दृश्य भाव को प्राप्त करता है और बन्धन का कारण है। वेदान्त-वादियों ने यह निश्चय किया है कि सब ब्रह्म ही है। विज्ञान-वादी कहते हैं कि जब तक बुद्धि, स्फुर्ति है तब तक संसार है। जब यह अपने स्वभाव में फुरती है तब स्वरूप में स्थित होती है और जब वह काल आयेगा तब मोक्ष प्राप्त होगी। चारवाक पृथ्वी, जल, तेज, वायु, चार तत्व के इकट्ठे होने से सृष्टि उपजी मानते हैं और चारों के शरीर को पुरुष मानते हैं और कहते हैं कि जब चारों तत्व अपने आपसे बिछुड़ जाते हैं तब प्रलय होती है। आरहन्तबोध और पंचराज और वैशेषिक आदिक और तरह मानते हैं, परन्तु सब का सिद्धान्त एक ही ब्रह्म आत्मतत्व है। यह ही शून्य-वादियों का शून्य है। महाप्रलय में जगत मिट जाता है पीछे जो बाकी रहता है वह शून्य नहीं क्योंकि जगत का आभास उसमें सदा रहता है। एक ही स्थान

के बहुत से मार्गों की भाँति अनेक मतों का अधिष्ठान आत्म सत्ता है। अलग-अलग मार्ग के चलने वाले अपने-अपने मार्ग की उपमा करते हैं; स्वरूप में न कोई मत है, न शास्त्र। सबका कारण मन हो है। मन को मान कर सब मत डूबे हैं। एक पुरुष को ही अनेक प्रकार से कहते हैं: दान करने से दान कर्त्ता, दुकान करने से दुकानदार, ऐसे ही अनेक शक्ति मन की कही गई हैं। सब अर्थों का कारण मन ही है, चित्त का संयोग बन्धन है और चित्त से छूटना मुक्ति है। जो मन का एक रूप जड़ या चैतन्य ही हो तो सुख दुख में फ़र्क न हो और जो केवल चैतन्य ही हो तो जगत का कारण नहीं हो सकता और जो केवल जड़ हो तो भी जगत का कारण नहीं होता। प्रतियोगी विच्छेदिक संज्ञा रूप सब मन के कल्पे हैं। प्रतियोगी विरोधी को कहते—हैं जैसे चैतन्य का प्रतियोगी जड़ है। और विच्छेदक जैसे घट अविछिन्न पट यह अनेक रूप जगत सब मन के कल्पे हैं। जो कुछ पदार्थ रस सहित दीख पड़ें उसका त्याग करो, इच्छा से मन पुष्ट होता है इच्छा न होने से उपशम हो जाता है फिर गुरु, शास्त्र, और मंत्र आदिक की भी ज़रूरत नहीं होती। आत्म पद के आगे मन का फ़ुरना जो बादल की तरह ओट है व अब न रहेगा तब प्रयत्न सिद्ध आत्म-पद भासेगा। हृदय में जो चैतन्य चक्र है अर्थात् ब्रह्माकार वृत्ति है उसकी तरफ़ जब मन का तीव्र समवेग हो तब मन का मनन भाव नष्ट हो। संसार के भोग जब अच्छे न जान पड़े और इसमें नीरस बुद्धि उपजे तब जानिये कि मन के अङ्ग कटे। जगत के जितने पदार्थ हैं उनकी इच्छा न उपजे और केवल चिन्मात्र में चित्त की वृत्ति स्थित हो तब जानिये कि आत्म पद प्राप्त होगा। आर्विभाव और तिरोभाव रूप जो संसार है उसको रमणीक जानकर ज्ञानवान दुख नहीं पाता जिसके कर्म शास्त्र के अनुसार होते हैं वह अपने आचार को नहीं छोड़ता। जिस पुरुष का यथा कर्म, यथा शास्त्र, आचार और निश्चय है उसको भोग की तृष्णा मिट जाती है और वांछित फल मिलता है। तत्व के साक्षात्कार होने से बल, बीज और तेज चढ़ आते हैं यह अवस्था ज्ञानी के शरीर की हो जाती है।

(२७) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि जो मनुष्य परमात्मा, गुरु, माता, पिता, साधु, पण्डित, और सज्जनों के आगे दीनता और नम्रता प्रकट करता

है और प्रिय वचन बोलता है उसका पुण्य, यश और कीर्ति बढ़ती है। जो स्त्री के सामने दीन होता है उसका अपमान होता है। जो दुर्जनों के सामने दीन होता है उसकी निन्दा होती है। जो वैरी के सामने दीन होता है उसका तेज हत होता है। जब नीच आदमी बहुत नम्रता का व्यवहार कर और बेजा चापलूसी करे तो उसका कर्म बड़ा दुखदाई होता है।

नवनि नीच की अति दुखदाई,
जिमि अंकुश धनु उरग बिलाई।
भय दायक खल की प्रिय बानी,
जिमि अकाल के कुसुम भवानी॥

एक सत्सङ्गी ने प्रार्थना की कि संसार की उत्पत्ति कर्म से होती है या कर्म पीछे बनते हैं?

श्रीमहाराज ने फ़रमाया कि वृक्ष, बेल, फूल, फल, पशु, पक्षी, मनुष्य देवता, यक्ष और नाग, जो कुछ स्थावर जंगम पदार्थ हैं वे सब पहले बिना कर्मों के पैदा हुए हैं। जीव चार प्रकार के हैं। (१) जो कर्मों के बिना हुए हैं। (२) जो कर्मों से पैदा हुए हैं। (३) जो अब पैदा होते हैं। जो आगे होंगे। जैसे पवन में स्पन्द, फूलों में सुगन्ध और आग में गर्मी स्वाभाविक रहती है, इसी तरह आत्मा चिदाकाश, अनन्त-अविनाशी में फुरना शक्ति आदि में फुरी तो उस शक्ति की अपेक्षा यानी इच्छा से आकाश हुआ। जब स्पर्श की अपेक्षा की तब पवन प्रकट हुआ। इसी तरह से पांचों तन्मात्राये हो आईं। शुद्ध संवित में जो आदि फुरना हुई उससे प्रथम अन्तवाहक शरीर हुआ। अगर इनका निश्चय यह ही रहा कि हम आत्मा हैं और सब जगत हमारा संकल्प है तो यह अन्तवाहक से विदेह मुक्त को प्राप्त हुए, जैसे पानी से बर्फ़ होकर सूर्य के तेज से फिर पानी हो जाता है। जो अन्तवाहक में रहे उनकी संज्ञा ईश्वर हुई। उनके संकल्प से उनका फुरना कर्म हुआ। आगे जैसे-जैसे कर्म संकल्प से उपजे हैं सो आदि अकारण हुए हैं। जो आज उपजे सो भी और जो बहुत दिनों से उपजे हैं सो भी। वह पीछे कारण भाव को कर्म के वश से प्राप्त हुए हैं। जिनका आदि फुरना हुआ है और स्वरूप में दृढ़ निश्चय रहा है उसकी संज्ञा पुष्प है और जो स्वरूप को भूल कर आदि भौतिक में

निश्चय कर बैठे उसकी संज्ञा धन है। पुण्य से धनी होना सुगम है धन से पुण्य कठिन है। कोई भाग्यवान पुरुष ही यत्न करके धन से पुण्यवान होता है। जो अन्तवाहक को त्याग कर आदि भौतक होते हैं, वे जीव कहलाते हैं और दूसरे के आधीन हैं। जैसे कर्म करते हैं तैसे ही शरीर को पाते हैं। जो धन से पुण्यवान होते हैं उन ज्ञानवानों का फिर जन्म नहीं होता। विषय और इन्द्रियों के संयोग से अच्छी बात में सुख, बुरी बात में दुख मानना बन्धन है। जिसमें इन्द्रियों का संयोग होता है उसमें सम बुद्धि रहे, उनके धर्म अपने में न देखे। उनको जानने वाला जो अनुभव रूप आत्मा है उसमें साक्षी रूप होकर स्थित रहे। इसी तरह से जो इनको ग्रहण करता है वह सदामुक्त रूप है और जिसका निश्चय विपरीत है वह जीव बन्धन में है। आत्मा सब कर्म से रहित है फिर उसमें फुरे पदार्थ में कर्म कैसे हो सकता है यह सब संकल्प का भेद है।

(२९) एक रोज़ इर्शाद हुआ—

ज्ञान बढ़े गुणवान की संगत, ध्यान बढ़े तपसी संग कीने।
मोह बढ़े परिवार की संगत, लोभ बढ़े धन में चित दीने॥
क्रोध बढ़े नर मूढ़ की संगत, काम बढ़े त्रिया संग कीने।
बुद्धि विवेक विचार बढ़े, कवि दीन सु सज्जन संगत कीने॥

एक रोज़ एक सत्सङ्गी ने प्रार्थना की कि राजा जनक विदेही माने गये हैं। कबीर साहब और बाबा गोरखनाथ जी ज्ञानी माने जाते हैं लेकिन इनका प्रकट होना यानी जन्म लेना भी विख्यात है। फिर अज्ञानी में और इनमें क्या अन्तर हुआ। जन्म मरण से रहित तो दोनों न हुए।

(३०) श्री महाराज ने फरमाया कि अज्ञानी के चित्त रहता है जिससे वह समान नहीं रह सकता और भले बुरे में दुख सुख मानता है। ज्ञानी के सत्व रहता है जिसको प्रकृति या कुदरत कहना चाहिये जो प्रारब्ध के वश फुरता है। ब्रह्माकार वृत्ति के फुरने से फिर शरीर पाना पड़ता है। ज्ञानी भले बुरे में सम रहता है और शरीर त्याग कर ब्रह्म समुद्र में स्थित होता है। और जब तक सत्व बाकी रहता है तब तक फुरता है। अज्ञानी शरीर का त्याग करता है तब उसमें सूक्ष्म संसार बाकी रहता है जो समय पाकर फिर निकलता है।

३०—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि श्री व्यास जी ने फ़रमाया है कि ज्ञान का रास्ता ऐसा कठिन है जैसे खांडे की धार पर चलना। यह मार्ग नीरस है; इसमें रस और आनन्द नहीं है, जब आत्म-दर्शन हो जाता है तब आनन्द प्राप्त होता है। हर एक इसका अधिकारी भी नहीं है। जिसमें साधन चतुष्टय हों, षट सम्पत हों उसी को अधिकार है। इसमें विघ्न का हमेशा डर रहता है तथा विघ्न उपस्थित होते भी हैं। इसी तरह से कर्म-काण्ड में भी ख़ास-ख़ास सामिग्री की ज़रूरत होती है। इसका रास्ता भी नीरस है, उम्र भर कर्म करते रहो, फल की इच्छा और आशा तक मत रखो न मालूम फल कब मिलेगा, इस जन्म में या दूसरे जन्म में। इसमें वर्ण-वर्ण का धर्म अलग-अलग है। एक वर्ण का धर्म दूसरे पर लागू नहीं हो सकता। प्रत्येक आश्रम का धर्म अलग है। एक आश्रम के धर्म का दूसरे आश्रम को अधिकार नहीं है। विघ्न की इसमें भी बहुत सम्भावना है जो समय और सामिग्री के अभाव, क्रिया-भेद आदि से होता है।

लेकिन भक्ति मार्ग बहुत सुगम है। इसमें कोई कठिनाई ही नहीं। जिस दिन से आरम्भ करो उसी दिन से यह सुखदाई है, दुःख का लेशमात्र नहीं। विरह में भी अजीब आनन्द है जिसको विरही ही जानते हैं। इसमें न कोई विशेष साधन है और न कोई ख़ास सामिग्री। ऐसा नहीं कि जिसके बग़ैर काम न चल सके। फल हों, फूल हों, पत्ते हों, या केवल जल ही हो, कुछ भी न हो तो मानसी पूजन और ध्यान ही पूर्ति कर देता है। अधिकारी का कोई भेद नहीं और न वर्ण रुकावट कर सकता है, न आश्रम ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, नाई, कुम्हार, स्त्री, पुरुष, बालक, पापी, पुन्यवान जो चाहे कर सकता है। जैसे ध्रुव, प्रह्लाद, गणिका, शबरी, विदुर - पत्नि आदि सबका इसमें अधिकार है। इसमें विघ्न का भी डर नहीं है। भक्ति और माया दोनों स्त्री स्वरूप हैं। इसलिये माया भक्त को मोहित नहीं कर सकती।

"मोह न नारि नारि के रूपा, पन्नगारि यह नीति अनूपा।"

३१—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि बन्दूक़, तलवार, लट्ठ वग़ैरा में मारने की शक्ति अधिक है, झेलने की कम। इनको किसी पत्थर या हथौड़े से दो चार चोटें भी मारी जायें तो टूट जाते हैं। मूसल से ओखली में कितनी चोटें

मारी जाती हैं प्रायः मूसल ही टूटता है। इससे ज़ाहिर होता है कि ओखली में झेलने की शक्ति है। जिस चीज़ में जितनी झेलने की शक्ति है वह उतनी ही शक्तिशाली मानी जाती है। दुःख-सुख, मान-अपमान, भूख-प्यास आदिक झेलने की ताक़त जितनी स्त्री में होती है उतनी पुरुष में नहीं। इसी कारण से महापुरुष स्त्री को शक्ति मानते हैं और आदर करते हैं।

३२—एक सरकारी मुलाज़िम से उनके आला हाकिम अंग्रेज़ बड़े ख़ुश थे। रोज़ अपने पास बैठाकर सरकारी काम और निज के मुआमलात में उससे सलाह लेते। बड़े दिन पर जो तौहफे आते उनमें से छांट-छांट कर अच्छे-अच्छे उसके घर भिजवाते। जब कभी बम्बई या विलायत जाते तो वहाँ से कुछ न कुछ तोहफ़ा लाते और उसको पेश करते। खाना खाते वक्त, सिगरेट, शराब या चाय पीते वक्त अगर वह मुलाज़िम मौजूद हो तो शामिल होने के लिये बार-बार ज़ोर देते। निजके हर जलसे में उसे शरीक करते, लेकिन वह मुलाज़िम जलसे और खाने पीने में कभी शामिल न हुआ। बड़ी दीनता से उनकी महरबानी और बड़प्पन का धन्यवाद कर देता था।

एक दिन कुछ सत्सङ्गियों ने समझाना शुरू किया कि आजकल के नौकरी पेशेवाले, हाकिम के पीछे पीछे फिरते हैं और उनकी नज़रे-इनायत के मुन्तज़िर रहते हैं। लेकिन आप पर हाकिम इतनी महरबानी करते हैं और आपको दोस्त कहकर पुकारते हैं तब भी आप उनसे दूर-दूर भागते हैं, यह नामुनासिब मालूम होता है। उसने जवाब दिया कि श्रीमहाराज का वचन है कि जो मनुष्य धन, विद्या, रुतबा और उम्र में बराबर हों उन्हीं से दोस्ती बनती है। मुलाज़िम और हाकिम में दोस्ती कैसी? उनके बड़प्पन और महरबानी का नाजायज़ फ़ायदा उठाना सख़्त गलती होगी?

"प्रीति विरोध समान सन करिये नीति अस आहि।"

ऐसे बड़े हाकिम का मिजाज़ बदलते क्या देर लगती है। कहाँ वह तीन हज़ार पाने वाले अफ़सर, कहाँ मैं? क्या बराबरी? दिन रात का अन्तर है। यह सब सत्कार प्राप्त होना श्री महाराज की कृपा और आशीर्वाद का नतीजा है। खाने पीने में शामिल न होने का यह कारण है कि जिस बातको हमारे मत अर्थात मज़हब और बुज़ुर्गों ने मना किया है और उन्होंने जो नियम रखे

हैं उनको एक प्याला चाय की ख़ातिर तोड़ना मुनासिब नहीं समझता। बड़े आदमियों की संगत में मनुष्य अपने नियमों को खो बैठता है।

३३—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि इस संसार रूपी रात में सोये हुये मनुष्यों को अच्छे और बुरे दोनों तरह के स्वप्न दिखलाई देते रहते हैं। बुरे स्वप्न बुरी भावनाओं का फल हैं अच्छे स्वप्न सुकृति का फल हैं। कर्मकाण्ड में चाहे वह कर्म फल प्राप्ति की भावना से किये जायें, चाहे निष्काम हों मनुष्य कर्म करता है मगर स्वप्नावस्था ज्यों की त्यों बनी रहती है। भक्ति में बुरे स्वप्न न देखकर अच्छे २ स्वप्न भगवत्-भाव और भगवत्-दर्शन के देखने से भक्त का चित्त प्रसन्न रहता है मगर सोते से वह भी नहीं जागता। जिस तरह से सोते हुये मनुष्य के दोनों नथने बन्द कर देने से उसका स्वांस रुकता है और भड़भड़ाकर उठ खड़ा होता है उसी प्रकार योग की प्राणायाम आदि क्रियाओं में स्वांस घुट कर क़ाबू आने से योगी मोह निद्रा से जाग उठता है और जागने से इस संसार की वास्तविकता का पता चल जाता है। तब वह किसी भी तरह के भुलावे में नहीं आ सकता। श्री भगवान् ने गीता जी के छठे अध्याय में श्लोक ४४-४७ और ८ अध्याय के श्लोक २८ में योग की महिमा का वर्णन करते हुये फ़र्माया है कि वेद पढ़ने, यज्ञ, दान, तप आदि करने से जो पुण्य होता है उन सबको योगी लांघ जाता है और सनातन परमपद और परमात्मा को प्राप्त होता है। इसलिये कर्मकाण्डी, तपस्वी और ज्ञानी से भी योगी अधिक है और वह मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है।

३४—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि वृत्ति के अर्थ भंवर के हैं। अन्तःकरण रूपी नदी में पैदा होने वाली विचार रूपी लहरों को वृत्ति कहते हैं। यह पाँच प्रकार की हैं: मनोवृत्ति, बुद्धिवृत्ति, साक्षीवृत्ति, अखण्डाकार वृत्ति या ब्रह्माकार वृत्ति और अखण्ड एकरस वृत्ति। इनको यह भी मान सकते हैं कि ये मन की वृत्ति, बुद्धि की वृत्ति, चित्त वृत्ति, अहंकार वृत्ति और आत्म वृत्ति हैं। मनोवृत्ति मन में पैदा होती हैं। ये सोलह हैं: काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, दर्प, दम्भ, असूया, ईर्ष्या, अहङ्कार, राग, द्वेष, इच्छा, श्रद्धा और भक्ति। इनमें से अन्त की दो श्रद्धा और भक्ति मुक्तिदाता हैं। पहली चौदह बन्धन करती हैं। इनमें इच्छा जिसको कामना और वासनादि भी कहते हैं,

सबसे प्रबल है। इसी से राग, द्वेष आदि पैदा होते हैं। बाक़ी सब क्रोध आदि इन्हीं से प्रकट होते हैं।

स्थूल अविद्या के आवरण से सारे पदार्थ ढके हुए हैं। वृत्ति इस आवरण को दूर करके पदार्थों का रूप हमारी इन्द्रियों के सामने प्रत्यक्ष करती हैं। करुणा, दया, सत्य, अहिंसा आदिक दैवी सम्पत और सद्विचार, ब्रह्म भावनाओं से, दम्भ, दर्प, असूया, ईर्ष्या, अहंकार आदि आसुरी वृत्तियों का समूल नाश करना मुक्तिदाता है।

(३५) एक रोज़ एक सत्सङ्गी ने प्रार्थना की कि बहुत से जीव तो बचपन में ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं, बहुत से युवा अवस्था में और बहुत से अधेड़ आयु में। बहुत कम हैं जो ८०-९० वर्ष तक पहुँचते हैं। १०० वर्ष की आयु तो बिरले की ही होती है। कलियुग में जो १२० वर्ष की आयु लिखी है उसका क्या प्रमाण है? श्रीमहाराज ने फ़रमाया कि ८४ लाख योनि की आयु पृथक्-पृथक् हैं। जो आयु जिस योनि के लिये निश्चित की है उतनी वह भोगता है। कलियुग में मनुष्य की आयु १२० वर्ष की लिखी है। उसको प्रत्येक मनुष्य भोगता है। चाहे एक जन्म में भोगे चाहे कई जन्मों में। इस पृथ्वी का जो निज़ाम शमशी यानी जो नक्षत्र चक्र है उसमें नौ ग्रह सूर्य चन्द्रादि शामिल हैं। इनमें से हर एक के प्रभाव से मनुष्य की आयु उस तरह से व्यतीत होती हैः—सूर्य के ६ साल, चन्द्र के १० साल, मंगल के ७ साल, राहू के १८ साल, ब्रहस्पति के १६ साल, शनि के १९ साल, बुध के १७ साल, केतु के ७ साल, शुक्र के २० साल हैं। कुल जोड़ १२० वर्ष हुआ। हर एक ग्रह के आधीन तीन-तीन नक्षत्र होने से कुल २७ नक्षत्र, उन नौ ग्रहों के आधीन हैं। नक्षत्र के जिस चरण में बालक का जन्म होता है उससे हिसाब लगा लेते हैं कि उस ग्रह के कितने साल जन्म लेने से पहले भोगे जा चुके हैं। जैसे सूर्य ग्रह के आधीन कृतिका, उत्तरा-फाल्गुनी और उत्तराषाढ़ तीन नक्षत्र हैं। उत्तराषाढ़ के कुछ चरण गुज़र जाने पर बालक का जन्म हुआ। उससे यह हिसाब निकल आता है कि जन्म लेने से पहले सूर्य के इतने साल, महीने, दिन, घड़ी, पल गुज़र चुके हैं। गोया इससे पहले जन्म में भोगे जा चुके हैं। और जो बाक़ी रहे हैं उसी से उसकी उम्र का हिसाब आरम्भ होता है।

अर्थात् मनुष्य शरीर का अनुभव प्राप्त करने के लिये जो १२० वर्ष का समय नियत किया है इतना समय प्रत्येक मनुष्य को दिया जाता है। ज्योतिष विद्या यह भी बतलाती है कि सूर्य की दिशा ६ वर्ष की है, इस ६ वर्ष के अन्दर ९ ग्रह क्रमशः पूरे होंगे। इसको अन्तर बोलते हैं। यह दिशा महीनों की होती है। इनके पूरे होने का क्रम पहले लिखे हिसाब से होगा। जैसे चन्द्रमा के १० वर्ष हैं और शुक्र के २० हैं तो जितनी दशा चन्द्रमा के अन्तर में है उससे दुगुनी शुक्र की होगी। इसी तरह से सब ग्रह बरतेंगे। फिर प्रत्यन्तर होते हैं। उसमें हर एक ग्रह की दिशा दिनों की होती है। फिर सूक्ष्म होते हैं जिसमें हर एक ग्रह की दिशा घड़ियों की होती है। फिर प्राण होते हैं जिसमें हर एक ग्रह का दौरा पलों का होता है।

यदि जन्म पत्री ठीक बनी हो और ज्योतिष का हिसाब लगाने वाला चतुर हो तो यह बता सकता है कि अमुक ग्रह मारकेश है और उस ग्रह के अन्तर में अमुक ग्रह का प्रत्यन्तर और अमुक ग्रह का सूक्ष्म और अमुक ग्रह का प्राण आने पर शरीर छूट जायगा। यानी इतने वर्ष, इतने महीने, इतने दिन, इतनी घड़ी और इतने पल पर शरीर छूट जायगा। इसीलिये मसल मशहूर है कि जो कोई हिसाब बहुत बारीकी से निकालता है तो उसको कहते हैं कि इसने तो प्राण निकाल लिये। महात्मा लोग जो प्राण की गति पर काबू पा लेते हैं वे प्राण निकलने का समय आने पर इनको रोक रखते हैं निकलने नहीं देते। जैसे किसी ने तलवार चलाई और वार को बचा गये तो प्राण बच जाते हैं। किसी मनुष्य ने इसी विषय में प्रार्थना की कि जब ग्रह मारकेश होता है तो बीमारी किसी रोगी की कम और किसी की अधिक क्यूँ होती है।

श्री महाराज ने फ़रमाया अगर ग्रह की दशा मारकेश हो तो बीमारी उतने वर्ष तक की हो सकती है जितनी महादशा की मियाद है। यदि उस ग्रह का अन्तर मारकेश है तो बीमारी महीनों की होती है, यदि प्रत्यन्तर मारकेश है तो बीमारी उतने दिनों की हो सकती है जितना समय उस ग्रह का माना गया है। यदि ग्रह का सूक्ष्म मारकेश है तो कुछ घड़ी की बीमारी के बाद शरीर छूट सकता है। यदि ग्रह का प्राण मारकेश है तो कुछ पल के लिये

ही बीमारी होगी और बोलते-बोलते ही स्वांस निकल जायेंगे। यानी जो सांस अन्दर से बाहर गया फिर आया या न आया। जो बात सत्सङ्ग से मालूम हुई है उसकी बुनियाद पर हम यह कहते हैं। वास्तव में तो इस विषय में ज्योतिषियों की राय ही ठीक माननी चाहिये। इस विषय के वे ही गुरु माने जाने चाहिये।

(३६) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि 'संकल्प' दो शब्दों से मिलकर बना है। 'सम' के अर्थ हैं शान्ति, सुरत, उन्नति आदि। 'कल्प' के अर्थ हैं कलना यानी ऐसी कल्पना करना जिससे सुख, शान्ति और उन्नति हो। इसी का रूप तर्पण दान आदि सभी धर्म के कार्य करने से पूर्व संकल्प बोला जाता है। अर्थात् पुण्य कार्य करने वाला मनुष्य संकल्प करता है कि मैं अमुक पुण्य कर्म करूँगा या करने वाला हूँ। लेकिन किसी बुरे काम के लिये इस तरह का जो मानसिक विचार किया जाये कि अमुक मनुष्य को मारूँगा उसको संकल्प नहीं कहना चाहिये क्योंकि इसके करने से सुख शान्ति नहीं होगी। इसको प्रण या प्रतिज्ञा कह सकते हैं। संकल्प शक्ति को बढ़ाने के लिये पाँच साधनों की आवश्यकता है। १. संकल्प एक ही हो, जैसे सन्तपुरुषों का बचन बदलता नहीं है। २. संकल्प को पूरा करने की उत्कट भावना। ३. प्रलोभन का त्याग। ४. परिश्रम। ५. दृढ़ता। अथर्ववेद में संकल्प के विषय में लिखा है "केवली सा मेऽस्तु।" अर्थात् मेरा संकल्प केवली हो, स्पष्ट हो और स्थिर हो। संकल्प में ये बातें न हों तो सफलता प्राप्त न होंगी। डावाँडोल चित्त और ढीले यक़ीन वाले का काम कभी पूरा नहीं होता।

(३७) एक रोज़ सत्संग में श्री महाराज ने यह दृष्टान्त दिया कि मारवाड़ में एक ब्राह्मण और एक वैश्य बालमित्र थे। बचपन में साथ खेले और पढ़े थे। घर भी पास-पास थे। जब बड़े हुए तो वैश्य ने कारोबार किया जिससे काफी धन प्राप्त हुआ। उसने संकल्प किया कि एक हजार रुपये वृन्दाबन में श्री गोविन्द जी की भेंट करूँगा। कुछ समय बाद ब्राह्मण मित्र का विचार वृन्दाबन जाने का हुआ। उसने वैश्य मित्र को भी चलने को कहा, परन्तु उसने उत्तर दिया मेरा कारोबार बहुत फैला हुआ है; जाना नहीं हो सकता। तुम यह एक हज़ार रुपया लेते जाओ वहाँ श्री गोविन्द जी की भेंट कर देना।

ब्राह्मण रु० लेकर रवाना हो गया। रास्ते में किसी जगह बहुत से साधु भण्डारा कर रहे थे, वेद मंत्र पढ़े जा रहे थे, कीर्तन हो रहा था। "वृन्दाबन बिहारी की जय", "श्री गोबिन्द जी की जय"। ब्राह्मण भी रुक कर सुनने लगा। जो महात्मा भण्डारा कर रहे थे उन्होंने कहा कि ब्राह्मण देवता तुम भी बैठ जाओ और श्री गोबिन्द जी का प्रसाद पाओ। वह भी भण्डारे में शामिल हुआ। प्रसाद पा चुकने के बाद भी कीर्तन होता रहा। ब्राह्मण देवता ने महात्माओं से पूछा कि महाराज इन भण्डारों के लिये धन कहाँ से आता है? जवाब मिला श्रीगोविन्द जी भेजते हैं। ब्राह्मण ने विचार किया कि मैं इस रु० को वृन्दाबन ले जाऊँ और फिर श्री गोबिन्द जी यहाँ भेजें, इससे इनको यहीं क्यों न दे दूँ। इसलिए ९९९) रु० उसने भण्डारे के लिए महात्माओं को दे दिए और एक रु० अपने पास रख लिया कि इसको श्रीगोबिन्द जी की भेंट चढ़ा दूँगा। जब भण्डारा हो चुका तो महात्माओं ने ब्राह्मण से पूछा कि तुम क्या चाहते हो? उसने प्रार्थना की कि मेरे मित्र ने यह रुपये दिए थे। वह व्यापार के कारण वृन्दाबन न आ सका, मैं चाहता हूँ कि श्री गोबिन्द जी उसको घर बैठे दर्शन दें। महात्माओं ने आशीर्वाद दिया "तथाऽस्तु"।

जब ब्राह्मण वृन्दाबन आया तो शेष एक रु० श्री गोबिन्द जी की भेंट कर दिया। देश लौट कर गया तो बहुत रात हुए घर पहुँचा। सोचा मित्र से सुबह मिलेंगे। उसी रात्रि श्री गोबिन्द जी ने वैश्य को दर्शन देकर कृतार्थ किया और फ़रमाया कि तुमने ब्राह्मण के हाथ जो १०००) रु० भेजे थे, उसमें से ९९९) रु० तो हमारे पास पहुँच गये, परन्तु एक रु० नहीं पहुँचा, उसी से पूछ लेना कि उसने उसका क्या किया।

इस दर्शन के प्रभाव से वैश्य का शरीर बड़ा तेजमय हो गया था। जब ब्राह्मण मित्र जाकर मिला तो उसको यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ और इसका वृत्तांत पूछा। वैश्य ने कहा कि रात को श्री गोबिन्द जी ने प्रत्यक्ष दर्शन दिए, उसी से मेरे शरीर की यह दशा हो गई है। मैं आपसे कहना तो नहीं चाहता था परन्तु उनकी आज्ञा के कारण पूछता हूँ। उन्होंने फ़रमाया है कि ९९९) रु० तो हमारे पास पहुँच गये परन्तु एक रु० नहीं पहुँचा। ब्राह्मण

ने सब वृत्तांत रुपयों का भण्डारे में भेंट करने और महात्माओं के आशीर्वाद का कहा तथा एक रु० मन्दिर में चढ़ाया बताया और कहा कि न मालूम वह किस तरह से काम में लिया गया जिसे श्री गोबिन्द जी ने स्वीकार नहीं किया।

सारांश यह कि सच्चे महापुरुष भगवान के स्वरूप होते हैं। इनकी सेवा करना कभी निष्फल नहीं जाती, बल्कि धन की सबसे उत्तम गति होती है।

(३८) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि भोग के सब पदार्थ जो संसार में देखने सुनने में आते हैं वे सब भगवान ने जीवों के भोग के लिये बनाये हैं वे सब नशीले और रसीले बनाये हैं कि इनके नशे में चूर और रस से जीव मस्त हो जाता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, शत्रुता कोई भी तो मस्ती और आनन्द से खाली नहीं नज़र आती। लेकिन मनुष्य अपनी बल-बुद्धि के भरोसे इनको अधिक भोगता है तो उससे फिर दुख पाता है। प्रेम-रस ही कितना रसीला है जिसका वर्णन करते-करते सब की बुद्धि थक गई परन्तु पूरी तरह से कोई वर्णन नहीं कर सका। जिस तरह बांस में छिपी हुई आग निकल कर बांस को भस्म कर देती है इसी तरह प्रेम में छिपी हुई कामाग्नि प्रकट होकर प्रेम को रूखा, फीका कर देती है। इसका पूरा आनन्द तब ही आता है जब कि कामाग्नि प्रज्वलित न होने पावे। सब संसारी मनुष्य उसको अनुभव कर रहे हैं। यह छिपी बात नहीं। भक्त-जन जो काम को दबा चुके हैं। जिन्होंने प्रेम को काम से अलग करके चखा है बस वे ही प्रेम का आनन्द जानते हैं अर्थात् उनका प्रेम रस भरा आम है। श्रीकृष्ण भगवान की जो प्रेम-लीलाएं हैं उनमें ऐसे ही प्रेम को दर्शाया गया है। ताकि भगवान के हृदय में जो रस छिपा है वह इन रसीली लीलाओं से प्रकट होकर उनको रसिक बनाये। इसलिये उनका ठीक आनन्द महापुरुष ही समझते हैं। दुष्ट पुरुषों के हृदय में ये लीलायें कामाग्नि को भड़का कर उनके हृदय को ऐसे तपाती हैं जैसे लकड़ी में से आग निकल कर लकड़ी को भस्म कर देती है। मामूली रासलीलाओं को देखकर ही इसका अनुभव कर लो कि प्रेमी साधु इस रस को कैसे अपनी आँखों द्वारा पीते हैं। अन्य मनुष्य तो मुँह फेर-फेर कर उसकी निन्दा करते हैं।

३९–एक समाजी सत्संगी ने पूछा कि भूत क्यों बनते हैं और कहाँ रहते हैं?

श्रीमहाराजने फ़रमाया— भूत कहते हैं गुज़रे हुए को। जो मनुष्य मर जाता है उसको आम बोलचाल में प्रायः कहते हैं कि अमुक गुज़र गया। जैसे सरकारी वर्दी सिपाही को नियत समय के लिये मिलती है, वैसे ही यह शरीर नियत समय के लिये मिलता है या ऐसी मृत्यु जैसे अग्नि से जलने, पानी में डूबने, सर्प के काटने या चोर-डाकू आदि के हाथ से मारे जाने पर अकाल मृत्यु हो जाती है, चोला छूट जाता है तो दूसरा चोला तैयार होने तक जीवात्मा को किसी न किसी स्थान में रहना ही पड़ता है। जैसे कोई मनुष्य किसी मकान से निकाल दिया जाय और दूसरा मकान उसको रहने को नहीं मिले तो वह किसी पेड़ के नीचे या टूटे-फूटे मकान में जहाँ कोई और न रहता हो वहाँ गुज़ारा करता है, या किसी स्थान से उसको बहुत मोह हो और वहाँ मौक़ा लग जाये तो वहाँ ठहर जाता है। इसी तरह से बिना शरीर वाला जीवात्मा किसी पेड़ या खण्डहर मकान में या जहाँ उसका मोह फँसा हो, रहता है। जब कर्म के आधीन दूसरा चोला मिल जाता है तो उस योनि में प्रवेश कर जाता है। ऊपर के और शरीरों की अपेक्षा लिङ्ग शरीर में स्थूलता अधिक है।

४०–एक रोज़ इर्शाद हुआ कि वेद, उपनिषद, शास्त्र, पुराण, ऋषी, अवतार सब ने ब्रह्म को अकथनीय, अलख, अगोचर, अनामी अनन्त कहा है। जब यह बात है तो उसको मनुष्य कैसे पहचान सकता है। जिसको न देखा हो और न पहचाना हो उसकी उपासना कैसे करें? सुख या आनन्द रस ऐसा है जिसका अनुभव हर जीव को होता है। इसीलिये वह हर हाल और हर सूरत में आनन्द की तलाश करता है लिहाज़ा हर जीव आनन्द का पुजारी है और यह पूजा शक्ति अनुसार यानी प्रकृति और स्वभाव के अनुसार आनन्द के अनुभव से ही आरम्भ होती है। आनन्द चाहे छोटे से छोटे दर्जे का हो या उत्तम से उत्तम दर्जे का या मध्यम दर्जे का, वह लगातार पूजा के ज़रिये सिल-सिलेवार उन्नति करता जाता है। जब संसार के सम्पूर्ण विषयों के आनन्द में उसका बढ़ना-घटना प्रतीत होता है तो उसकी आत्मा का ठहराव किसी भी संसारी आनन्द से नहीं होता। वह तलाश करते २ एक दिन ब्रह्मानन्द तक

पहुँच जाता है। उसकी तलाश की तृप्ती हो जाती है और आनन्द की इच्छा का अन्त होता है। यह उसकी पूजा का अन्त या पूर्णावस्था है। इसलिये यह कुल संसार आनन्द का पुजारी है।

४१—एक रोज़ एक सत्संगी ने पूछा कि क्या कारण है कि यह मन अपने आप चलता रहता है, रोकने को इतना ज़ोर लगाते हैं फिर भी रुकता नहीं।

श्री महाराज ने फ़रमाया—जल का स्वभाव बहना है और बहाव में तरंग, भंवर पड़ते हैं जिनको मौज कहते हैं। यह बहाव स्वभाव से है, किसी कारण से नहीं। इसी तरह से फ़ुरना आत्मा का स्वभाव या मौज है। यह अपने आप बिना यत्न के होती रहती है। जिस तरह से पानी के बहाव को रोकने के लिए नाना प्रकार के यत्न करने और बांध बांधने पड़ते हैं, उसी तरह से इस मन की गति को रोकने के लिए भी प्राणायाम आदि तरह-तरह के यत्न करने पड़ते हैं और उसकी क्रियायें, मूल-बंध आदि लगाने पड़ते हैं।

४२—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि चिदाकाश में "एकोऽहं बहुस्याम:" रूप अस्पंद से नाद हुआ। ऐसी ध्वनि दो प्रकार की है। एक आहत ध्वनि—जिसमें कोई अर्थ नहीं उत्पन्न होता। दूसरी अनाहत ध्वनि जिसका अर्थ है "सोऽहं"। यह अव्यक्त रूप से पहले आज्ञाचक्र में मनोभूत हुई, फिर अनाहत चक्र में श्रवणेन्द्रिय को प्रतीत हुई। अनाहत चक्र की सोऽहं ध्वनि में जो ओंकार है उससे स्वर और व्यंजन उत्पन्न हुए। उन्हीं को वर्ण अथवा अक्षर कहते हैं। क्योंकि शब्द उच्चारण से पहले भी थे, शब्द उच्चारण के समय भी हैं और शब्द उच्चारण हो चुकने पर भी हैं जैसे अन्धेरे में रखा हुआ घड़ा प्रकाश से पहले, प्रकाश हो जाने पर और फिर अन्धेरा हो जाने पर भी है। इसीलिये यह अविनाशी है। कुण्डलिनी उत्पन्न होने के पहले स्फुट हुई, उसके साथ प्रकाश और गति उत्पन्न हुए। परन्तु ब्रह्म की इच्छाशक्ति स्फुट है और क्रिया शक्ति महानाद है। महानाद के साथ अक्षरों की उत्पत्ति हुई। परम शिव के डमरू से "अ-इ-उ-ण" अक्षर उत्पन्न हुए। अक्षर ही मात्राएं हुईं। "ब्रह्माण्डे सो पिण्डे"। इसी तरह से जीव के साथ ही नाद अक्षर और प्रकाश उत्पन्न हुए। अजपा वग़ैरह करने से अपने स्वांस के साथ आने वाले

प्रकाश का साक्षात्कार होता है। प्राण-कोष के सहारे स्वप्न दीखते हैं। स्वप्न का सब व्यवहार प्रकाश में ही होता है।

४३—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि 'हम और अहं' शब्द अहंकार वाची हैं। इनको हृदय में धारण करने से गिरावट और दुख होता है और 'नाऽहम्' को निश्चय करने से गति उलट जाती है और यह जीव को महान से महान बना देती है, जिससे उसमें तेज, बड़प्पन, उत्तमता और श्रेष्ठता आ जाती है।

४४—एक रोज़ एक सतसंगी ने प्रार्थना की कि विद्या तो बड़ी अच्छी चीज़ है और श्री व्यास जी भी निष्पक्ष महात्मा हुए हैं फिर उन्होंने शूद्रों को वेद पढ़ने से क्यों मना किया है?

श्रीमहाराज ने फ़रमाया कि जब श्री व्यासजी की निस्बत आपकी ऐसी श्रद्धा है तो फिर उनके काम को क्यों बुरी निगाह से देखा जाये। बड़ों की हर बात में कुछ असूल होते हैं। उनको ढूंढ कर निकालना चाहिये। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णों का विभाग सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के अनुसार क़ायम हुआ है। शूद्र वही है जिसमें तमोगुण सबसे अधिक हो, वैश्य वही है जिसमें रजोगुण और तमोगुण प्रधान हों, क्षत्री वह है जिसमें सतोगुण, रजोगुण प्रधान हों। ब्राह्मण वे हैं जिनमें सतोगुण प्रधान हों। लिहाज़ा जिस वस्तु से अभिमान, वाद-विवाद बढ़े और दूसरों को नुकसान पहुँचे वह काम अधोगति को पहुँचाता है, उससे बचना चाहिये।

"विद्या विवादाय, धनं मदाय, शक्ति परेषां पीड़नाय।"

शास्त्रों में इसीलिये ऐसी मर्यादा क़ायम की है कि तामसी के पास यदि विद्या होगी तो वाद-विवाद करेगा; धन होगा तो मद पैदा करेगा, शक्ति होगी तो दूसरों को पीड़ा देगा। सात्विकी के पास विद्या होगी तो ज्ञान प्राप्त करेगा। धन से दान देगा, शक्ति से दूसरों की रक्षा करेगा। राजसी के पास विद्या होगी तो अभिमानी हो जायेगा। धन को अपने लाभ के वास्ते और भोग-विलास में उड़ा देगा, शक्ति होगी तो लोगों को दबा देगा आप देखते नहीं कि तामसी लोग क़ुरान, पुराण, अन्जील, वेद-शास्त्र आदि के कैसे २ टेढ़े अर्थ निकालकर इन धर्म से पूर्ण ग्रन्थों की और उनके आचार्यों की निन्दा करते हैं और राजसी भी इनकी दिल्लगी उड़ाते हैं। सात्विकी इन्हीं ग्रन्थों से ज्ञान लाभ

करते हैं। धन से तामसी कैसे मदान्ध हो जाते हैं। राजसी कैसे दिखलावे के काम करते हैं; सात्विकी कैसे गुप्तदान और मोहताजों की ज़रूरत के काम करते हैं। अख़्तियार होने पर तामसी क़त्ल तक करा देते हैं। राजसी और लोगों को कितना दबाते हैं और सात्विकी किस तरह से लोगों की रक्षा करते हैं। जिस तरह से स्वाति का जल सीप में मोती, केले में कपूर और सर्प में ज़हर पैदा करता है। उसी तरह से विद्या, धन और शक्ति स्वभाव के अनुसार मनुष्यों में अलग २ भाव पैदा करते हैं। इसीलिये जो वस्तु जिस मनुष्य को नुक़सान पहुँचाने वाली समझी गई है उसके सेवन का उसका हक़ न समझकर उसको रोका गया है। वर्ना वेद-शास्त्र खुले ग्रन्थ हैं जो चाहे पढ़े। मगर लाभ के बजाय तामसी मनुष्य अपना अधोपतन कर लेगा।

(४५) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि खाना, पीना, नहाना धोना, शौच आदि करने के लिये किसी को तो समय की पाबन्दी है और कोई ज़रूरत मालूम होने पर करते हैं। मसलन किसी के खाने का समय १० बजे है और किसी को जब भूख लगती है तब खाता है। बाज़ समय भूख न होने पर भी मनुष्य खा लेता है। बल्कि घर वाले भी कहते हैं कि ज़्यादा नहीं तो थोड़ा ही खालो। यदि बहाना भी किया जाय कि पेट साफ नहीं हुआ, भूख नहीं मालूम होती; तो उत्तर मिलता है कि खाया तो है नहीं, पेट खाली पड़ा है, दस्त आये तो कहाँ से आये। जब पेट में पड़ेगा तो कुछ न कुछ गुण करेगा ही और दस्त भी आयेगा ही। ग़र्ज़ कि कहने सुनने से या अपनी इच्छा से खा लेता है। यहाँ तक कि बीमारी में वैद्य के मना करने पर भी बीमार चुरा छिपा कर या घर वालों के कहने पर कुछ न कुछ खा ही जाता है। खाना, पीना, सोना आदि की क्रिया इस शरीर की स्थिति के लिये ज़रूरी माने जाते हैं और यह भी समझ लिया जाता है कि इनके बग़ैर यह शरीर चलना ही नहीं इन क्रियाओं में से कुछ को दुखदाई समझ कर नहीं छोड़ देते। हालांकि इनके करने में भी कुछ न कुछ कष्ट होता ही है और समय भी लगता ही है। इसी तरह भगवद्भजन को भी किसी इच्छा और फल की कामना के बग़ैर नियत समय पर शरीर मन और बुद्धि के ठीक संचालन के लिये आवश्यक समझ कर अवश्य ही करना चाहिये बल्कि ऐसी आदत हो जानी चाहिये कि भजन नियत

समय पर न हो या न हो सके तो दिन रात में किसी भी समय इसे करने की शरीर को ऐसी ही ज़रूरत मालूम होने लगे और न करने से शरीर को ऐसा दुख होने लगे जैसा कि भोजनादि न करने से शरीर का गुज़ारा ही नहीं चलता किसी न किसी समय यह सब क्रिया करनी पड़ती है।

(४६) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि ब्राह्मण जो कुछ करते हैं फौरन कर डालते हैं, चाहे श्राप दें चाहे आशीर्वाद दें, झट से काम कर दिया लेकिन सतोगुण होने से अच्छा ज्यादा करते हैं बुरा बहुत ही कम। विद्या की लालसा हमेशा लगी रहती है, सब विद्या इन्हीं को आजाय। क्षत्री जो कुछ काम शत्रुता या मित्रता का करते हैं बहुत सोच समझ कर, रजोगुण प्रधान होने से खुल्लम-खुल्ला करते हैं। इससे जिस किसी को उनके खिलाफ कुछ करना मंजूर हो उसको करने का मौका मिल जाये। उनको आनकी बड़ी चाहना होती है। वैश्य में तमोगुण का अंश अधिक होने से चुपके-चुपके काम करने का स्वभाव होता है जैसे लकड़ी में अन्दर ही अन्दर घुन लगता रहता है, जब घुन खालेता है तब दस पाँच छेद बाहर दिखलाई देते हैं। इनके काम का पता नहीं चलता इसलिये उनको रोकना मुश्किल होता है। ये धन के लोभी होते हैं और चाहते हैं कि दुनियाँ भर की माया इन्हीं को मिल जाये। चाहे चाम जाये पर दाम न जाये। शूद्र तमोगुण होने से विचार शक्ति नहीं रखते, जो कुछ करना होता है झटपट कर डालते हैं मगर बुरा ज्यादा अच्छा कम। इनको कोई मंत्र, दवा जड़ी बूटी या नई बात मालूम हो जाये तो उसको कभी किसी को नहीं बतलायेंगे। ऐसी बातें जानने की बड़ी इच्छा रखते हैं और उनको जान कर बड़ा घमण्ड करते हैं। जिस समय में जिस वर्ण का राज्य हो उसमें उसी तरह की व्यवस्था देखने में आयेगी। ब्रह्म राज्य में श्रुति, स्मृति के लिखे हुये धर्म पालन करने के लिये जिस-जिस सामग्री से धार्मिक कर्मों का पालन होता है उसकी रक्षा की जाती है। जो सामग्री बाधक होती है उसका नाश किया जाता है। विद्वान्, पण्डित, घी, दूध, दही, अन्न धन से यज्ञ, दान, ब्रह्म भोजन आदि करवाते हैं। इनके अभाव से नहीं हो सकते। इसलिये विद्वान ब्राह्मण द्वारा गौ आदि की रक्षा पूरी तरह से की जाती है। क्षत्री राज्य में अपनी मान प्रतिष्ठा क़ायम रखने के लिये सब काम होता है।

संतोष

देखो श्रीरामचन्द्र जी ने लंका को पृथ्वी प्राप्ति के लिये नहीं जीता था सिर्फ मानप्रतिष्ठा के लिये। इसलिये जीत कर सब राज्य, पृथ्वी धन, सम्पदा विभीषण को सौंप दी। वैश्य राज्य में धन बढ़ाने का ध्यान सदा लगा रहता है। वाणिज्य कला कौशल, खेती बाड़ी, लेन देन जो प्रजा के करने के काम हैं उन सबको राजा अपने हाथ में ले लेता है। खेती के काम हों तो राज्य के, दूध, दही, घी की डेरी हो तो राज्य की, लेनदेने के बैंक हों तो राज्य के यहाँ तक कि नोन, तेल तक का व्यापार राजा के हाथ में होता है। चाहे मानहानि से धन आवे, चाहे जूआ, सट्टा से धन मिले हर तरह से राजा उसको बटोरता है। गुप्त रीति से गौ, ब्राह्मण अन्न, धन की हानि की जाती है। जिससे होले-होले धर्म लुप्त होता रहे। शूद्र राज्य में खुल्लमखुल्ला प्रजा की मानहानि होती है किसी के पास अच्छी वस्तु अच्छी स्त्री हो, राजा ज़बरदस्ती उसको क़ाबू में कर लेता है। थोड़ी सी विद्या सिखाने और पढ़ाने का यत्न रह जाता है। वह भी राजा की तरफ से नहीं वल्कि प्रजा की उदारता से चलता है। विद्वान रहते ही नहीं इसलिये जिसके जी में आता है वह शास्त्रों का उल्ट-पुल्टा अर्थ कर लेता है। गौ खुल्मखुल्ला नष्ट कर दी जाती है। अन्न, धन पर प्रजा का कुछ भी अधिकार नहीं रहता जैसा शूद्रों को थोड़ा या कम कपड़ा पहनने और अनाज खाने को दिया जाता है उसमें पेट भर लेते, तन ढक लेते हैं। इसी तरह से शूद्र राज्य में पेट भरने को अन्न और तन ढकने को वस्त्र बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है। जब विद्वान के दूध, अन्न, धन नहीं तो ऐसी अवस्था में यज्ञ, दान, ब्रह्मभोज, पुण्य आदि धर्म के काम करें तो कैसे करें और काहे से करें। भिखारी को चुटकी भर चून देने के लाले पड़ जाते हैं और सोचना पड़ता है कि कहीं घर वालों का पेट तो नहीं कटेगा। साधु-महात्माओं का अभाव हो जाता है। जब रोटी का भी रोना पड़ गया तो स्वतन्त्रता से भजन कैसे बने। दिन भर माँगने से भी पेट भर रोटी नहीं मिलती तो साधु भी तरह २ के ढौंग रच कर गुज़ारा करते हैं। इसी तरह कर्म, धर्म नष्ट हो जाने से प्रजा भ्रष्ट हो जाती है। जब प्रजा भ्रष्ट हुई तो राज्य को भी नष्ट समझना चाहिये।

४७—एक रोज़ एक सत्संगी ने अर्ज़ किया कि जो साधु और सेवक

दर्शनार्थ बाहर से आते थे पहिले उनके वास्ते बहुत बढ़िया भोजन कई तरह का तैयार होता था, फिर ज़्यादा खर्च के विचार से दाल, चावल, साग और रोटी आदि का प्रबन्ध आरम्भ हुआ। उसके वास्ते भी चन्दा देने वाले आलस्य मानने लगे। इसलिये अब कमेटी ने सिर्फ़ दाल-रोटी रखी है।

श्रीमहाराज ने फ़रमाया कि यह तो बहुत अच्छी बात है; जो बात सहूलियत से बर्दाश्त हो सके वही करनी चाहिये। बोझा और दिल में दुःख मानकर दान देना दुरुस्त नहीं। फ़रमाया कि हमको एक नकल याद आई कि किसी गाँव में एक चौधरी बड़ा होशियार था जैसा मौका देखता था लोगों का वैसा ही काम संभाल देता था। किसी के घर ज्यौनार में घी नहीं था; लेकिन ज्यौनार करने वाला बोला कि यदि ज्यौनार में घी नहीं परोसा गया तो मेरी नाक कट जायगी। चौधरी ने थोड़ा सा घी लिया और एक सींक उसमें डुबोकर हरएक जीमने वाले की पत्तल पर घी बूँद २ टपका दिया, गोया घी भी परोस दिया गया। वह चौधरी मर गया और उसकी जगह दूसरा चौधरी मुकर्रिर हुआ। एक दिन किसी बहुत ही ग़रीब आदमी के यहाँ ज्यौ-नार हुई; वह घी का बिल्कुल इन्तज़ाम नहीं कर सकता था। उसने कहा कि पहले चौधरी बड़े होशियार थे, ज़रा से घी में ही बात बना दी थी, अब हमारी बात कैसे बने। यह चौधरी बाला कि तू थोड़ा सा घी किसी से माँग ला, वह घी ले आया तो घी के बर्तन को हर एक जीमने वाले के आगे करके चौधरी बोलता गया कि "सींक परोसा मर गये अब देखो भैया घी"। इसी तरह से घी की परोसगारी भी समझ ली गई। जैसी नीयत तैसी बरकत।

४८—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि प्रायः आजकल के महापुरुष नया मत चलाने और अपना नाम प्रकट करने के अभिप्राय से कोई मनगढ़न्त अर्थात् अपनी रुचि के अनुसार भजनाभ्यास की युक्तियाँ प्रचलित करते हैं अथवा भजन की पुरानी युक्तियों को ही अदल-बदल करके बतलाते हैं कि प्राचीन युक्तियाँ अब काम की नहीं, इस कारण समय के अनुसार परिवर्तन करके भजन के नये नियम हमने प्रकट किये हैं परन्तु आश्चर्य की बात है जबकि श्री योग वशिष्ठ जिसमें त्रेतायुग का उपदेश है और भगवद्गीता जिसमें द्वापर युग के अन्त का इतना समय बीत जाने पर भी इन दोनों ग्रन्थों में भजनाभ्यास की युक्तियाँ

मिलती-जुलती हैं। श्रीकृष्ण भगवान ने गीता के चौथे अध्याय के १, २, ३ श्लोक में स्पष्ट कहा है कि मैंने इस अविनाशी योग को कल्प के आदि में सूर्य से कहा था, परन्तु बहुत समय के व्यतीत हो जाने से वह लुप्त हो गया है। इस कारण यह पुरातन योग अब तुझसे कहता हूँ। अब विचार करने की बात है कि जब पूर्ण शक्तिसम्पन्न अवतारों ने भी कोई नई भजनाभ्यास की युक्तियाँ प्रकट नहीं कीं अथवा उचित नहीं समझा तो फिर किसी और की क्या शक्ति है। परन्तु खेद की बात यह है कि बहुत से महापुरुष श्रीकृष्ण भगवान से भी अपने को पद में ऊँचा समझते हैं। श्रीमद्भागवत के ११वें स्कन्ध में स्पष्ट कहा है कि कलियुग में मनमानी करने वाले बहुत से नास्तिक पाखण्डी नये-नये मत चलावेंगे जबकि नया मत चलाने वाले अपने को उस महान शक्ति से अधिक बताते हैं तो उनके अनुयाइयों की भूल की तो हद ही क्या हो सकती है।

श्रीकृष्ण भगवान ने गीता अध्याय ३ श्लोक ३ में बताया है कि दो प्रकार की निष्ठा है, एक ज्ञानियों की सांख्य योग, दूसरी योगियों की कर्म योग। इसी तरह से श्री वशिष्ठ जी का कथन है कि संसार से तरने की जो युक्ति है उसका नाम 'योग' है। यह दो प्रकार की है, एक सम्यक ज्ञान, दूसरी प्राण रोकने की। यद्यपि दोनों प्रकार से योग शब्द कहलाता है तो भी योग प्राण के रोकने का नाम है और उनकी राय में ज्ञान मार्ग सुगम है। गीता के दूसरे अध्याय में जो उपदेश दिया है उसको सुनकर यही समझा कि कर्म मार्ग से ज्ञान मार्ग श्रेष्ठ है। परन्तु गीता के अध्याय ३ श्लोक ४ में श्रीभगवान ने स्पष्ट कथन किया है कि कर्मों का आरम्भ न करने से अथवा उनका त्याग करने से सिद्धि प्राप्त नहीं होती। भजनाभ्यास की जितनी युक्तियाँ हैं इन निष्ठाओं के अन्तर्गत हैं। मुख्य मुख्य भजन की युक्तियों का वर्णन गीता में और योग वशिष्ठ के सर्ग १२ से २० तक निर्वाण प्रकरण में तथा और भी स्थान पर किया है। ये सब आपस में मिलता-जुलता है। अध्याय ३ श्लोक ७ से १७ तक में लिखा है कि मन से इन्द्रियों को वश कर के यज्ञ करें। कर्म वेद से उत्पन्न हुए हैं और वेद ब्रह्माजी से, परन्तु जो पुरुष आत्मा से प्रीति वाला और उसी में सन्तुष्ट है उसके लिये कोई कर्त्तव्य नहीं है। अध्याय ४

श्लोक २१ से ३० तक कर्म करने वालों के गुण और यज्ञ करने वालों की युक्तियाँ हैं जैसे कि (१) इच्छारहित मन, इन्द्रियों का जीतना, अहङ्कार और सङ्कल्परहित होना, यथा लाभ सन्तोष, देवपूजन, यज्ञ, ब्रह्मज्ञान, इन्द्रिय-निग्रह, प्राणायाम, मिताहार आदि। इसी प्रकार योग वशिष्ठ में और जगह योग का वर्णन है। (२) रेचक, पूरक और कुम्भक प्राणायाम (३) ओंकार का उच्चारण (४) रेचक प्राणायाम से शून्य भाव (५) कुम्भक प्राणायाम से प्राण वायु को रोकना, (६) खेचरी मुद्रा, तालु की जड़ से जीभ को लगा कर अजपा करना (७) नाक की नोंक से बाहर बारह अंगुल तक अपान रूपी चन्द्रमा का स्थान निर्मल आकाश है उसको देखना। (८) दोनों भौंहों के बीच त्रिकुटी में जहाँ चैतन्य कला मिलती है वहाँ वृत्ति लगाना। ऐसे अभ्यासी को कर्म बन्धन नहीं करते। गीता अध्याय ५ श्लोक २७, २८ में ये युक्तियाँ अभ्यास की लिखी हैं : विषय भोगों का चिन्तन न करता हुआ दृष्टि को भृकुटी के बीच स्थिर करके तथा नासिका में विचरने वाले प्राण, अपान वायु को सम करके जीती हुई हैं मन, इन्द्रियाँ और बुद्धि जिनकी, ऐसा जो मोक्ष परायण मन, इच्छा, भय, क्रोध से रहित है वह सदा मुक्त है। (९) गीता अध्याय ६ श्लोक ११ से १५ : शुद्ध भूमि में कुशा, मृगछाला बिछा कर ऐसा आसन जमावे जो न अति ऊँचा हो न अति नीचा उस आसन पर बैठ कर मन को एकाग्र करके चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करें। काया, सिर और गर्दन को सम और अचल धारण किए हुए दृढ़ होकर अपनी नासिका के अग्रभाग को देखे और ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित रहता हुआ भय रहित हो, शान्त अन्तःकरण वाला और सावधान होकर मन को वश में करके मेरे में लगे हुए चित्त और मेरे परायण हुआ होवे। गीता अ० ८ श्लो० १२ से २३ में सब इन्द्रियों के द्वारों को रोक कर अर्थात् इन्द्रियों को विषयों से हटा कर मन को हृदय में स्थिर करके और अपने प्राण को मस्तिष्क में स्थापन करके योग धारण में स्थिर हो जो पुरुष इस एक अक्षर ब्रह्म "ॐ" का उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थ स्वरूप मेरे को चिन्तन करता हुआ शरीर को त्यागता है वह पुरुष परम गति को प्राप्त होता

है। गीता अ. १२ श्लो. ६ से १२ : तक सब कर्मों को मुझ में अर्पण करके मुझमें परायण अनन्य योग करके निश्चय मेरा ध्यान करते हुए उपासना करते हैं; मुझमें लग रहा है चित्त जिनका तिनका मृत्यु रूप संसार समुद्र से जल्दी ही मैं उद्धार करता हूँ (८) निश्चल मन को स्थिर कर मुझमें मन और बुद्धि को लगा इसके उपरान्त मुझमें ही वास करेगा (६) यदि मुझमें चित्त समाधान नहीं कर सकता तो मन को अभ्यास योग करके मेरी प्राप्ति की इच्छा कर (१०) अगर अभ्यास में असमर्थ हो तो केवल मेरे लिये ही कर्म करने को परायण हो इससे मेरी प्राप्ति रूप सिद्धि को प्राप्त होगा (११) और जो यह भी न कर सके तो भक्ति योग का आश्रय करके सर्व कर्मफल का त्याग मेरे लिये करे (१२) अभ्यास से विचार श्रेष्ठ है, विचार से ध्यान श्रेष्ठ है, ध्यान से कर्म फल त्याग श्रेष्ठ है क्योंकि इसी से अन्तःकरण में शान्ति प्राप्त होती है अ. ८ श्लोक १३, अ. १० श्लोक २५, अ. १७ श्लोक २३ में भी ॐ शब्द का वर्णन है। योगवशिष्ठ उपशम प्रकरण उद्दालक विश्रान्त नाम ४६ वें सर्ग में ॐकार के ध्यान के विषय में ऐसा लिखा है कि अकार ब्रह्मा, उकार विष्णु, मकार शिव, और अर्धमात्रा तुर्या है। पहले अकार की ध्वनि ले रेचक प्राणायाम करे और सब प्राण वायु भीतर से बाहर निकाले उससे हृदय शून्य और शुद्ध होता है और देह अभिमान को त्याग कर परेष्ठिक सुषुम्ना के मार्ग को प्राप्त हो तो ब्रह्मरन्ध्र में स्थिति होती है। इसमें हठ से अधिक न रोके जब तक सुख से हो सके स्थित रहे जब थक जावे तो वायु को बाहर से अन्दर को उकार रूप विष्णु के ध्यान के साथ कुम्भक करे अर्थात् सब प्राण वायु के आधार चक्र अर्थात् हृदय चक्र में रोक लें न नीचे जाये न ऊपर आये। इस प्राण स्थित संघ से अग्नि निकलती है जिससे पाप रूपी मल जल जाता है। इसमें भी हठ न करे जब तक सुख रहे रोके। फिर मकार की ध्वनि से रुद्र का ध्यान करके पूरक प्राणायाम करे अर्थात् सब स्थान वायु से पूर्ण करने से चित्त कला ऊपर को प्राप्त होती है इससे अभ्यासी दूसरों को भी पवित्र कर सकती है जब वायु स्थित हो जावे तो अर्ध मात्रा जो तुर्या पद है उसके दर्शन के निमित्त प्रयत्न करें। नेत्रों को आधा मूंद कर और बाहर के विषयों को

त्याग कर प्राण अपान को मूल चक्र में रोके जिससे ९ दरवाज़े रुक जाते हैं। इस तरह से सात्विकी वृत्ति का भी त्याग करने से स्थिति होती है। जब मन की वृत्ति जो निद्रा रूप है उसमें मन मूर्छित होता है तब राजस, तामस का प्रवाह फुरता है उसको आत्म विवेक से निवृत्त करें और विवेक के बल से चित्त-कला में लगा कर उसका साक्षात् करें। उसमें क्षण भर भी स्थित रह कर बाहर निकल जाये तो उसको फिर आत्मकला में लगाये। इस तरह अभ्यास करने से धीरे-धीरे परम शान्त आत्मपद में चित्त की वृत्ति स्थित हो जाती है। जिसको इस पद का अनुभव हो जाय वह भोगों की इच्छा नहीं करता। इसी प्रकरण के उद्दालक निर्वाण नाम ५० वें सर्ग में खेचरी मुद्रा का वर्णन है कि पद्मआसन से बैठ दांतों से दांतों को मिला कर जीभ को उलट कर तालू से लगाये और सब संकल्पों को त्याग, प्राण वायु को मूलाधार चक्र में स्थिर करे। खेचरी मुद्रा से सब भावाभाव विकल्पों को त्याग कर चित्त को आत्म पद में लगाने से रोंयें खड़े हो आवें तब स्वतः सामान्य पद की प्राप्ति होती है। उपशम प्रकरण सर्ग ५१ "ध्यान विचार" नाम में समाधि के विषय में लिखा है कि यह गुणों का समूह अहंकार से लेकर सत्वगुणात्मिक है, उनको जो अनात्म रूप दीखता है और अपने को केवल उनका साक्षी चैतन्य जानता है और स्वभाव ही से जिसका चित्त शीतल है उसको समाधि कहते हैं। जिसके हृदय से संसार के राग-द्वेष मिट जाये और शान्त-पद को प्राप्त हो उसको सदेह समाधि कहते हैं। जो इन्द्रियों को मारकर बैठा है और मन से जगत् के पदार्थों की चिन्तना करता है उसकी समाधि मिथ्या है, वह बावले-की तरह नाचता है, यह बात भगवत्गीता के अ० ३ श्लोक ६ में कही गई है।

निर्वाण प्रकरण के सर्ग ६८ में "अग्नि सोम विचारयोग" में कुण्डलिनी महामाया का वर्णन है कि नाभि के नीचे आधार चक्र में नागिनी की तरह कुण्डली मारे बैठी है और वासना उसमें विष है। इसी कुण्डिलिनी में से मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और इन्द्रियाँ आदि प्रकट होती हैं और आत्मा का प्रकट होना भी इससे जाना जाता है। योग से सिद्धि प्राप्त करके देश, काल, क्रिया और वस्तु को वश में करना, मूंह में गुटका रख कर जहाँ चाहे ले जाना, आँखों से अञ्जन लगा कर जिसको देखना चाहे देख लेना, सब पृथ्वी को वश

कर लेना। सारांश सब बातों का वर्णन प्राचीन शास्त्रों में आगया है कोई बात बाकी नहीं है।

निर्वाण प्रकरण के २१ वें सर्ग "प्राण अपान समाधि" नाम में प्राणायाम को प्राण चिन्तना नाम से इस तरह वर्णन किया है कि जब हृदय से प्राण बाहर १२ अंगुल तक जाता है तब प्राण का रेचक और अपान का पूरक होता है, जब प्राण अपान में समा गया तब अपान का कुम्भक होता है। जब अपान बाहर से प्राण बन कर अन्दर जाता है तब अपान का रेचक और प्राण का पूरक होने लगता है, जब अपान हृदय में जहाँ ६० तत्व हैं पहुँच कर प्राण बन कर स्थित होता है तब प्राण का कुम्भक होता है, कुम्भक में स्थित होने से सब ताप मिट जाते हैं।

योगवशिष्ठ के निर्वाण प्रकरण के सर्ग ६१ "वैताल प्रश्न नामी" में फिर लिखा है कि बोध में जागृत एक सांख्य मार्ग से होता है, दूसरा योग से। सांख्य मार्ग में तत्व और मिथ्या का विचार होता है। तत्त्व उसको कहते हैं कि मैं आत्मा सत्य और चैतन्य हूँ और सब जगत् मिथ्या, जड़ और असत्य है। मुझ में अज्ञान कल्पित है और मैं अद्वैत आत्मा हूँ, मुझमें अज्ञान और जगत दोनों नहीं ऐसे निश्चय में स्थित होना सांख्य विचार है। और गीता के अ. २ के श्लोक ११ से ३० तक यही सांख्य का विषय है। योग प्राणों के स्थित करने को कहते हैं, जब प्राण स्थित होता है और जब मन स्थित होता है तब प्राण भी स्थित होता है इनका परस्पर सम्बन्ध है। यह जीव परेष्टिका में स्थित होकर जैसी वासना करता है, तो शरीर त्याग कर उसी के अनुसार आकाश में स्थित होता है उसका नाम प्राण है। इस वासना रूप प्राण से फिर इसको संसार का भान होता है जब प्राण की वासना क्षय होती है तब मुक्ति होती है। ज्ञान से चित्त सत्त पद को प्राप्त होता है और योग करने से प्राण वायु स्थित होती है तब वासना क्षय हो जाती है। जब स्वरूप को प्राप्त होता है तब संसार के पदार्थों का अभाव हो जाता है। जैसे रसायन से तांबा, सोना हो जाता है फिर ताँबे का भाव नहीं रहता। एक मुहूर्त भर भी चित्त स्थित होने से आत्म पद प्राप्त हो सकता है।

गी. अ. ४ श्लोक ३४-३५ में कहा है कि तत्व जानने वाले पुरुषों के

पास जाकर उनसे प्रश्न करके और उनकी सेवा करके ज्ञान सीखे, जिसको जान कर सर्व व्यापी अनन्त चेतन रूप हुआ अपने अन्तर्गत समस्त बुद्धि के आधार सम्पूर्ण भूतों की और उसके उपरान्त सच्चिदानन्द स्वरूप में एकीभाव हुआ देखेगा। फिर अ. ६ श्लोक २४-२५ में लिखा है कि मनुष्य को चाहिए कि संकल्प से उत्पन्न होने वाली सम्पूर्ण कामनाओं को वासना और आसक्ति सहित त्याग कर मन के द्वारा इन्द्रियों के समुदाय को सब ओर से अच्छी प्रकार वश में करके क्रम-क्रम से अभ्यास करता हुआ उपरामता को प्राप्त होवे तथा धैर्य-युक्त बुद्धि द्वारा मन को परमात्मा में स्थित करके परमात्मा के सिवाय और कुछ भी चिन्तन न करे। गीता के अ. १३ में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, प्रकृति पुरुष और ज्ञान अज्ञान का विषय है और योग वशिष्ठ के स्थिति प्रकरण सर्ग ४२ जीवत्व वर्णन में भी क्षेत्र क्षेत्रज्ञ का विषय है। इसी तरह से उपनिषदों में भी योग के इन्हीं तरीक़ों का वर्णन है। अर्थात् वही पुराने तरीक़े परम्परा से अब तक चले आते हैं और जब से अब तक उनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। योग-वशिष्ठ में लिखा है कि शास्त्र के अनुसार कर्म करना कल्याण का कारण है। संत लोगों की संगत से और शास्त्र के विचार से बड़ा प्रकाश होता है। जो पुरुष इनको सेवता है वह अन्धे कुए में नहीं गिरता। शास्त्र के अनुसार जिनके कर्म हैं ऐसे पुरुष सन्त हैं। उनकी संगत संसार के पाप कर्मों से हटाती है और शुभ कर्मों में लगाती है। गीता अ. १६ श्लोक २३ में श्रीकृष्ण महाराज ने फ़रमाया है कि जो पुरुष शास्त्र की विधि को त्याग अपनी इच्छा से बर्तता है वह न तो सिद्धि को प्राप्त होता है और न सुख को हीऔर न परम गति को।

योग वशिष्ठ में उपशम प्रकरण के ८७ सर्ग "स्मृति बीज विचार" वर्णन में योग मार्ग और ज्ञान मार्ग का सार बताया है। इस संसार का बड़ा बीज शरीर है। इस शरीर का बीज चित्त है। राजस, तामस, सात्विक वृत्ति इसकी शाखायें हैं, वही जन्म-मरण का और सुख-दुःख रूपी तत्वों का भण्डार है। ऐसा चित्त इस शरीर का कारण है। गन्धर्व नगर की तरह असत् रूप यह कुल जगत जाल चित्त के फुरने से भासता है जैसे मिट्टी में घट भाव होता है तैसे ही चित्त में जगत का सत्य भाव होता है। चित्त रूप अंकुर की वृत्ति रूपी २ शाखायें हैं, एक प्राणों का फुरना, दूसरा दृढ़ भावना। जब प्राण स्पन्द होता

है तो हृदय मात्र में जो १०१ नाड़ी हैं उनकी ओर संवेदन रूप चित्त उदय होता है और शुद्ध सात्विक चित्त उपजता है और इसमें जगत् भासता है। जब प्राण स्पन्द होता है तब चित्त सम्वित उछलती है। जैसे प्राण स्पन्द में सर्व गति सम्वित उपलब्ध रूप होती है और वहाँ प्रतिदिन रूप होकर सात्विक भाव में स्थित होती है और महासूक्ष्म से सूक्ष्म है जैसे वायु में गंध रहती है। वही सम्वत रूप को त्याग कर जब विमुख होकर दौड़ती है तब इसमें तरह २ के जगत् भासते हैं, और नाना प्रकार की वासना उठती हैं। इस सम्वत को सम्मुख रोकना ही कल्याण का मार्ग है। जब वृत्ति स्वरूप में स्थित होती है तब क्षोभ मिट जाता है। जब चित्त निवृत्त होता है, प्राण स्पन्द रोका जाय तब वासना मिट जायेगी। ध्यान और प्राणायाम से प्राणों को रोकते हैं तब चित्त स्थित हो जाता है। यह योग से अनुभव करता है। योगेश्वर का प्राण और चित्त स्पन्द से रहित होता है और ज्ञान से यह अनुभव होता है कि चित्त वासना से पैदा होता है और वासना विचार के न होने से फुरती है। जैसे एकाएक भावना की दृढ़ता से वासना फुर आती है। जिसमें पुरुष की बहुत भावना होती है वही रूप पुरुष का होता है, स्वरूप के प्रमाद से जो भाव होता है उसमें दृढ़ प्रतीति हो जाती है तब उसको भावना कहते हैं और जगत की वासना से मोह प्राप्त होता है और स्वतः सिद्ध जो अनुभव रूप आत्मा है उसको जान नहीं सकता। वासना के प्रबल होने से स्वरूप को त्याग देता है और भ्रम रूप जगत को सत्य देखता है और मन की चिन्ता से जलता है। इसमें असम्यक ज्ञान से अनात्म में आत्म भावना हो इसका नाम मन है। वह मन इस तरह से पैदा होता है कि पहिले चैतन्य सम्वत में पदार्थों की चिन्तना होती है, फिर तीव्र पदार्थों की दृढ़ भावना होती है तब वही चैतन्य सम्वत चित्त रूप हो जाती है। इस चित्त में फिर जन्म-मरण आदि विकार पैदा होते हैं और किसी का ग्रहण किसी का त्याग करता है या ग्रहण-त्याग का संकल्प हृदय से दूर हो तब चित्त भी मर जाय। जब वासना मिट जाती है तब मन अमर पद को प्राप्त होता है। यह परम उपशम का कारण है। जो कुछ जगत के पदार्थ हैं उनकी भावना करो और सब जगत को अवस्तु जानकर त्याग करो तब हृदय आकाश से चित्त शान्त हो जायेगा। जब पदार्थों से रस उठ जाता है तब चित्त फिर नहीं उपजता। तत्व ज्ञान बिना मन का नाश नहीं होता।

वासना और मन का आवरण एक साथ दूर होता है। ये परस्पर कारण रूप हैं। (१) पुरुष प्रयत्न करके मन के संकल्प-विकल्प दूर करे, (२) अभ्यास करके भोगों की वासना को दूर करो। इस उपाय से तत्व ज्ञान द्वारा मन और वासनाओं के नाश का बार २ अभ्यास करे इसी से शान्ति प्राप्त होगी। जीवन-मुक्त का चित्त अचित्त रूप हो जाता है और विदेह मुक्त का चित्त स्वरूप से नष्ट हो जाता है। सारांश यह है सब प्राचीन शास्त्रों का एक ही मत है। इसके परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता ही नहीं। केवल नवीन मत वालों की कोरी कल्पना ही है कि यह मार्ग नवीन प्रकट किया है पहले नहीं था।

४९—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि पक्की और सच्ची भावना से इन्सान जुआ, शराब व व्यभिचार आदि दुखदाई पदार्थों में भी सुख का ऐसा अनुभव करता है कि उनसे हटाये नहीं हटता। फिर अगर मनुष्य भगवान की भक्ति, पूजन, भजन आदि सुखदाई पदार्थों में सुख को अनुभव न करे तो उसकी कच्चाई साबित होती है। जब पक्की भावना होती है तब उसको भी ऐसा ही सुख प्रतीत होता है कि हटाये से भी नहीं हटता। अगर यह कहा जाय कि जुआ, शराब, व्यभिचार में धन का धूँआ उड़ जाता है तब पीछे से इन्सान टके-टके को मोहताज हो जाता है। भक्त भी अपने धन को ईश्वर भक्ति, साधू सेवा, मन्दिर, मस्जिद, गिरजा, धर्मशाला आदि परोपकार के कामों में लगा देते हैं और आप मधूकरी मांग कर खाते हैं और घर फूंक जंगल, गुफ़ा, झोंपड़ी और पेड़ तले गुज़ारा करते हैं। अन्तर सिर्फ़ इतना होता है कि बुरे कामों में सेहत ख़राब हो जाती है और मन पर उसका वैसा प्रभाव बाकी रह जाता है। यह क़ुदरती असूल की बात है कि जैसा कर्म होगा वैसा उसका फल मुक़र्रिर हो जाता है। वही फल मिलेगा अन्यथा नहीं हो सकता।

५०—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि एक राजा और उसका मंत्री शिकार खेलने गये। जङ्गल में किसी साधु को बैठे देखा। राजा आस्तिक था। उसको मामूली साधू समझ कर भी घोड़े से उतर कर प्रणाम किया। साधू ने आशीर्वाद दिया; मगर मंत्री के दिल में ऐसा भय पैदा हुआ कि यह साधु नहीं साक्षात् शिवजी हैं, इसलिये उसने बड़ी श्रद्धा से दण्डवत प्रणाम किया। साधू ने उसके सिर पर हाथ धर कर आशीर्वाद दिया। बस फिर क्या था मंत्री की

अन्तर दृष्टि खुल गई। एक समय मंत्री ज़रूरी काम से राजा से मिलने गया। उस वक्त राजा भजन में बैठे थे मगर ईश्वर के ध्यान के बजाय दिल में घोड़े ख़रीदने का ख्याल उठ रहा था। मंत्री ने सेवक से कहा कि राजा साहब से हमारे आने की सूचना कर दो। उसने अर्ज़ किया कि राजा ईश्वर के ध्यान में हैं। मंत्री बोला कि राजा तो घोड़े ख़रीद रहे हैं। यह बात राजा ने सुन ली और बाहर निकल आये और चकित होकर मंत्री से पूछा कि यह शक्ति तुमको किस यत्न से प्राप्त हुई। उसने उत्तर दिया कि महाराज मैंने तो कोई साधना नहीं की। उस दिन जङ्गल में आपने साधू को प्रणाम किया था, मैंने भी दण्डवत प्रणाम किया, उन्होंने मेरे सिर पर हाथ धरा था, तब से ही यह बात पैदा हो गई है। दोनों मिलकर फिर उस साधू के पास गये। राजा ने कहा कि महाराज जो कुछ आपने मन्त्री को दिया है, वह मुझको भी मिलना चाहिये। मैंने भी आपको प्रणाम किया था। सब हाल पूछ कर साधू बोला राजन! जो चीज़ किसी के पास होती है वही सब या उसमें से कुछ भाग दूसरों को दे सकता है। जो उसके पास न हो तो वह किसी को कहाँ से दे। यह शक्ति तो मुझमें भी नहीं है। मैं भला मन्त्री को कैसे दे सकता था और आप को कैसे दूँ। मन्त्री से पूछिये कि उसने किस भाव से प्रणाम किया था। मन्त्री बोला कि आप मुझको मामूली साधू नहीं, बल्कि साक्षात् शिवजी नज़र आये। मैंने आपको शिवजी समझ कर बड़ी श्रद्धा से प्रणाम किया था। साधू बोला कि बस शिवजी ने ही यह शक्ति तुमको दी है। इसी तरह से स्वामी रामानन्द जी में जो शक्ति प्रकट नहीं हुई थी वह कबीर साहब को उन्हीं के द्वारा प्राप्त हो गई। ऐसे वृत्तान्तों से प्रकट होता है कि जिसका जैसा भाव और श्रद्धा होगी वैसा ही फल उसको प्राप्त होगा। इसलिए किसी साधु-मुनि आदि की निन्दा नहीं करनी चाहिये। निन्दा से दूसरे का दिल दुखा कर मख़लूक़ात की तौहीन करके पाप नहीं कमाना चाहिये। जैसा जिसका निश्चय जिस चीज़ में होगा उसको वह पदार्थ वैसा ही फल देगा। देखो कटोरा भरा ज़हर मीराबाई के लिए अमृत रूप हो गया। गीता में भी श्रीकृष्ण भगवान ने कहा है कि जिस रूप, भाव और श्रद्धा से कोई मुझको पूजता है मैं उस ही रूप से उसको उसकी भावना और श्रद्धा के अनुसार फल देता हूँ। प्रह्लाद को लोहे के गर्म खम्भे में

भगवान के होने का निश्चय था और जो कुछ फल मिला वह संसार भर को विदित है। मूर्त्ति में ईश्वर भाव के फल के इतिहास ग्रन्थों में बहुत से लिखे हैं। सनातन धर्म के पुराणों में ही नहीं बल्कि अन्य मज़हब के ग्रन्थों में भी ऐसे बहुत से इतिहास हैं। हज़रत मूसा की लकड़ी से समुद्र में रास्ता बन जाना, हज़रत इब्राहीम के सामने बेटे की जगह बकरे का आ जाना। हज़रत ईसा का मुर्दे ज़िन्दा कर देना। थोड़ी रोटियों से बहुत से आदमी पेट भर कर खिला देना। उनका नाम चाहे करामात रख लो या जो भी जी में आवे कह लो मगर यह श्रद्धा-भावना के फल हैं।

५१—एक रोज़ एक व्यक्ति ने विनय की कि ब्रह्मा जी की इतनी बड़ी उम्र है न मालूम कैसे कटती होगी। मनुष्य की आयु तो १२० साल की लिखी है। श्रीमहाराजने फरमाया कि ब्रह्मलोक का एक मिनिट भूलोक के कितने ही युगों के बराबर होता है। लेकिन जिस तरह से मनुष्य अपनी पूरी आयु में जीवन का अनुभव करता है, इसी तरह ब्रह्मा जी अपनी इतनी लम्बी आयु में जीवन का अनुभव करते हैं। हमारे एक मिनिट में बहुत से कीड़े मकोड़े पैदा होते हैं और जीवन पूरा करके मर भी जाते हैं लेकिन उस एक मिनिट में ही वे अपने पूरे जीवन का अनुभव करते हैं। एक इतिहास है कि सतयुग में एक राजा थे। उनकी लड़की का नाम रेवती था। वह बड़ी रूपवती और गुणवान थी। उस युग में मनुष्यों के कद बड़े लम्बे होते थे। रेवती का कद २१ हाथ का था। राजा ने बहुत तलाश की परन्तु उसके वास्ते कोई योग्य वर न मिल सका तो वह रेवती को लेकर ब्रह्मलोक गया। उस वक्त भूलोक और ब्रह्मलोक में आने जाने का सिलसिला जारी था। जब वह ब्रह्मपुरी में पहुँचा तो उस समय गन्धर्व गा रहा था। राजा ढोक देकर बैठ गया। जब गाना समाप्त हुआ तो ब्रह्मा जी ने राजा से आगमन का कारण पूछा। उसने रेवती को सामने करके प्रार्थना की कि इसके लिये कोई योग्य वर बताइये क्योंकि आपको सब सृष्टि का हाल मालूम है। ब्रह्मा जी यह बात सुनकर मुस्कुराये और बोले कि जितनी देर गन्धर्व ने गाना गाया है उतनी देर में भूलोक में २७ युग बीत गये यानी युगों को छः चौकड़ियाँ बीत कर सातवीं चौकड़ी के द्वापर का अन्त है और श्रीकृष्ण अवतार हुआ है। मानव के कद भी बहुत छोटे हो गये हैं।

तुम्हारे राजपाट का भी कोई निशान नहीं रहा। यह सुनकर राजा ने पूछा कि क्या मेरी लड़की क्वारी ही रह जायगी। यह तो मुझको बड़ा पाप लगेगा। कोई वर तो आप ज़रूर बताइये जिसके साथ इसका विवाह हो। वह वर किसी न किसी रूप में तो इस सृष्टि में होगा ही। तब ब्रह्मा जी ने कहा कि श्रीकृष्ण जी के बड़े भाई बलराम जी के साथ इसका विवाह लिखा है। राजा भूलोक में आये और बलराम जी से विवाह करने की प्रार्थना की। वह राजा को देख कर बोले कि आप सतयुग के मनुष्य हो। आपका कद इतना लम्बा है, आपकी लड़की भी बड़ी लम्बी होगी। हम द्वापर के जीव हैं हमारा कद आपके कद से बहुत छोटा है। यह विवाह का सम्बन्ध कैसे होगा। जब राजा ने बताया कि ब्रह्मा जी की ऐसी ही आज्ञा है तो बलराम जी ने जवाब दिया कि लड़की को ले आओ। जब रेवती जी उनके पास लाई गईं तो बलराम जी ने उनके सिर और पैर को हल और मूसल से दबाकर उनका कद अपने कद के बराबर कर लिया और उनसे शादी कर ली।

५२—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि आजकल बहुत से आचार्यों ने दो मत ठहरा दिये हैं। एक सनातन धर्म, दूसरा भागवत धर्म। उनका कथन है कि सनातन धर्म में तो वैदिक कर्म, देव पूजा और योग आदि का ज़िक्र है। इसमें वर्णाश्रम शरीर की व्यवस्था ब्रह्मचर्य आदि के विचार से किसी को अधिकार है, किसी को अधिकार नहीं है। जैसे व्यभिचारी और वीर्यहीन पुरुष योग नहीं कर सकता। शूद्र को वेद पढ़ने और देव पूजा और जनेऊ धारण करने का अधिकार नहीं। स्त्रियों को भी कुछ वैदिक कर्म का अधिकार नहीं दिया है मगर भागवत धर्म में सब का अधिकार है। "जात पांत पूछे न कोई, हरि को भजै सौ हरि का होई।" हमारे खयाल में भागवत् धर्म को दूसरा धर्म कहना खाने कमाने का धन्धा है। सनातन धर्म के अन्तर्गत भक्ति, कर्म, उपासना व ज्ञान मौज़ूद हैं। सनातन धर्म ऐसा है जो इस सृष्टि के आदि से है और हमेशा सत्य है और सत्य रहेगा। यह समुद्र की तरह से है कि सूर्य चाहे जितना तपे और जल सेवन करे, तब भी घटता नहीं और चाहे जितने नदी नाले आकर मिल जायें चाहे जितनी वर्षा हो जाय, समुद्र बढ़ता भी नहीं। सनातन धर्म को सिर्फ़ हिन्दुओं का धर्म कहना भी ग़लत है। यह कहना दुरुस्त होगा कि दुनियाँ भर के सब

मज़हब सनातन धर्म के ऐसे भाग हैं जैसे समुद्र के मुकाबले में नदी नाले। सबका सोता समुद्र ही है चाहे वर्षा के सहारे हो चाहे पहाड़ों से फूट कर निकले हों। इन नदी, नालों की ऐसी गति है कि कोई चन्द दिन चलता है, कोई चंद मास बहते हैं। कोई उमड़ते हैं, कोई घटते हैं, कोई जल्दी सूख जाते हैं, कोई गर्मी में सूख जाते हैं फिर वर्षा में भर जाते हैं। मगर समुद्र न सूखता है न उमड़ता है। इसी तरह से सनातन धर्म सदा सम अवस्था में रहता है। अन्य सभी मज़हब कभी जारी हो जाते हैं कभी बंद हो जाते हैं। मगर आजकल वही मत नया और सबसे अच्छा समझा जाता है जिसमें सनातन धर्म के असूलों और वेद-शास्त्र की बातों की निन्दा की जाती है, जैसे राजा की कोई ज़रूरत नहीं है, धर्म ख़ास बात नहीं है आदि। समय, देश और इन्सान की ज़रूरत के मुताबिक जैसा ज़रूरी हुआ तबदीली कर ली। इसको धार्मिक शोधन और सुधार कहते हैं। ऐसे लोग चाहे राजनीतिक सुधार हों, चाहे धार्मिक हों, यह नहीं समझते कि स्मृति के मुख्य सिद्धान्तों में देश, काल व पात्र के लिहाज़ से तबदीली नामुमकिन है। तबदीली की न तो ज़रूरत है और न हो सकती है।

५३—एक रोज़ एक व्यक्ति ने पूछा कि रोग कितनी तरह के होते हैं।

श्रीमहाराज ने फ़रमाया कि आधि और व्याधि दो तरह के रोग होते हैं। जब संकल्प होता है कि यह वस्तु मुझे मिले और वह नहीं मिलती तब सोच कर दुख होता है। अर्थात् मन से उपजने वाले रोग को आधि कहते हैं। जब वात, पित्त और कफ़ का विकार शरीर में होता है और उससे दुख होता है तो उसे व्याधि कहते हैं। जब मन और शरीर के रोग इकट्ठे होते हैं तो उनको आधि-व्याधि कहते हैं। मन के चलायमान और दुखी होने से धीरे-धीरे वात, पित्त और कफ़ बिगड़ जाते हैं और आधि से व्याधि पैदा कर देते हैं। आधि दो प्रकार की हैं। एक तो वे जिनमें सिर्फ़ शरीर को कष्ट पहुँचे। यह छोटी व्यधि हैं, और जिससे शरीरान्त हो जाये वह बड़ी व्याधि है। चूँकि आधि-व्याधि मन से होती हैं इसलिये मन शान्त हो जाने से रोग भी शान्त हो जाते हैं। जो कुछ भी खाना खाया जाता है वह पेट में जाकर जठराग्नि से पचता है। भीतर जो कुण्डलिनी अष्ठिका से मिली हुई है वह उदान

वायु को ऊपर मुख होकर फुराती है और अपान वायु उसे नीचे को फुराती है। उदान और अपान का आपस में विरोध है। इनके क्षोभ से अग्नि उठती है और हृदय-कमल में स्थित होती है। तब भोजन हृदय की अग्नि से पचता है और सब नाड़ियाँ अपने-अपने भाग को समान वायु द्वारा पाती हैं, वीर्य वाली वीर्य को, लहू वाली लहू को।

जब राग-द्वेष से चित्त कुण्डलिनी शक्ति में क्षोभित होता है तब नाड़ी अपने-अपने स्थान को छोड़ देती हैं और भोजन ठीक तरह से नहीं पचता है और इससे रोग उत्पन्न होता है। मन शरीर का राजा है; इन्द्रियाँ इस राज्य की सीमा हैं। राजा को क्षोभ होने से सेना क्षोभित होती है और राजा के शान्त होने से सेना भी शान्त रहती है। मन्दाग्नि के रोगी को साधारण रीति से नाभि के पास गड़गड़ाहट या हृदय में कौड़ी के पास दर्द या गले में जलन होती है। ये तीनों स्थान वायु के हैं। नाभि के पास कुण्डलिनी और समान वायु है। हृदय में प्राण वायु है। गले में उदान वायु है और उदर में अपान वायु है।

५४—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि सूम के धन से धर्म नहीं हो सकता, इसलिए इस धन से बचना चाहिए।

एक लकड़हारा लकड़ी बेचकर लौट रहा था। घर के रास्ते में एक बड़ी नदी थी जो बरसात की वज़ह से बहुत चढ़ी हुई थी। वह नदी के चढ़ाव को देख रहा था कि किनारे से आवाज़ सुनाई दी कि "अरे लकड़हारे मैं माया हूँ, इस टीले में दफ़न थी जो अब नदी के बहाव से बही जाती हूँ। तू राजा के पास जाकर कह कि मुझको निकाल ले। वह मुझे किसी न किसी धर्म के काम में लगा सकता है। लकड़हारे ने राजा के पास जाकर सब हाल कहा। राजा ने जवाब दिया कि तू उस माया से पूछ आ कि वह सूम की है या दाता की। लकड़हारा लौट कर आया और माया से पूछा तो उसने जवाब दिया कि "मैं हूँ तो सूम की" मगर राजा मुझे किसी धर्म के काम में लगा सकता है। लकड़-हारे ने यह बात वापिस आकर राजा को सुना दी। राजा ने जवाब दिया कि माया से कह दो कि "हम सूम के धन को धर्म में लगाकर किसी के धर्म को भ्रष्ट करना नहीं चाहते। हम उसको नहीं लेंगे। लकड़हारे ने वापिस आकर

माया से सब हाल कह दिया तो वह फिर बोली कि ऐ : लकड़हारे ! राजा नहीं लेता है तो तू ही ले ले। सब नहीं लेता है तो थोड़ी ही ले ले। तेरे काम आयेगी, इस टके २ की मज़दूरी और लकड़ी काटने और बेचने के दुःख से छूट जायेगा। लकड़हारे को लोभ आगया और पानी में उतर गया। माया के कलशे को पकड़ा ही था कि कलशा और लकड़हारा दोनों बहने लगे। उसने हर प्रकार से कोशिश की मगर पैर उखड़ गये। कलशे को छोड़ना चाहा तो कलशा छूटता नहीं था। तब वह दुःखी होकर चिल्लाया कि मैं बहा जाता हूँ माया, मुझको छोड़। माया बोली अब तू छूट नहीं सकता मुझसे हाथ लगा-कर अब कहाँ जा सकता है। जब बहुत चीख-चिल्लाहट करी तो माया बोली जो कुछ तेरे पास है सब नदी में डाल दे तो शायद तेरा छुटकारा हो सके। लकड़हारा बोला कि पगड़ी में पैसे हैं, मेरा हाथ छोड़ दे तो पैसे खोल कर डाल दूँ। फिर आवाज़ आई कि जब तक सब कुछ नहीं डाल दोगे तब तक हाथ नहीं छूट सकता। बिचारे ने कोहनी के सहारे से पगड़ी सर से उतारकर दरिया में फेंक दी, तब कलशा हाथ से छूटा और जान बची।

अच्छे काम में भी सूम का धन लग जाये तो वह काम भी बिगड़ जायेगा। सूम के धन से बचना चाहिए और धर्म की थोड़ी सी कमाई भी मिल सके और उससे एक मधूकरी भी मिल जाय तो उचित है। सूम का धन भ्रष्ट हो जाता है इसके उदाहरण संसार में बहुत मिलते हैं।

५५—एक रोज़ सत्सङ्ग में एक व्यक्ति ने यह प्रश्न उठाया कि ज्ञानी और अज्ञानी के कर्म करने में ज़ाहिरा क्या अन्तर है ?

श्रीमहाराज ने फ़रमाया कि ज़ाहिरा तो कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता। शरीर का व्यवहार तो दोनों के साथ होता है। उसमें कोई अन्तर नहीं होता। ज़ाहिरा इन्द्रियों को रोकना और मन से विषयों का चिन्तन करना मूर्खता है। जितना संसार है सब जीवन में बाधा है। जीवन अनात्म देह आदिक में मिथ्या अभिमान करने को कहते हैं। मैंने यह काम किया है, मैं यह कर्म करूँगा—यह अहंकार है। इसमें शब्दों का भेद ज़्यादा तो नहीं मगर विचार करने से इनका फ़र्क़ और बारीकी समझ में आ सकती है। वह भेद अहंकार का है। चेतन रूपी खेत अजल और निर्मल है। इसमें अहंभाव बीज

है और चित्त का बीज अहंकार है। इसी से चित्त और मन उपजे हैं। चित्त के त्यागने से इसके बीज अहंकार का त्याग उत्तम है। बल्कि यह फ़ुरना भी न फ़ुरे कि मैंने त्याग किया है, बिलकुल शून्य हो बैठे। उस वक्त चेतन आकाश होगा। संसार का बीज चित्त है। संसार का प्रध्वंश भाव भी नहीं कि पहले हो और पीछे नाश हो जाय और विनाश परिणाम भी नहीं कि दूध से दही होता है और दही से दूध नहीं हो सकता। सरूप परिणाम भी नहीं जैसे मिट्टी के ढेले से घड़ा और सोने के ढेले से भूषण, बल्कि यह जगत आत्मा का चमत्कार है। एक क्षण भर आत्मा का साक्षात्कार होने से सृष्टि का निशान भी बाक़ी नहीं रहता। जहाँ देखिये चेतन ही चेतन भासता है; वह स्पन्द और अस्पन्द में एक समान भासता है। ऐश्वर्य त्यागने और भीख मांगने से चित्त वस में नहीं आता। निर्वासनिक होने से चित्त वश में आता है। अहं-भाव मिटने से वासना का नाश होता है। अज्ञानी इन्द्रियों और देह की चेष्टाओं में बंध जाता है। अहङ्कार सहित कर्म करता है और ज्ञानी निरहंकार होकर कर्म करता है।

कर्म भोग भोग करें, ज्ञानी मूरख दोय।

ज्ञानी काटे ज्ञान से, मूरख काटे रोय॥

५६—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि आजकल के साधुओं को तीन दर्जों में बांटा जा सकता है। उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ या सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी। तमोगुणी का काम यह होता है कि भीख मांगने से जो मिल जाय उसमें से ख़ूब पेट भर कर खा लेना और जो वस्तु या नक़द बचे उससे नशे पत्ते का सामान खरीद लेना। आजकल सुलफ़े का ख़ूब रिवाज़ है। जब नशे में धुत्त हो गये तो पैर फैला कर दस, बारह या पन्द्रह घंटे जब तक नशा न उतरे पड़े रहते हैं फिर इन्हें दीन-दुनियाँ की ख़बर नहीं। यही समाधि इनकी हो गई। जब किसी पर्व का हाल इन्हें मालूम हो गया या कोई साथी मिल गया तो तीर्थ को चल दिये। सरकार की आज्ञा बग़ैर रेल में बिना टिकट बैठने को तो ये अपना हक़ समझ बैठे हैं। कोई रहमदिल बाबू हुआ तो चुप हो गया, कोई कड़े दम कानून का पाबन्द हुआ तो रेल से बाहर निकाल दिया। मगर इसमें वे अपनी मानहानि नहीं समझते। एक गाड़ी से उतारे गये तो दूसरी से बैठ गये। उस

स्टेशन पर दाल न गली तो अगले स्टेशन पर जाकर रेल में घुस गये। दो चार भली बुरी बात को भी कहते जाते हैं और अकड़ कर यह कहते हैं कि भला साधू को भी कोई रोक सकता है। जब तीर्थों का ज़िक्र आता है तो डींग मारते हैं कि हम चार दफ़ा सेतुबन्धरामेश्वर, दो दफ़ा द्वारका जी गये, इतनी दफ़ा जगन्नाथ जी हो आये हैं। असलीयत में बिना टिकट सवारी के जो पाप होता है वह पाप उल्टा सिर पर चढ़ा लेते हैं। साधु को चाहिये कि चार छः मील जितना आसानी से चल सके गाँव, जंगल, पहाड़ देखता हुआ तीर्थ करे।

पग पवित्र, तीर्थ यात्रा का फल तो भी प्राप्त हो। अगर उनसे कोई भी कड़ी बात कह दे तो चिमटा और कुल्हाड़ी उठा कर सर फोड़ने को तैयार और मरने मारने को आमादा रहते हैं। जहाँ पड़ाव होता है, वहाँ धूनी तापने के बहाने से जैसे हाथ लगे लकड़ी लेकर रात दिन फूँकते हैं। जिस वक्त से तीर्थ यात्रा के इरादे से मनुष्य घर से निकलता है उस वक्त से तीर्थ पहुँचने तक और वहाँ पहुँच कर जो पुण्य कर्म करता है वह अटल हो जाता है और इसके फल से पिछले पाप नष्ट हो जाते हैं। इसी तरह से तमाम रास्ते पर और तीर्थ पहुँचने पर जो कुछ पाप कर्म किया जाता है वह भी अटल हो जाता है और उसके पाप से पिछले पुण्य नष्ट हो जाते हैं। रजोगुणी दिखावटी परोपकार की धुन में मस्त, स्थान बनाने, सदाव्रत जारी करने और भण्डारों के करने में लीन रहते हैं। इसमें उनकी मान बढ़ाई होती है, नाम मशहूर होता है कि फलां महन्त जी के यहाँ रसोई पानी और ठहरने का बड़ा अच्छा प्रबन्ध है। इसके लिये धन की ज़रूरत होती है। उसके वास्ते सेठ साहूकार और अमीरों की चापलूसी में लगे रहते हैं और उनका हाथ मुँह ताकते रहते हैं। लेकिन उसी वक्त तक जब तक थोड़ा धन होता है। जब काफ़ी धन हो जाता है तब उनसे भी सीधे मुँह बात नहीं करते। इनके दिल में हमेशा यह दगदगा लगा रहता है कि कहीं धन कम न हो जाय और हमारे सदाव्रत आदि में बाधा न पड़ जाय। इसलिये चींटी की तरह भाग दौड़ और मकड़ी की तरह जाल पिरोने में लगे रहते हैं। भजन के वास्ते या काम के लिये अवकाश मिले तो कैसे मिले। एक उनका वचन होता है कि परोपकार से बढ़ कर कोई भजन नहीं; भगवान् इसी से खुश होते हैं। ऐसे साधुओं से कोई सत्संग की नीयत से मिलने

जाय तो मिलना कठिन होता है। जब जाओ तो दरबान से सुनने को मिलता है कि फलां वकील से बात कर रहे हैं, फलां सेठजी आये हुए हैं।

सात्विकी साधु ऐसे धन्धों को बवालेजान समझते हैं। रूखा सूखा जो मिल गया सो खा लिया और किसी कोने में बैठ कर भगवान का भजन ध्यान करते रहते हैं। न अमीरों से रग़बत क्योंकि उनसे कुछ माँगना नहीं है, न ग़रीबों से नफ़रत कि उनको कुछ देना नहीं है। किसी सोसाइटी या समाज के फेर में भी ये नहीं पड़ते। न किसी की बुराई न किसी की तारीफ़।

साधू बैठा राह पर, मांगे सबकी ख़ैर।
न काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर ॥

५७—एक सत्संगी ने प्रश्न किया कि भक्त के बाहरी लक्षण क्या हैं ? श्री महाराज ने फ़रमाया कि ध्यान में जब स्वरूप का दर्शन होता है या मन की कथा या स्वरूप का वर्णन होता है तो भक्त गद्‌गद्‌वाणी हो जाता है; उसका शरीर रोमांचित हो जाता है, प्रेम के आँसू बहने लगते हैं, द्रवीभूत हो जाता है; मस्त होकर गाने या नाचने लगता है। विरह दशा के कारण आँखों में आँसू भरे रहते हैं, ठन्डी स्वासें बार-बार लेता है, खाने पीने की सुधि भी नहीं रहती। नींद कम आती है, शरीर पीला हो जाता है।

५८—एक रोज़ प्रश्न उठा कि चेतन आत्मा निर्विकारी है। हवा से सूखती नहीं, हथियार से कटती नहीं, आग से जलती नहीं फिर यह दुख सुख किसको और क्यों होता है।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि आत्मा सर्वव्यापी है। यह आकाश में व्यापक है; यदि आकाश में तलवार चलाओ, क्या आत्मा मरता है या उसे चोट लगती है ? और यदि पत्थर या और किसी जड़ पदार्थ पर तलवार मारो तो क्या उसको चोट लगती है ? इससे साफ पता लगता है कि दुख सुख न चेतन आत्मा को होता है न जड़ देह को। कुछ मिट्टी के बर्तनों में पानी भरो तो सूर्य का प्रतिबिम्ब जल में पड़ेगा, अगर जल न हो या सूर्य न हो तो प्रतिबिम्ब नहीं पड़ेगा। बर्तन के हिलाने से वह प्रतिबिम्ब भी हिलता है। जो कुछ हलचल होती है वह जल या प्रतिबिम्ब में होती है। सूर्य में कुछ नहीं होती और बर्तन पर भी हिलने जुलने का कोई असर नहीं होता। इसी तरह से शरीर

रूपी घट में अन्तःकरण रूप जल भरा है, चैतन्य आत्मा के प्रकाश से जो उसका भास अन्तःकरण में दीख पड़ता है उसी को जीव चिदाभासी कहते हैं। वही दुख सुख प्रतीत करता है। अगर नीला कपड़ा सूर्य के सामने रखो तो वह जलेगा नहीं लेकिन सूर्य के सामने आतिशी शीशा रख दो और उसके नीचे नीला कपड़ा रख दो तो कपड़े में आग लग जायेगी। इस जगह सूर्य अकर्ता है, आतिशी शीशे में जो सूर्य का भास पड़ता है उसी से कपड़े में अग्नि लगती है। इसी अन्तःकरण के मैल को दूर करने के लिये कर्म उपासना किये जाते हैं अन्यथा चैतन्य आत्मा तो सदा निर्विकारी है। सबसे पहली सीढ़ी यह है कि जिस कर्म के करने से जीव को दुख प्रतीत हो उसको आयन्दा के लिये त्याग दे और जिस कर्म के करने से जीव को सुख प्रतीत हो उसको ग्रहण करे। अगर प्रारब्ध कर्म के वेग से या कुसंग से वृत्ति खोटे कर्म में लगती है तो शास्त्रों का सहारा लेना चाहिये। शास्त्र और गुरु जिस-जिस काम की आज्ञा दें उनको ग्रहण करे। जिनको वर्जे उनको त्याग दे। ऐसी क्रिया से अन्तःकरण धीरे-धीरे शुद्ध होकर आगे का रास्ता खुल जायेगा। जो पुरुष शास्त्र की विधि को त्याग कर अपनी इच्छा से वर्तता है उसको न कोई सिद्धि, न परमगति, न सुख प्राप्त होता है। यह गीता के अध्याय १६ श्लोक २३, २४ में कहा गया है।

५६—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि जैसे चितेरा बर्तन पर नक्काशी खोदता है तो उसकी गहराई बर्तन और पत्थर के हिसाब से रखी जाती है। कभी-कभी गहरी चोट लग जाने से नक्काशी बहुत गहरी हो गयी तो उसको सबके बराबर लाने के लिये कुछ चीज़ मसलन लाख या कोई और मसाला भर देते हैं कि कहीं आर पार छेद हो जाने से बर्तन ख़राब न हो जाय या पत्थर टूट न जाय। इसी तरह से पारखी गुरु शिष्य का हौसला देख कर निगाह डालते हैं लेकिन कभी-कभी प्रेम और जोश की हालत में ऐसी गहरी निगाह पड़ जाती है कि शिष्य विह्वल हो जाता है। जब उसको पता चलता है तो उस दृष्टि के ज़ोर को कम करने के लिये कुछ यत्न करना पड़ता है कि कहीं ऐसा न हो कि शिष्य अपने होश हवाश खो बैठे और मजज़ूब-न हो जाय। यह यत्न कई तरह का हो सकता है। कभी तो उस आनन्द से हटाने के लिये चेले को अपने पास से दूर कर देते हैं ताकि विरह से उसके आनन्द की शान्ति हो जाय। अगर

मानस मिलनी है तो अपने स्वरूप को ध्यान से अलग कर देते हैं ताकि चेले को स्वरूप का दर्शन न हो सकने से वह दर्शन के आनन्द का अनुभव न कर सके और भी जिस तरह से मुनासिब समझते हैं वैसी ही कार्यवाही करते हैं। बृजबालायें जब श्रीकृष्ण भगवान के प्रेम में मस्त और मतवाली हो गईं और ऐसा मालूम हुआ कि कहीं आपे से बाहर न हो जायें तो कभी-कभी वे उनसे बेरुखी करके और कभी २ अन्तर्ध्यान होकर गोपियों को हद के अन्दर ले आते थे। जब उपदेश की सीमा हो गई और करनी का दर्जा आ गया तो वृन्दावन छोड़ कर मथुरा पधार गये ताकि गोपियाँ उस प्रेम को पकाती रहें और तद्रूपता के पद को पहुँच जायें। सब चरित्र करने के बाद जब भगवान कृष्ण ग्रहण पर्व पर कुरुक्षेत्र गये थे तो गोपियाँ भी वहाँ गई थीं। उस वक्त अपनी तमाम पटरानियों को यह दिखा दिया कि जो प्रेम का उपदेश हमने गोपियों को बृज में दिया था वह अपनी सीमा को पहुँच गया और हमारे रूप में तदरूप हुई। पटरानियों ने जो गरम दूध श्री राधिका जी को पिलाया उससे श्रीकृष्ण भगवान् के हृदय में छाले पड़ गये। यह तद्रूपता की सबसे आला मिसाल है। इसी तरह से बहुत से महात्मा भी अपने शिष्य की सार सम्हाल में तरह-तरह की कार्यवाही करते हैं। प्रेम को सीमा में रखने के लिये कभी-कभी डाट फटकार, कभी अपने पास से अलहदगी, कभी ध्यान में स्वरूप के दर्शन न होना, और भी कई तरह की कार्यवाही अमल में लाते हैं जिनसे शिष्य की अवस्था समानभाव से चलती रहे।

६०—एक रोज़ यह ज़िक्र छिड़ गया कि वेदान्त मत शङ्कराचार्य ने चलाया है। कर्मकाण्ड का उन्होंने खण्डन किया है।

श्रीमहाराजने फरमाया कि ऐसा नहीं है। शङ्कर दिग्विजय में लिखा है कि शङ्कराचार्य की गुरु परम्परा नारायण भगवान से आरम्भ होती है। तो फिर नारायण भगवान से ही अद्वैत मत समझना चाहिये। बल्कि शङ्कराचार्य ने तो जगत के काल्पनिक रूप को प्रमाणित करने के लिये माया के सिद्धान्त को स्वीकार किया है। बहुत से विद्वान मायावाद को बौद्ध दर्शन का संस्करण मानते हैं, बल्कि इस मायावाद के कारण शङ्कराचार्य को प्रच्छन्न बौद्ध और मायावाद को बौद्ध दर्शन के सिद्धान्तों का ही एक नया रूप मानते हैं, परन्तु यह ठीक नहीं विज्ञानवादी बौद्ध विज्ञान को नाना प्रकार का और भिन्न-भिन्न मानते हैं। उनका अल्प विज्ञान क्षणिक है उसको वासनाओं का अधिकरण भी नहीं मान

सकते। उनका मत है कि विज्ञान या बौद्ध के अतिरिक्त इस जगत में कोई पदार्थ ही नहीं। जगत के समस्त पदार्थ स्वप्नवत् मिथ्या हैं। जैसे स्वप्न का ज्ञान बाह्य पदार्थ की सत्ता के बिना ही ग्राहक आकार वाले होते हैं इसी तरह जाग्रत अवस्था के पदार्थ भी बाह्य अर्थ सत्ता शून्य बौद्ध मत में अनिर्वचनीय है। बौद्ध तीन प्रकार के हैं—बाह्य अर्थवादी, विज्ञानवादी, शून्यवादी। वैभाषिक की सम्मति में सब पदार्थ प्रत्यक्ष-गम्य हैं। सौत्रान्तिक के मत से षट् पदार्थ की सत्ता अवश्य है किन्तु वह प्रत्यक्ष के द्वारा सिद्ध न होकर अनुमान से होते हैं। ये दोनों सब पदार्थों की सत्ता मानते हैं इसलिये सर्वास्तिवादी कहलाते हैं। क्षणिकवाद दोनों मानते हैं केवल बाह्य अर्थ की सत्ता किस प्रकार से जानी जाती है इसी विषय में भेद है। विज्ञानवादी के मतानुसार बाह्य पदार्थ की सत्ता नहीं है केवल विज्ञान ही एक सत्य-पदार्थ है। वे विज्ञान को भी अनेक और क्षणिक मानते हैं। शून्यवादी माध्यमिकों के मत में विज्ञान का भी अभाव रहता है। केवल शून्य ही एक मात्र तत्व है। ये शून्य को सत्, असत्, सद्-असत् और सदसदानुभवरूप इन चार कोटियों से अलग मानते हैं। यह शून्य ज्ञान रूप भी नहीं है, पारमार्थिक भी नहीं है, परन्तु अद्वैत मत में ब्रह्म सत् स्वरूप और ज्ञान स्वरूप है, पारमार्थिक है। विज्ञान के अतिरिक्त यह विश्व सद् असद् दोनों से अनिर्वचनीय है। ब्रह्म और जीव अभिन्न हैं। माया ही इन दोनों में भेद पैदा करती है।

शङ्कराचार्य जी विज्ञानरूप ब्रह्म को सजातीय विजातीय, और स्वागत भेद से रहित एक मानते हैं। उनका वेदान्त विवर्तवाद है। उनका कहना है कि स्वप्न में देखे हुए पदार्थ जागने पर लुप्त हो जाते हैं, परन्तु जाग्रत के पदार्थ किसी अवस्था में बाधित नहीं होते वे सदा एक रूप और एक स्वभाव से विद्यमान रहते हैं। स्वप्नज्ञान स्मृतिमात्र है; जाग्रत-ज्ञान साक्षात् अनुभवरूप है।

शङ्कराचार्य जी योगाभ्यास आदि को मानते थे। उन्होंने बद्री-नारायण में पातञ्जलि दर्शन में निष्ठा रखने वाले पण्डितों को अपना शारीरिक भाष्य पढ़ाया। कोई भी महापुरुष वेद, उपनिषद, षट्शास्त्र, पुराण, भागवत आदि महाशास्त्रों में कहे हुए मत का कभी खण्डन नहीं करेगा, शङ्कराचार्य ने कर्म का भी निषेध नहीं किया है बल्कि कर्म की प्रतिष्ठा की है। वे निर्गुण और सगुण दोनों रूप के पक्के और सच्चे पुजारी थे। शङ्कर-दिग्विजय में वैष्णव

और शैवों का भ्रम दूर करने के लिये हरि-शंकर की स्तुति में ग्यारह ऐसे श्लोक हैं ऐसे जिनके दो अर्थ हैं। उनमें से एक-एक श्लोक से विष्णु भगवान के बारह अवतार, मच्छ से लेकर कलकी तककी स्तुति है और इन्हीं श्लोकों के अर्थ में शिवजी की स्तुति होती है। उन्होंने अम्बिका देवीकी स्तुति दिग्विजयके लिये की। बाहरी और मानसिक पूजा का विधान बताया उसमें षट् चक्रों का भी ज़िक्र है। शिव, देवी और विष्णु भगवान के जितने मन्दिर और मठ उन्होंने स्थापित किये उतने तो किसी भी आचार्य ने नहीं किये हैं। चारों धाम पर चार मठ उन्हीं के स्थापित किये हुए हैं। बद्रीनाथ की मूर्त्ति उन्होंने ही निकाली है। उन्होंने तुलसीकृत रामायण के इस वचन को सच्चा सिद्ध कर दिया है कि सच्चाभक्त वही है जो विष्णु और शिव दोनों को एक रूप करके माने। श्रीकृष्ण की महिमा में बहुत से श्लोक बनाये हैं। आम आदमियों को मालूम न हो इस वजह से प्रकट रूप में वर्णन नहीं किया वरना वे तो तान्त्रिक भी थे। जब काश्मीर में शारदादेवी के मन्दिर में दक्षिण दरवाज़े से उन्होंने प्रवेश करके सर्वज्ञ पीठ पर अधिरोहण करना चाहा तो आकाशवाणी हुई कि आपकी सर्वज्ञता तो प्रमाणित हो चुकी है परन्तु सर्वज्ञता के अतिरिक्त शुद्धता की बड़ी आवश्यकता है। तुमने स्त्री का उपभोग करके, सन्यासी होते हुए भी, कामकला के रहस्य में निपुणता प्राप्त करली है। क्या सन्यास पालन करने वाले जतीके लिये ऐसा आचरण ठीक है? उसके जवाब में श्री शङ्कराचार्य ने कहा कि जिस शरीर से मैं पीठ पर बैठना चाहता हूँ उस शरीर से मैंने जन्म से लेकर आज तक कोई पातक नहीं किया है। कामकला दूसरे शरीर से सीखी थी। देवीने इस बातको स्वीकार किया।

कर्म के बिना भक्ति और उपासना से कोई वेदान्त का अधिकारी नहीं बन सकता। स्वामी रामकृष्ण भी महामाया के उपासक थे।

श्रीशङ्कराचार्य ने मठाधीशों को ठीक काम करने के लिये नियम बना दिये हैं जो महाअनुशासन के नाम से प्रसिद्ध हैं। मठों के अधीश्वरों की देख-रेख उस देश के प्रौढ़ विद्वानों के ऊपर रख दी है। विद्वानों को बड़ा अधिकार है। यदि गद्दी पर बैठने वाला आचार्य उक्त सद्‌गुणों से हीन हो तो विद्वानों को अधिकार है कि उसे दण्ड दें और पदच्युत कर दें।

आजकल के पीरों और महन्तों को देखो कि जनता की दान और प्रबन्ध आदि के तौर पर दी हुई सम्पत्ति का अपने को मालिक समझते हैं

और निरंकुश होकर विचरते हैं, और मनमाने घृणित व्यवहार करते हैं। मन्दिर धर्मशाला और गङ्गा, यमुना के तट के घाटों तक को गिरवीं रखते हैं और बेच देते हैं। धर्मार्थ माल उनकी निजी जायदाद बन गई है। कहते हैं कि जैसे बापकी सम्पत्ति का बेटा मालिक होता है वैसे ही हमारे गुरु और दादागुरु की पैदा की हुई सम्पत्ति हमको विरासत में मिली है।

श्रीव्यास जी ने भी पुराण में लिखा है कि जब कलियुग में वेदों के अर्थ नाना भाँति से करेंगे तब श्रीशङ्कराचार्य प्रकट होंगे, श्रीबद्रीनाथ की मूर्त्ति देव नदी में से निकालेंगे। जैन तथा बौद्ध मत का खण्डन करेंगे। वेदों की यथार्थ व्याख्या करेंगे। इससे भी शंकर मत प्रमाण है।

६१—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि सब शास्त्रों का कथन है और महात्माओं का अनुभव है कि कल्पना से रहित शुद्धसम्मत जो चिन्मय आत्म सत्ता है वही तत्त्व है। जैसे चुम्बक की सत्ता से लोहा चेष्टा करता है परन्तु चुम्बक सदा अकर्ता है इसी प्रकार आत्मा की सत्ता से जगत् के देहादिक चेष्टा करते हैं और चेतन रहते हैं, परन्तु आत्मा सदा अकर्ता है। देखने में यह बात बिलकुल ठीक मालूम होती है कि लोहा चलता-फिरता घूमता नज़र आता है, चुम्बक स्थिर और शान्त रूप दिखाई पड़ता है, लेकिन ग़ौर करने से पता चलता है कि जो कुछ क्रिया और चेष्टा लोहे में दीख पड़ती है वह चुम्बक की ही गुप्त शक्ति और खींच है, वरना लोहा अकर्ता और जड़ रूप है। इसी तरह से यह शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, पृथ्वी, आकाश सब पदार्थ चञ्चल रूप दिखाई देते हैं तो फिर इस चञ्चलता और क्रिया कर्म की ज़िम्मेवारी उन पर कैसे आ सकती है? जिम्मेवार तो आत्मा ही है। जिस तरह से वह घुमाती है ये घूमते हैं। जैसे चुम्बक जिस तरह से हिलता जुलता है उसी तरह से लोहा नाचता है। अगर लोहा चुम्बक से चिपट जाये तो उसकी चेष्टा बन्द हो जाती है। इसी तरह से आत्म-परायण होने से और आत्मा में स्थित होने से और आत्मा से एक रस हो जाने से देह, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और जगत् सब शान्त रूप हो जाते हैं। इससे नतीजा यह निकलता है कि इनमें कर्म करने की शक्ति है ही नहीं। महाभारत में श्रीकृष्ण भगवान ने युधिष्ठिर से कहा कि, "कहदो अश्वत्थामा मारा गया।" उसने जवाब दिया कि मैं यह नहीं कहूँगा बल्कि पीछे

से यह ज़रूर कहूँगा कि वह हाथी था। ग़र्ज़ यह कहने पर भी युधिष्ठिर का रथ जो ज़मीन से ऊपर-ऊपर चलता था उसका पहिया ज़मीन पर आ गया। इससे पता चल गया कि धर्मराज ने झूठ बोला। उस वक्त श्री कृष्ण भगवान ने फ़रमाया कि जैसा हम कहते थे उसी तरह से तुम यह समझ कर कह देते कि मैं भगवान की इच्छानुसार कर्म कर रहा हूँ तो तुम्हारा रथ का पहिया कभी ज़मीन पर न लगता तुमने अपने को कर्त्ता समझकर काम किया क्योंकि तुम्हारी आत्मा जानती थी कि तुम धोखे की बात कह रहे हो इसीलिये तुमको झूठ बोलने का पाप लगा। यही बात अर्जुन को समझाई कि तुम शरणागत भाव को ग्रहण करो, फिर जो कुछ भी कर्म करोगे उसके फल के भागी तुम न होगे। अपने को आत्मा रूपी कारीगर के इच्छा रूपी औज़ार समझो। कारीगर औज़ार से जो चाहे काम लेता है। अगर तलवार से किसी को मारा जाए तो तलवार को सजा नहीं मिलती। औज़ार को किसी कर्म करने का अभिमान नहीं होता। इसीलिये मनुष्य को भी यही भावना करनी चाहिये कि जो कुछ हम कर रहे हैं वह ईश्वरीय इच्छा से हो रहा है। ऐसा अनुभव हो जाने का नाम ही शरणागत है। सब कल्पनाजाल को ईश्वर से अलग न जानना ईश्वर समर्पण भाव है।

६१—एक रोज़ एक सत्सङ्गीने अर्ज़की कि हठयोग, राजयोग, लययोग, ज्ञानयोग की क्रियाओं में क्या भेद है और किस-किस भावना से ये किये जाते हैं?

श्री महाराज ने फ़रमाया कि हठयोग में नेती, धोती, दस्ती, कपाल, भाँति, नेवली, त्राटक, गजकर्म आदि का अभ्यास किया जाता है। इससे मल की शुद्धि हो जाती है, शरीर की वायु पर भी काबू हो जाता है।

राजयोग के चार पाद हैं:—समाधि, साधन, सिद्धि और कैवल्य। अष्टांग योग साधन करके शरीर के भिन्न-भिन्न स्थानों में मन का संयम किया जाता है। इस संयम से भुवन ज्ञान, तारादेवा ज्ञान, कायाधो-ज्ञान, क्षुधा-पिपासा-निवृत्ति, सिद्ध दर्शन और अष्ट सिद्धियां प्राप्त होती हैं। मगर ये सिद्धियाँ आत्म-स्थिति में बाधक हैं। भुवन कर्म और ध्यान इस योग के भेद हैं। भुवन से अभिप्राय सात चक्रों से है। मूलाधार से ब्रह्मरंध्र तक जो कर्म होते हैं उनका

शोधन करें। कर्म से मुराद जप है। ध्यान से अभिप्राय भौंवों के मध्यकमल के बीच परमपुरुष का ध्यान करना आदि-आदि।

लययोगः—लययोग में प्राण-शक्ति, कुण्डलिनी और मन की वृत्तियाँ सबको लय किया जाता है। इसमें साधक की स्थिति के अनुसार पहले षट् चक्रों में, फिर सहस्रदल कमल में या उसके ऊपर जो गुरुपादिका है वहाँ ध्यान किया जाता है। लययोग में कुण्डलिनी का जागना गुरु कृपा पर बतलाया है। इसमें इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ी और इनके अतिरिक्त और भी कई नाड़ियों का ज़िक्र आया है जैसे कूहू जो मेरुदण्ड के बांयी तरफ़ है, गान्धारी जो बांयी आँख से बांये पैर के अंगूठे तक है। इनका अभ्यास चिश्तिया खान-दान में किया जाता है इसको कीमास रग कहते हैं, दाहिनी आँख से दाहिने पैर के अंगूठे तक हस्तिनी नाड़ी है। सुषुम्ना की दाहिनी तरफ़ सरस्वती नाड़ी है। यह जीभ के पास आकर मिली है। दाहिनी आँख से पैर तक पूरवा नाड़ी है पूरवा व सरस्वती के बीच में एक पेशोनी नाड़ी है। गान्धारी व सरस्वती के बीच में संखनी नाड़ी है। दाहिने हाथ के अंगूठे से बायें पैर तक पेशोनी नाड़ी है। कूहू और पेशोनी के बीच में बारूनी नाड़ी है। उसकी दीप्त शरीर के निचले भाग में है। कूहू और हस्तिनी के बीच में विशुद्धा नाड़ी है। यह भी बारूनी के समान शरीर के निचले भाग में फैली हुई है। सुषुम्ना के मध्य में वज्र और बज्र के बीच में चित्रनी है, चित्रनी के मध्य ब्रह्म नाड़ी है। ब्रह्म नाड़ी के मध्य कुण्डलिनी है। सुषुम्ना अग्नि स्वरूप है। वज्र सूर्य स्वरूप है। चित्रनी पूर्ण चन्द्रमण्डल रूप है। कुण्डलिनी जब चित्रा नाड़ी के पास से ऊर्ध्वगामी होती है तब इन तीनों नाड़ियों को छूती हुई चलती है। इसीलिये चित्रा को ब्रह्म-द्वार कहते हैं।

ज्ञानयोग में स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण और अति महाकारण देह तक सब देहों की पंचीकरण की दृष्टि से तथा व्यतिरेक और अनुलोम से आत्मा से भिन्नता सिद्ध करते हैं। इस प्रकार चित्तवृत्ति को लय करते हुए ज्ञान की सात भूमिका पार करनी पड़ती हैं। इनको पार करते हुये विक्षिप्तता, गतायाता, संश्लिष्टता और स्वलीनता इन चार अवस्थाओं तथा मल, विक्षेप, कषाय, और रसास्वादन चार विघ्नों को लांघकर केवल निरालम्ब स्थिति में तल्लीन रहना जीवात्मा और परमात्मा का योग होता है। यह तो सिर्फ़ सम-

झाना मात्र है। जब जीवात्मा और परमात्मा एक हैं तो उनका योग कैसा। अलबत्ता जीव को ज्ञान-विज्ञान प्राप्त होना ज्ञान-विज्ञान योग हैं।

६३—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि कोई माँ-बाप की कमाई खाता है, कोई भाई की, कोई बेटा बेटी की, कोई औरत की तो कोई पब्लिक या मजदूरों की। जैसे किसी फैक्ट्री या मिल में हज़ारों मनुष्य काम करते हैं, परन्तु उसका पूरा लाभ मालिक फैक्ट्री उठाता है। लेकिन शुद्ध धन वही माना जाता है जो अपने हाथ पैरों की कमाई से पैदा किया जावे। बुद्धी से धन कमाना भी बुरा समझा गया है क्योंकि बुद्धी रोटी कमाने के लिये नहीं बनाई गई बल्कि परमात्मा और उसके स्वरूप का निश्चय करने के लिए है। उत्तम खेती, मध्यम बणिज, निषिद्ध चाकरी, भीख समान है।

खेती को उत्तम इसलिये कहा गया है कि उसमें अपने हाथ पैर की कमाई खाने को मिलती है। खेत को बनाकर बीज बो दिया फिर उसको बिल्कुल राम भरोसे छोड़ना पड़ता है अर्थात् दिन भर मेहनत करके भी फल उसका परमात्मा आधीन रहता है, और किसान की निगाह और ध्यान हर समय भगवान में लगा रहता है। कीड़े, मकोड़े, पशु पत्ती लाखों जीव उससे बौसाते हैं। व्यापारी, दस्तकार, नौकर चाकर सब पराधीन रहते हैं। किसान रोटी कपड़े के लिए किसी सरकार के आधीन नहीं और दुनियाँ में रोटी कपड़ा ही ऐसी वस्तु है कि जिसके बग़ैर गुज़ारा असम्भव है। दूसरा वाणिज्य व्यापार इसमें दूर दराज़ देशों में जाना, जल और थल की तकलीफ़ उठाना, भय का सामना करना, टोटा घाटा, निरख की कमी बेशी, चोर डाकुओं से रक्षा के लिये कुछ भरोसा ईश्वर पर रखना पड़ता है। इसीलिए इसको मध्यम कहा गया है। तीसरा चाकरी इसमें भी कमाई हाथ पैर की है लेकिन हर समय दूसरे की पराधीनता और बजाय परमात्मा के हर वस्तु के लिए अपने स्वामी का मूँह ताकते रहना पड़ता है। इसीलिये इसको निषिद्ध कहा है। जिन देशों में कृषि कर्म का सुभीता नहीं है वहाँ पर दस्तकारी इसीलिए जारी की जाती है कि देशवासी उसी से गुज़ारा करें। लिहाज़ा कला-कौशल से काम लेनेवाले पूंजीपतियों का नियम धन कमाकर सर्व जनता को हिस्सों के अनुसार लाभ पहुँचाना होना चाहिये न कि अपनी जेब भरना और घर, मकान, जायदाद बनाते जाना और ज़ेवर घड़वाते जाना।

इसी तरह से वाणिज्य व्यापार में अपने देश की बनाई हुई वस्तुओं को और जरूरत से ज़्यादा पैदा हो जाने वाले अनाज को दूसरे देश में जहाँ उसकी माँग हो पहुँचाना और उससे प्राप्त धन से अपने देश वासियों को यथायोग्य लाभ पहुँचाना और अपने देश में न बनने वाली और न पैदा होने वाली अत्यावश्यक चीजों को विदेश से लाकर अपने देश वासियों की ज़रूरत पूरी करना। लेकिन जो नरेश देश और प्रजा का हित नहीं चाहते वह ऐसी सूरतें पैदा कर देते हैं जिनसे यह प्रबन्ध बिल्कुल उल्टा हो जाये। नौकर की तनुख्वाह बढ़ादी और काश्तकारी पर लगान बढ़ा दिया जिससे सब काश्तकार अपना काम छोड़-छोड़ कर नौकरी पर झुक पड़ें। जब वह पराधीन हो गये तो काफी समय के बाद उनके स्वभाव में से भी स्वतन्त्रता का भाव निकल जाता है और वह भाव ऐसा दब जाता है कि किसी को सर ऊँचा करने का हौंसला नहीं रहता। और ऐसी कौम निकम्मीं पड़ जाती हैं। इससे बड़ी हानि यह होती है कि जब कभी उस नरेश को हौसला मन्द आदमियों की ज़रूरत पड़ती है तब वह ढूढ़ें भी नहीं मिलते।

६४—एक रोज़ एक सत्सङ्गी ने प्रार्थना की कि भगवद्गीता में लिखा है कि जब धर्म की हानि होती है तो श्री भगवान अवतार लेकर दुष्टों का नाश करते हैं, साधुओं की रक्षा करते हैं और धर्म की स्थापना करते हैं। साधुओं की रक्षा और दुष्टों के नाश का हाल तो श्रीमद्भागवत और महाभारत में काफी लिखा है, लेकिन धर्म कौनसा स्थापन किया गया है, इसका पता नहीं लगता? श्रीमहाराज ने फरमाया कि दुष्ट ही तो धर्म की हानि करते हैं जब उनका विनाश हो गया और साधु स्थापित हो गये तो धर्म का स्थापन तो अपने आप ही हो गया। श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है कि जो पुरातन योग बहुत काल से लोप हो गया था वही फिर प्रकट किया गया है। इसके उपरान्त उन्होंने जो लीलाएँ कीं वह सब कलियुग में होने वाली घटनाएँ यानि कलियुग के धर्म ही तो समझने चाहिये।

१. सन्तान के पैदा होने से माता पिता को बजाय सुख के कष्ट। २. पास पड़ोसियों के माल को दिन दिहाड़े उड़ा लेना कोई देखले तो कह दिया कि मैं तो तेरे माल की देखभाल करता था। न देखे तो चट कर गये। खुद खाना और अपनी पार्टी वालों को खिलाना। जिस तरह ग्वालबाल झूठी गवाही देते थे उसी तरह

कलियुग में झूँठे गवाह बन जाया करेंगे। ३. रास्ता चलती परस्त्रियों से छेड़छाड़। ४. क्षत्री कुल में जन्म लेकर गोप ग्वालों के साथ-साथ भोजन करना, बल्कि एक दूसरे का जूठा खालेना। ५. राजविरोध-राजकर से अलग। दूध दही जैसी छोटी वस्तु बेचने वालों से कर वसूल करना। ६. परस्त्री और परपुरुषों का हास बिलास। ७. स्त्रियों के क्रीडा स्थान पर परपुरुषों का जाना और अनुचित व्यवहार करना। ८. स्त्रियों का अपने पतियों को सोते छोड़कर परपुरुषों के साथ एकान्त स्थान में रात्रि में नाच कूद करना और सुबह से पहले घर आकर सो रहना। ९. यज्ञ कर्ता और वेदपाठी धर्मात्मा पतिओं की सेवा छोड़ स्त्रियों का स्वादिष्ट भोजन बनाकर जङ्गल के फिरने वाले पुरुषों को लेजाकर प्रेम से खिलाना। १०. जिस तरह कुब्जा को भगवान ने प्रसन्न किया, इसी तरह से घर की स्त्री को छोड़ कर बाहर की स्त्रियों से स्नेह करना। ११. धोबी धोने को कपड़े लेजावे और धोकर दूसरों को पहनाये। १२. भानजे द्वारा मामा की हत्या करना। १३. राज्य के हकदार दुर्योधन से राज्य छिनवा कर अपने प्यारे पाण्डवों को दिला देना। १४. सगाई के बाद शादी से पहले क्वारी लड़की को भगा ले जाना। १५. जानबूझ कर अपने खान्दान वालों की तबाही का तमाशा देखना। १६. शराब पीना और वह भी तीर्थस्थान पर पीना आदि आदि। इस सबका परिणाम यह सब कलियुग में होने वाले धर्म कर्म ही तो हैं। सब कर्म बचपन में इसलिये दिखला दिये कि इस उम्र में मनुष्य ऐसे कर्मों के पाप भागी नहीं होता, बशर्ते कि कर्त्ता को उनकी बुराई-भलाई का ज्ञान न हो। भगवान को तो इसका ज्ञान था, इसलिये उसका प्रायश्चित्त भी करके दिखा दिया श्रीजगन्नाथ जी के मन्दिर की मूर्तियों के हाथ कटे हुए हैं, उनके अलावा और वारदातों (किस्सों) में एक बात यह भी मशहूर है कि श्री कृष्ण भगवान और बलदेवजी ने पर स्त्रियों के शरीर हाथ से छूए थे, उसी प्रायश्चित्त में दोनों मूर्त्तियों के दोनों हाथ कटे हुए दिखलाये हैं; ताकि ऐसे कर्म करने वाले कहीं यह न समझ लें कि जो कर लिया सो कर लिया न सजा है न जज़ा है। उनको शिक्षा होनी चाहिये कि ऐसे महा-पुरुष और अवतार ने ऐसी छोटी अवस्था में किये हुए कर्मों का फल भोगकर शिक्षा दी है कि कोई ऐसे कर्म फल से नहीं बच सकेगा।

उस सतसङ्गी ने यह भी प्रार्थना की कि श्रीराधाजी का विवाह तो किसी मनुष्य अभिमन्यु से हुआ था, और श्रीकृष्ण भगवान से ऐसा सम्बन्ध था तो फिर राधाजी की इतनी महिमा क्यों है ?

श्रीमहाराज ने फरमाया कि आपके असूल से तो श्री कृष्ण भगवान की महिमा भी नहीं होनी चाहिये; क्योंकि उनकी भी शादी रुक्मिणी जी से हुई थी और उन्होंने भी परस्त्री राधाजी से प्रेम किया आप मर्यादा स्थिर रखने के नियम को ही ध्यान में रखें। कलियुग में बहुत ही कम ऐसी औरतें निकलेंगी जो प्रथम श्रेणी की पतिव्रता हों, बल्कि अयोग्यता, हीनता, विषय भोग की कमी बेशी और युग के प्रभाव से सबकी वृत्ति डाँवाडोल होगीं। ऐसी हालत में कल्याण की सिर्फ यही सूरत है कि वह लोग राधाजी और कृष्ण जी का सा व्यवहार करें कि इन दोनों का मिलना जुलना उठना बैठना, खाना पीना, सोना, रहना, खेलकूद, नाच-तमाशा सब क्रिया आपस में थी। सिर्फ मैथुन का बचाव था। कलियुग में परस्त्री और परपुरुष परस्पर हँसना, बोलना और घूमना किये बगैर रह नहीं सकते; अगर वे परस्पर मैथुन से ही बचाव रखेंगे तो उनका निस्तार हो सकेगा। मैथुन आठ तरह का है । लेकिन आज कल सरकारी कानून से सिर्फ आठवें तरीके को ही मैथुन माना गया है। पहली सात बातें मुआफ हैं। शास्त्र की मर्यादा भी है कि कलियुग में मानसी पाप नहीं लगेगा। इसलिये अगर शारीरिक क्रिया से ही जो मनुष्य बच जायेंगे, उनका कल्याण हो जावेगा। राधाजी का अटल प्रेम भगवान श्रीकृष्ण जी से था। दूसरी तरफ अपने पति के प्रति पतिव्रत धर्म का पालन राधाजी द्वारा पूरी तौर से किया है। इसी तरह से श्रीकृष्ण भगवान का प्रेम राधाजी से था, परन्तु उन्होंने गृहस्थ धर्म का पालन अपनी स्त्रियों के साथ किया है । इससे ज्यादा और क्या हो सकता है कि एक साथ दो दो स्वाँग भर कर दोनों पूरे उतार दिये। राधाश्याम आपस में तन्मय और मन्मय थे सिर्फ विषय में न थे। इस बात का परिचय रुक्मिणी आदि रानियों को मिल गया। जब कि राधाजी को खूब गर्म दूध पिलाया, और श्रीकृष्ण भगवान के हृदय में छाले पड़े इसी कारण से इतनी महिमा है कि क्रोड़ों मनुष्यों की जबान पर और दिल में उनके नाम का स्मरण और ध्यान हर समय रहता है, बल्के बृज

स्थावर योनिया भी उनका नाम रटती हैं। गुसाईं तुलसीदास जी ने अन्तर्दृष्टि से उसका अनुभव किया, तभी यह लिखा कि—

"राधे राधे रटत हैं आक ढ़ाक और कैर।
तुलसी या ब्रज में, कहा राम से बैर॥
बृन्दावन के बृक्षन को, मर्म न जाने कोय।
डाल पात फल फूल से, राधे राधे होय॥

६५—एक रोज़ एक व्यक्ति ने प्रार्थना की कि दुर्योधन ने अपने हृदय में स्थित देव की प्रेरणा के अनुसार काम किया था फिर उसकी दुर्गति क्यों हुई। श्रीमहाराज ने फ़रमाया कि यह लोक और परलोक दो अलग-अलग चीज़ें मान ली गई हैं। इसलिये उनकी मर्यादा और कर्म का फल अलग-अलग प्रतीत होता है। इसलोक की मर्यादा के मुताबिक काम न करने से दुनियाँ में नुकसान उठाना पड़ता है। परलोक की मर्यादा और कानूनों पर न चलने से आकबत बिगड़ जाता है। हर व्यक्ति की प्रकृति और स्वभाव तीन गुणों में से किसी न किसी गुण के अधीन मानना पड़ेगा और उसके कर्म भी स्वभाव के अनुसार उसी गुण के मुताबिक होंगे तो इस दुनिया में उसका फल भी मानी हुई या स्थापित की हुई मर्यादा के मुताबिक होगा। सात्विकी-स्वभाव को उत्तम, राजसी को मध्यम, और तामसी स्वभाव को अधम करके माना है। इनके फल भी इसी तरह से उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ रखे गये हैं। लिहाज़ा इस संसार की मर्यादा में दुर्योधन का कर्म तामसी ठहरता है, जो गति रावण आदि की हुई वही उसकी हुई। यह तामसी स्वभाव उसको प्रकृति से मिला था और उसने उसी स्वभाव के आधीन और उसके ऐन मुताबिक काम किये थे इसलिये कुदरत से सजा नहीं मिली। मरने के बाद वह सबसे पहले ऊँचे दर्जे के स्वर्गलोक में जा पहुँचा। इस लोक में उसका अपमान और नुकसान भले ही हुआ हो मगर परलोक में उसकी कोई हानि नहीं हुई। जैसे नाटक में किसी अभिनेता ने अपने पार्ट के मुताबिक कत्ल कर दिया और उसे फांसी पर लटका दिया गया। लेकिन नाटक खत्म होने पर न वह मुजरिम और न उसको फांसी लगी। जैसा था वैसा ही रहा। मगर आम उपदेश के मुआमले में उतनी दूर की और इतनी साफ़ बात कहने की जरूरत नहीं। इससे बहुतेरों के काम में हर्ज वास्तव में ही होता है।

६६–एक व्यक्ति ने पूंछा कि सनातन धर्म और आर्यसमाजी दोनों कहते हैं कि हमारा वैदिक धर्म है फिर इनके विचारों में, वेदों के ही आधार पर इतना अन्तर क्यों है ?

श्री महाराज ने फ़रमाया कि इसका जवाब श्रीकृष्ण महाराज जी ने आज से हज़ारों वर्ष पहले भागवत के ११ वें स्कन्ध के १४ वें सर्ग में अवधूत को ज्ञान का उपदेश देते वक्त दे दिया है। अगर ऐसी बातों को भी कोई न पढ़े या समझने की कोशिश न करे तो इसका उपाय ही क्या है ? उसमें लिखा है कि जब ब्रह्माजी, श्रीविष्णु भगवान की नाभि से निकले हुये कमल से उत्पन्न हुये तो उनको वेद प्राप्त हुये जिनको उन्होंने भृगु आदि को पढ़ाया। उन मुनियों ने वेदों का अर्थ देवता, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर आदि को सिखलाया इससे साफ़ ज़ाहिर है कि वेद केवल सनातन धर्म या आर्य समाजियों की ही सम्पत्ति नहीं, संसार भर के जीवों का ज्ञान वैदिक धर्म ही है। भेद यह है कि इस संसार के सब पदार्थ और सब जीव तीन गुणों से उत्पन्न हुए हैं। उनमें से जो सतोगुण प्रधान हैं वे वेदों का अर्थ सतोगुणी बुद्धि के अनुसार समझते हैं। वे उपासना और ब्रह्मज्ञान, ईश्वर प्राप्ती अपना और जीवों के कल्याण का प्रमुख कारण मानते हैं। जो रजोगुण प्रधान हैं, वे यज्ञ, जप तप दानादि को लोक और परलोक के सुख की प्राप्ती का कारण मानते हैं। यज्ञ याने देना और लेना इसमें चरू दी जाती है और अन्न फूल फल लिये जाते हैं। जो तमोगुण प्रधान हैं, उन्होंने समझा है कि भोजन, भोग, निद्रादि जिस तरह से भी जीवन सुख से गुज़रे, बस यही जीवन का आदर्श है, मरने के बाद न स्वर्ग है न नर्क है। इसी तरह से अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार इसका अर्थ लगा कर अपने पक्ष और समझ को सर्वोत्तम मानते हैं और दूसरों के पक्ष का तिरस्कार करते हैं। इतना ही नहीं के वेद के आधे श्लोक के अर्थ से उनका पक्ष सिद्ध हो तो इतने को ही मानेंगे, दूसरे पद को नहीं मानते।

बहुत से पाखण्डियों ने नये-नये मत वेदों के आधार पर ही चलाये हैं। बस यही भूल है,

पक्षा पक्षी के कारणे, सब जग रहा भुलान।
निर्पक्ष होकर हरि भजे, सोई सन्त सुजान॥"

कर्मफल से प्राप्त सुख लोकों और देवताओं से सम्बन्ध रखते हैं और अनन्तकाल के अन्तर्गत सब लोक और देवता अपनी-अपनी अवधि पर लीन हो जाते हैं। इसलिये लोक और परलोक देवताओं से प्राप्त सुख का एक न एक दिन अन्त हो जाता है। ब्रह्म दर्शन ही ऐसा आनन्द है कि जिसका कभी नाश नहीं होता। इसको प्राप्त करने वाले ब्रह्मरूप हो जाते हैं। ऐसे आदमियों का तो कहना ही क्या है इसके सच्चे अधिकारी की यह हालत हो जाती है कि तमाम पृथ्वी का चक्रवर्ती राज्य, इन्द्र का राज्य, ब्रह्मा की पदवी भी उसको दी जाये तब भी किसी को ग्रहण करने को तैयार नहीं होता।

६७—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि अंजील में लिखा है कि बड़े-बड़े सात महा घातक के पातकों में से अहंकार सबसे बड़ा और भयंकर है और मतों के शास्त्रों में भी अहंकार को ऐसा ही माना है। यह सबसे पहले प्रकट होता है और सबसे पीछे छूटता है। मनुष्य ही नहीं बल्कि पशु पक्षी तक में यह मौजूद है। बड़े-बड़े महात्मा जिन्होंने सब संसारी सुखों और काम क्रोध, लोभ मोह तक को जीत लिया है वह भी अहंकार के सामने बहुधा घुटने टेक जाते हैं। मान बड़ाई की चाहना इसी के कारण हैं। सबसे बड़ी खराबियाँ इसमें यह है कि यह खूब सूरत, ताकत वर, दौलत मंद और महान ही नहीं बनना चाहता बल्कि सबसे ज्यादा खूबसूरत सबसे ज्यादा ताकत वर सबसे ज्यादा अमीर और हर बात में सबसे बड़ा होना चाहता है।

दूसरी ख़राबी यह है कि अभिमान और अहंकार अपने में तो बहुत अच्छा मालूम होता है परन्तु दूसरे में सबसे बुरा नज़र आता है। तीसरी बात यह है कि मनुष्य मात्र की आधे से ज्यादा बल्कि मुसीबतों की जड़ अहंकार ही दिखलाई पड़ती है। आयन्दा आने वाले बहुत से फ़र्ज़ी दुखों का भय और सोच इन्सान को बड़ा दुख देता रहता है। वह इसी का असर है। चाहे बहुत ही खूब सूरत हो अमीर हो या ताकत वर पहलवान हो सब को यही दुख बना रहता है के खूबसूरती दौलत ताकत और रुतबा चला गया तो फिर क्या होगा और कैसे निभेगी यह भी चिन्ता लगी रहती है कि कोई दूसरा मुझसे अधिक खूबसूरत अमीर ज़ोरावर और रुतबे वाला न बन जाये।

जब तक आपा है तब तक अहंकार है। जब आपा बिसरे तब अहंकार शान्त होगा। विद्या विवेक और निष्काम कर्म और सब बातें प्रारब्ध और ईश्वर इच्छा पर निर्भर समझने का भाव दृढ़ हो जाय तो अहङ्कार और उसके आधीन और मानसिक दुख शान्त हो।

६८—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि भावना से ही आत्मा का साक्षात्कार होता है। अज्ञान, अविद्या, अनन्त जन्मों का भीतर दृढ़ हुआ बाहर दिखलाई देता है। आत्मा सब इन्द्रियों से अगोचर है। मन सहित छः इन्द्रियों का अभाव होता है, तब कैवल्य शान्त पद को प्राप्त होता है। जो कुछ वृत्ति बाहर मुख फुरती है सो अविद्या है, जो अन्तर्मुख आत्मा की ओर फुरती है वह विद्या है। अविद्या के दो रूप हैं, एक प्रधान रूप, दूसरा निकृष्ट। इस अविद्या से विद्या उपज कर अविद्या को नाश करती है, फिर आप भी नाश हो जाती है। जैसे बाँस से आग निकल कर बाँस को जला कर आप भी शान्त हो जाती है। अन्तर्मुख प्रधान रूप विद्या है और बाह्य मुख निकृष्ट रूप अविद्या है। जब अविद्या का दृढ़ अभ्यास किया है तब वह दृढ़ हुई है। जब आत्म ज्ञान का दृढ़ अभ्यास होगा तब उसका साक्षात्कार होगा।

क्रिया, कर्म, कारण, सम्प्रदान, अपादान अधिकरण, यह षट् कारक विद्या है, सो सब भ्रम ही है। जिसको ज्ञान होता है उसी को ऐसा भासता है कि मैं ब्रह्म हूँ और सदा सब काल सब में, सब तरह से, घट पट आदिक जो जगत जाल हैं उसमें ही ब्रह्म प्रकाश की तरह व्याप रहा हूँ। मुझको न दुख है, न कर्म है, न त्याग है, न इच्छा है।

६९—एक व्यक्ति ने प्रार्थना की कि वेदान्त में जगत को मिथ्या और आत्मा को सत्य कहा है, यह बात किसी तरह समझ में नहीं बैठती। जगत प्रत्यक्ष दिखलाई देता है। मनुष्य, पशु, पक्षी आदि नाना रूप नज़र आते हैं। इसको एक या असत्य कैसे माने।

श्री महाराज ने फ़रमाया, बेशक जो चीज़ जब तक प्रत्यक्ष दीखती है, उसको अन्यथा मान लेना नामुमकिन है और धींगाधींगी मान भी लें तो उससे फ़ायदा क्या? कारण यह है कि यह सिर्फ़ शास्त्र ज्ञान है और आम

इन्सान की पहुँच यहीं तक है। जैसा सुना है उसका मनन किया जाय तब कुछ-कुछ दिल में जमने लगेगी। मगर जब तक निदिध्यासन के ज़रिये अनुभव से इस आत्मा का साक्षात्कार न हो तब तक न तो जगत मिथ्या भासेगा न आत्मा में स्थिति होगी।

पहले इस स्थूल जगत और इसके पदार्थों को लो। अलग-अलग जितने रूप चारों खान को दिखाई पड़ते हैं वे सब पाँच तत्त्व और उनकी प्रकृतियों से बने हैं। इतनी बात को हर सत्सङ्गी व जिज्ञासु समझता है। आकृति यानि शक्ल और सूरत का अन्तर अपने-अपने कर्मों के लिहाज़ से और तीनों गुणों की कमी बेशी से है। जैसा स्वांग प्रारब्ध को भोगने के लिये भरा है वैसा ही चोला मिल गया है। चोला छूटने के बाद सभी सूरतों व मूर्तों की एक सी गति होती है। जलकर, सड़कर या गलकर पाँचों तत्त्व अपने-अपने भण्डार में मिल जाते हैं। इसके बाद सूक्ष्म शरीर रह जाता है। उसके सत्रह तत्त्व भी सब में समान हैं। इसकी शान्ति पर, कारण शरीर में स्थिति होती है। उसमें भी समानता है। इन तीनों शरीरों को ऐसा समझो जैसे तीन अवस्था जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति है। जागृत में सत्वगुण प्रधान होने से चेतना अधिक होती है। जीव को पदार्थ का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। सब इन्द्रियाँ व अन्तःकरण अपना-अपना काम करते हैं। स्वप्न रजोगुण प्रधान है। इसमें स्थूल शरीर सो जाता है और बिल्कुल काम नहीं करता। दो शरीर सूक्ष्म व कारण जागते हैं। तन्मात्र, प्राण मन और बुद्धि काम करते हैं। लेकिन जीव को यह ज्ञान होता है कि मैं सब कुछ देख रहा हूँ। गोया स्वप्न के सब पदार्थों से अलग देखने वाला मौजूद है। सुषुप्ति में सब इन्द्रियाँ शान्त हो जाती हैं, सिर्फ़ प्राण अपना काम करते हैं। अब स्थूल, सूक्ष्म शरीर सो गये सिर्फ कारण जागता है। महत तत्त्व अर्थात् बुद्धि भी तमोगुण प्रधान होने से इस अवस्था का ठीक निश्चय नहीं कर सकती। जागने पर जीव कहता है कि बड़े आनन्द से सोये। जीव सुषुप्ति में आत्मा के नज़दीक पहुँच जाता है। इसलिये जैसे पर्दे में से छन छन कर रोशनी आती है, उसी तरह से आत्मा का आनन्द जीव को आता रहता है। यहाँ तीनों शरीर सो गये। सिर्फ जीव साक्षी रूप है। इस लिये जीव को ज्ञान बना रहता है और उस अवस्था का साक्षी होता है।

इसी कारण तीनों शरीरों की व्यवस्था करता है और कहता है कि मैं जागता था, मैंने स्वप्न देखा, मैं आनन्द से सोया। यह "मैं" अहंकार रूप है।

यहाँ तक जो कुछ भासा वह सब जड़ था, इसको 'क्षर पुरुष' भी कहते हैं। इसके ऊपर क्षेत्रज्ञ यानी अक्षर-पुरुष है जिसको जीवात्मा कहते हैं। इसके ऊपर ब्रह्म है, जिसको गीता में पुरुषोत्तम कहा गया है। इसके बाद तुर्या में जो कुछ भासेगा वह चैतन्य होगा। उसी जगह जड़ और चैतन्य की गाँठ बंधी है। जिसको जड़ चैतन्य की ग्रन्थि कहते हैं। यहाँ तक का संसार अहंकारात्मक है। सब के तीनों शरीर एक मसाले और तरकीब से बने हैं। इसलिये उनमें एकता है। कोई फर्क नहीं। व्यवहार में जो सुख दुःख का फर्क नज़र आता है वह प्रारब्ध का फल है। लेकिन इसमें भी गौर किया जाय तो वज़न बराबर हो जाता है। चक्रवर्ती राजा को सब तरह का सुख प्राप्त होता है, उससे सौ गुना देवताओं को, उससे सौ गुना ज़्यादा इन्द्र को, उससे सौ गुना ज़्यादा ब्रह्मा को, उनसे सौ गुना ज़्यादा विष्णु भगवान् को। लेकिन सुख की तह में जो दुःख है वह भी इसी तरह बढ़ता चला जाता है। कहा है कि—

"बड़े भये दुःख बहुत है, छोटे से दुःख दूर।
तारे सब न्यारे रहें, गृहें चाँद और सूर॥"

सुख तो अनुमान, और प्रत्यक्ष प्रमाण से प्रतीत होता है, लेकिन दुःख की जड़ बड़ी गहरी है। अपने-अपने अधिकार के लिहाज़ से हरदम चिन्ता लगी रहती है। गरीबों को रोटी कपड़े की ही चिन्ता रहती है। अमीरों को कार व्यौपार, चोरी और राजा आदि का भय रात दिन सताता है। राजा को दूसरे राजाओं का भय घेरे रहता है। जहाँ जैसा सुख नज़र आता है उसकी तह में उससे भी ज़्यादा दुःख छुपा हुआ है।

एक बात और विचारने योग्य है कि दुःख सुख पदार्थों में नहीं हैं। अगर इनमें होता तो सब को एक से प्रतीत होते। मगर एक ही पदार्थ में किसी को सुख प्रतीत होता है तो दूसरे को दुःख मालूम होता है। इससे प्रमाणित होता है कि दुःख सुख भावना के अन्दर है। बल्कि मन का भाव है। भाव से जिसमें हम सुख प्रतीत करते थे फिर उसी में दुःख प्रतीत करने लगते हैं। जिस तरह तीन शरीरों का हाल है उसी तरह से पाँच कोष हैं।

इन्हीं तीन शरीरों को वेदान्त में पाँच कोष नाम दिया गया है। जैसे सुन्दर तलवार पर म्यान और उस पर मखमल, मखमल के ऊपर किसी और सुन्दर कपड़े का गिलाफ चढ़ाते हैं; इसी प्रकार इस सब से ज्यादा अनमोल आत्मा के ऊपर भी कई गिलाफ चढ़े हुए हैं। लेकिन सब जड़ चेतन पदार्थों के गिलाफों में समानता है। बुद्धिमान गिलाफों को नहीं देखते, उसके अन्दर वाले आत्मा को देखते हैं। हमारा आदर्श आत्मा को शरीर में पहिचानना है। इस मनुष्य देह में ही आत्मा को ढूँढ़ने का सुयोग होता है और सब तो भोग योनियाँ हैं। मनुष्य देह ऊपर चढ़ने की सीढ़ी है। अन्तःकरण को निर्मल रखना मनुष्य का कर्त्तव्य है। अतः जो कोई प्रकृति और स्वभाव के अनुसार काम नहीं करता वह कृपण कहलाता है। आत्मोन्नति का उपाय न करना वेदान्त शास्त्र के अनुसार आत्महत्या करना है।

जो न तरे भवसागर, नर समाज अस पाइ।
सो कृत निन्दक मन्दमति, आत्महन् गति जाइ॥

अब यह देखना चाहिये कि यह अन्तर जो विषय और गुण से पैदा हो जाता है उसका कर्म क्या है? गुण का अर्थ है बन्धन या रस्सी। विषय का अर्थ है बाँधना। इसलिये शब्द स्पर्श आदि विषय जीव को बाँधते हैं। बच्चे में न तो कोई विषय होते हैं, न मोह, न अहंकार। इसलिये उसका कोई शत्रु नहीं होता। जैसे सुषुप्ति से उठे हुए मनुष्य को पहिले अपने आपे का ज्ञान होता है इसी तरह से बच्चे में पहले 'अहं' यानी अहङ्कार पैदा होता है उसके बाद क्रोध होता है, फिर लोभ होता है और चीज़ों को लेने के लिये लपकता है। फिर मोह होता है और वह समझने लगता है कि यह मेरा भाई, बहन और माँ-बाप हैं। जिस सिलसिले से यह पैदा होते हैं उसी सिलसिले से मिटते हैं।

बच्चे को संसार के पदार्थों को देख कर, सुन कर, पूँछ कर धीरे-धीरे पदार्थों का ज्ञान प्राप्त होता है। इसी तरह से भगवान् की भक्ति, कीर्तन, अर्चन का अभ्यास करने से संसार मिट भी जाता है। जड़ चैतन्य की गाँठ खुल जाती है। यह चित्त अपने आप विषयों में नहीं जाता बल्कि बचपन से इसे विषयों में लगाया जाता है। उसी तरह से इसको उनसे हटाकर दूसरी

तरफ़ लगाना चाहिये। जिस पदार्थ के खाने से रोग पैदा होता है जब तक उसको खाते रहें किसी भी दवा और इलाज से सन्तोष जनक फ़ायदा नहीं हो सकता। दवा तभी लाभ करती है जब परहेज़ भी हो। इसी तरह जिन विषयों का सेवन करने से संसार रूपी रोग पैदा हुआ है जब तक उनको नहीं छोड़ा जायेगा तब तक कल्याण असम्भव है। विषय चित्त को खींचते हैं। चित्त विषयों की ओर ऐसे दौड़ता है जैसे लोहा चुम्बक की तरफ़ खिचता है। उनका संस्कार बैठ गया है। अगर उनको रोका न जाये और ढीला छोड़ दिया जाये तो सारे संसार का अन्न, धन और स्त्रियाँ एक पुरुष को भी तृप्त न कर सकेंगी, अन्तःकरण पाप कर्मों से मैला और पुण्य कर्मों से निर्मल होता है, परन्तु पुण्य पाप आत्मा को लगते नहीं। चाहे कितने दिनों से भी लगे हों परन्तु आत्मा का रूप नहीं बनता। उपाधि रूप से रहते हैं और उपाधि जब यत्न करो मिट सकती है। चित्त रूपी स्फ़टिक मणि के सामने विषय रक्खे हैं उनका प्रति बिम्ब पड़ रहा है। विषय हटा कर भगवान् को रख देने से भगवत् रूप दीखने लगेगा। भगवत् रूप को भी हटा दो, क्योंकि यह भी किसी स्थान पर उपाधि ही है तो रूप निर्मल हो जायेगा। सिर्फ़ बाहर की तरफ से विषयों से आँख कान बन्द करने से काम नहीं चलेगा वे अन्दर चित्त में चक्कर काटते हैं। इच्छा, वासना, सत्, रज, तम और बाहर की क्रिया बन्द करोगे तो अन्दर काम होगा और अन्य पुरुष यानि 'तुम' और 'वह' बहुवचन में भी आते हैं लेकिन उत्तम पुरुष यानि 'मैं' एक वचन में ही बोला जाता है। यह 'मैं' सारे संसार का एक है।

पञ्चमहाभूत ढाँचे को बनाते हैं, इन्द्रियाँ शब्दादिक का ज्ञान बाहर से ले जाकर अन्दर देती हैं। अन्तःकरण बाहर से आये हुये ज्ञान को मनन चिन्तन और निश्चय द्वारा सुरक्षित रखता है। आत्मा सिर्फ़ साक्षी है। ढाचे के बनने या बिगड़ने से उसको कोई सरोकार नहीं। बाह्य ज्ञान हो या न हो इससे आत्मा को कोई मतलब नहीं। जैसे दीपक की रोशनी और मणि के प्रकाश में कोई चोरी करे या जूआ खेले या भजन करे प्रकाश न तो किसी को रोकता है न ही उसमें प्रवृत्ति करता है। इन्द्रियों के गुण आत्मा के साक्षी-पन को दबा कर जीव से जबरदस्ती काम कराते हैं। जब मनुष्य यह कहता

है कि यह शरीर मेरा है, यह घर मेरा है, तब "मैं" शरीर है। जब वह कहता है कि मैं इस पदार्थ को जानता हूँ तब मैं अन्तःकरण है। जब कहता है मैं सुखी या दुखी हूँ तब मैं जीव रूप है। जब सब अपने को "मैं" कहते हैं तब शरीर अन्तःकरण और जीव रूप से सब में एकता हो गई। जैसे शरीर में सोचने की शक्ति नहीं वैसे ही अन्तःकरण दुख-सुख का अनुभव नहीं कर सकता। यह अनुभव जीव करता है अर्थात् देह, इन्द्रियाँ, अन्तःकरण, जीव सभी आत्मा रूप हैं। अलैहदगी, ममता और अहङ्कार से होती है।

ज्ञानी अज्ञानी के काम समान हैं। अज्ञानी की दृष्टी ऐसी है जैसे चोर पराये धन को देखता है और ज्ञानी की दृष्टि ऐसी है जैसे साहूकार धन को देखते हैं। इस आत्म निदिध्यासन में जल्दी का काम नहीं है। स्वप्न में करोड़ों जन्मों के संस्कार जो जीव में संचित हैं उनमें से बहुत से दिखलाई देते हैं। यह प्रत्यक्ष बात है कि जो चीज़ इस जन्म में देखी और सुनी भी नहीं है उसका स्वप्न में दर्शन हो जाता है। अगर मनुष्य के कर्म सबके सब क्षीण हो गये होते तो उसको देह मिलती ही नहीं। इस देह के मिलने से ही यह सिद्ध होता है कि मनुष्य के कर्म बाकी हैं। इसी तरह से न मलूम कितने जन्मों से बराबर चले आ रहे हैं। बल्कि इन ब्रह्माजी की सृष्टि से भी पहले के जन्म के संस्कारों से मिला था और इसी तरह से मौजूदा ब्रह्मा जी से पहिले भी जो ब्रह्मा जी थे उनकी सृष्टि के भी पहिले मौजूदा जीवों का होना साबित होता है।

मौलाना रूम साहब अपनी मसनवी में कहते हैं:—

"आदम न बूदे मन बूदम, मन आशिके दीरी न अम्।"

अर्थात् ब्रह्मा जी भी न थे और मैं था। भला इतने पुराने संस्कारों को मिटाने के लिये कितने परिश्रम की आवश्यकता है इसका अनुमान बुद्धिमान जन ही लगा सकते है।

ये शरीर के कर्म जीवात्मा से ऐसे मिल गये हैं जैसे दूध और पानी मिलने पर रूप में चाहे एक दिखलाई देते हैं मगर है अलैहदा। ज्ञान रूपी अग्नि का ताप देने से बिल्कुल अलग इस तरह से हो जायेंगे जिस तरह आग

के ताप से भाप बन कर पानी अलैहदा हो जाता है। यह जीव के विषयात्मक होने से मिल गये हैं और जीव से आत्ममय होने से अलग हो जायेंगे। कर्म, उपासना और ज्ञान के जो उपाय वेद और शास्त्रों ने कहे हैं उनसे अन्तः -करण शुद्ध होकर ब्रह्म के जानने में समर्थ हो जाता है। पुत्र, धन, स्त्री के व्यवहारिक दृष्टि से ही दो रूप हैं वास्तविक दृष्टि से नहीं। यह सब हमारी अपनी आत्मा के लिए प्यारे हैं पदार्थों में सुख नहीं है, अपनी भावना में सुख है।

७०—एक मनुष्य ने अर्ज़ की कि दुनियाँ में दो प्रकार के मनुष्य देख पड़ते हैं। एक तो ऐसे हैं जो पाप को पाप समझते हैं और उसको करते ही नहीं, किसी कर्म वश या दैव संयोग से कोई पाप कर्म बन भी पड़े तो उसको बड़ा पश्चाताप होता है और उसको छिपा नहीं सकते सबसे प्रकट कर देते हैं। देवता और ऋषियों तक के इतिहास में पाप स्वीकार के बहुत से हालात हैं। साधारण मनुष्यों में भी ऐसे बहुत हैं कि अकेले में खून तक किया है, किसी ने देखा नहीं है, फिर भी पुलिस में जाकर आप खबर कर देते हैं। दूसरे ऐसे हैं कि उनके कूल्हों पर कोड़े मारो तब भी पाप को नहीं कबूलते। उनको पाप, पाप रूप से दीखता ही नहीं। भगवान तो सब घट में हैं फिर इतना अन्तर क्यों है?

श्री महाराज ने फ़रमाया यह अन्तर गुणों के कारण से है। तम में अन्धकार अज्ञान होता है उसकी वजह से अच्छे बुरे का निर्णय ही नहीं कर सकते, जैसे किसी के घर में भगवान की प्रतिमा विराजमान हो, लेकिन प्रकाश से ही दिखलाई देती है अन्धेरे में तो नहीं दीखती। इसी प्रकार भगवान सबके हृदय में विराजमान हैं मगर घोर तामसी जीव के घट में इतना अंधेरा होता है कि उसको भगवान का दर्शन नहीं होता। ऐसे ही इन्सान को कहते हैं कि इसका ज़मीर मर गया है। जैसे-जैसे अंधेरा दूर होकर हृदय में ज्ञान का प्रकाश होगा तो भगवान के दर्शन ज़रूर होंगे। उस वक्त वह धर्म अधर्म का भली प्रकार निर्णय कर सकेगा। मुमकिन है कि हज़रत मुहम्मद साहब का क़यामत से यही मनशा हो कि जब जीव दुनियाँ और आक़बत यानी इस लोक और परलोक के तजुर्बों से तमोगुण दूर हो जावेगा और भगवान सम्मुख होंगे

उस वक्त उसको अपने सब कर्म दीख पड़ेंगे। वह किसी कर्म से इन्कार भी नहीं कर सकेगा और उसके कर्म फल को भोगेगा।

७१—एक रोज़ सत्सङ्ग में सवाल उठा कि इस संसार में कौन मनुष्य धन्य है ? सबने अपने-अपने ख्याल के मुताबिक कहा, किसी ने गुणवान को धन्य बतलाया, किसी ने धनवान को और किसी ने बहु कुटुम्बी को धन्य कहा। एक सेवक ने अर्ज़ किया कि जो भगवान् का भक्त हो और स्वयं धर्म पर चले, औरों को धर्म पर चलने का उपदेश करे जो अपने पीछे धर्मात्मा सन्तान या धर्मात्मा चेला छोड़े।

७२—एक मनुष्य ने अर्ज़ किया कि संसार भर में उपदेशक भरे पड़े हैं जो जनता को ठीक मार्ग पर चलने का उपदेश करते हैं। राजा और राज अधिकारी भी सिरतोड़ कोशिश करते हैं कि राज्य और प्रजा ठीक प्रकार से चले, मगर इच्छानुसार फल की प्राप्ति नहीं होती।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि उपदेशक हो या राजा हो या राज्य अधिकारी हो या गृहस्थ का स्वामी हो, इन सबके लिये पहली ज़रूरी बात यह है कि उनको धर्म, राज्य, संसार और गृहस्थी का पूरा ज्ञान हो कि उनकी ठीक चाल क्या है। चलने को तो सब चलते ही हैं, राज्य भी चल रहे हैं, गृहस्थी भी चल रहे हैं, समाजों के काम भी चल रहे हैं, घड़ी भी चल रही है। लेकिन जैसे घड़ी की मिनट की सुई ३० मिनट चलती है तो घन्टा वाली सुई १० मिनट पर पहुँच जाती है, उसको ठीक चाल तो नहीं कहा जा सकता। ठीक चाल तो यह है कि सैकिण्ड की सुई ६० पद चले तब मिनट की सुई ५ पद बढ़े और मिनट की सुई १२ पद चले तब घन्टा की सुई एक पद आगे खिसके। इसलिये धर्म, समाज, राज्य काज और गृहस्थी किस प्रकार से ठीक चलती है पहले इसका ज्ञान होना चाहिये। जिसको इसका ज्ञान नहीं है वह ठीक कैसे चला सकता है। चलने को तो सब ही काम संसार भर में चल रहे हैं। समाज भी चल रहा है, राज्य भी चल रहे हैं, गृहस्थ भी चल रहे हैं। मगर अधिकतर ऐसे मनुष्यों के चलाये चल रहे हैं जिनको स्वयं ठीक और ग़लत का ज्ञान नहीं है। इसीलिये गति तो है मगर अगति और कुगति बन रहे हैं।

७३—एक मनुष्य ने सत्संग में कहा कि कानून बनाने में किस-किस बात का ख्याल रखना चाहिये। एक सेवक ने जवाब दिया कि कानून के कई भेद हैं (१) ईश्वरीय नियम जिसको कानून कुदरत कहते हैं जैसे—मनुष्य का पैदा होना, मरना, सूर्य चन्द्र का नियत समय पर निकलना, छिपना, घटना, बढ़ना, तत्त्वों का विकार, उनके आधीन अन्तःकरण इन्द्रिय, प्राण आदि का कर्म और गति। (२) महात्मा, ऋषि, नबी, रसूल, पैगम्बर, अवतार आदि कृत जैसे ज़बूर, तौरेत, अंजील, कुरान, पुराण, स्मृति आदि। (३) मनुष्य कृत, जो राजा महाराजा स्वयं या अपनी राज सभा की सम्मति से बनाते हैं और प्रचलित करते हैं जैसे—ताज़ीरात हिन्द। (४) समाज और सोसाइटियों के नियम (५) गृहस्थी और कुटुम्ब के रस्म और रिवाज आदि। ये सब कानून के अन्तर्गत हैं। इसमें सबसे पहला विचार इस बात का होना चाहिये कि चाहे वह रस्म रिवाज हो या ऋषि कृत हो उसमें ईश्वरीय नियम का विरोध न हो वरना वह चालू नहीं हो सकता अगर किसी रोज़ ज़बरदस्ती से चला भी दिया तो ठहराव नहीं हो सकता वह खत्म होकर ही रहेगा। मसलन नीचे से ऊपर तक चारों भेदों में से किसी भी कानून में यह रिवाज हुआ कि लड़की को पैदा होते ही खत्म कर दो, स्त्री और पुरुष बिवाह करके या बिना विवाह किये किसी भी तरह परस्पर संग न कर सकें, या नर बलि दी जाया करे, आदि कानून कुदरत के अनुसार नहीं हैं। ग़ौर करने से सब समझ सकते हैं कि ये काम नहीं हो सकते और जिनका करना लाज़िमी है वह करने ही पड़ेंगे, खुल्लमखुल्ला न हो तो छिपा चोरी होंगे मसलन स्त्री पुरुष का मेल, नर बलि कोई छिप कर भले ही दे दे, प्रकट में क़िसी सभ्य देश में यह नियम प्रचलित नहीं हो सकता। लिहाज़ा रस्म व रिवाज स्थापित करने में ऊपर के चारों भेदों में से किसी से विरोध न हो। इसी प्रकार नीचे से लगा कर ऊपर तक किसी भेद से अन्तर न हो तभी कानून ठीक हो सकता है। सबसे अच्छा कानून वह है जिसमें नीचे से लगा कर ऊपर तक और ऊपर से लगा कर नीचे तक किसी भी प्रकार का अन्तर किसी हद में न हो। राजा कोई कानून ऐसा न बनाये जो कानून क़ुदरत या ऋषिकृत कानून के ख़िलाफ हो, या समाज के नियम और रस्म रिवाज से टकरावे, या किसी के समाज

से पक्षपात हो तो मजबूरी से भले ही प्रजा ऐसे कानून को मान ले, लेकिन उसकी स्थिति ज़्यादा नहीं रह सकती, जैसे जज़िया का लिया जाना या किसी समाज पर दबाव, दूसरे पर लुभाव का होना । जहाँ मुसलमानी प्रजा अधिक हो या मुसलमानी दरवेश हों वहाँ अगर नमाज़ न पढ़ने या रोज़ा न रखने का कानून बनाया जाये तो उपद्रव खड़ा हो सकता है। कुछ ऋषिकृत स्मृति या रस्म व रिवाज ऐसे भी हैं जैसे—ख़तना और जोगियों में कान फाड़ना जो ईश्वरीय नियम से विरोध होने पर भी चालू हैं, इनमें किसी प्रकार का लाभ दीख पाया है या हानि से बचत मानली गई है, लेकिन यह देश, कालपात्र के आधीन हैं; सर्वदेशीय नहीं; सब जनता और समाज इनको नहीं मानतीं। यह भी मुमकिन है कि कुछ काल के पश्चात् इनमें परिवर्तन हो जाये या बिलकुल ही न मानी जायें, मसलन जो जोगी कान नहीं फड़वाते वे औघड़ कहलाते हैं। अफ्रीका में सुना गया है कि एक जङ्गली कौम में स्त्रियों का भी ख़तना होता है, अगर वह कौम बढ़ जाये या अधिकार पा जाये और फैल जाये तो शायद दूर देशों में भी यह नियम फैल जाये, जैसे इसलाम के बढ़ने से हिन्दुस्तान में पुरुषों का ख़तना होने लगा है । इसमें क्या बहतरी है उसी समाज के लोग ख़ूब समझते हैं और वह बहतरी सर्वदेश और सर्वकाल के लिये थी या न्यून काल के लिये और ख़ास देश और ख़ास पात्रों के लिये। इसमें नुकता-चीनी करने का दूसरी समाज को हक़ नहीं। ऋषि, समाज, प्रजा और ख़ानदान के नियम, कानून, रस्म व रिवाज बदलते रहते हैं लेकिन ईश्वरीय नियम नहीं बदलता मनुष्य इसमें परिवर्तन भले ही कर दे । कानून बनाने के लिये बड़े तजुर्बे और ज्ञान की ज़रूरत है । नातजुर्बेकार मनुष्यों के बनाये कानून में निकलते ही उपक्रमणिका और शुद्धि-पत्र निकलने लगते हैं। सब से अच्छा राजनीतिक कानून वह हो सकता है जिसको जनता स्वयं बनावे । उसमें देश, काल, पात्र का पूरा लिहाज़ हो जायेगा और राजा उसको चलाये। यही हाल राज विधान का होना चाहिये कि जनता बनावे और राजा उसको चलावे ।

७४—एक व्यक्ति ने अर्ज़ की कि इस संसार को कोई झूठा कहता है कोई सच्चा बतलाता है कोई स्वप्नवत् समझता है, तीनों बातें तो सच हो नहीं सकती । दर असल यह है क्या ?

श्रीमहाराज ने फ़रमाया कि कलियुग में संसारी बुद्धि बहुत बढ़ गई है परमार्थिक और आध्यात्मिक बुद्धि बहुत ही घट गई है। इसलिये समय के फेर से या ईश्वरीय इच्छा से जो बातें समझ से बाहर देख पड़ती हैं उनके समझने के लिये कुछ प्रत्यक्ष क्रिया ऐसी हो रही हैं, जिनसे वह सूक्ष्म भेद स्थूल रूपसे समझ में आसके। हमने तो देखा नहीं है मगर सुनते हैं कि सिनेमा ऐसा खेल चला है, जिसमें हाथी घोड़े, ऊंट खच्चर सभी प्रत्यक्ष क्रिया करते दिखलाई देते हैं, युद्ध होता है सिपाही कटते मरते दिखलाई देते हैं, गोया पदार्थ है तो नहीं, वहाँ हाथी न शेर, परन्तु असल सा दीख पड़ता है। यही गति इस संसार की है। सिनेमा में कुछ घटनायें तो ऐसी हैं जो पहले हो चुकी हैं उनको स्मृति रूप कहना चाहिये। कुछ ऐसी हैं जो संकल्प से रच ली हैं और तमाशे के तौर पर दिखलाये जाते हैं, यही संसार की संकल्प गति है। स्वप्न को तो सब जानते हैं, अभी हाथी जा रहा है, अभी घोड़ा निकल रहा है, कोई मर रहा है, कोई हँस रहा है, कोई रो रहा है गोया कुछ संसार स्मृतिरूप, कुछ संकल्परूप, कुछ स्वप्नरूप है, देखने भर की असलियत है। जो पदार्थ दीखते हैं वह असल नहीं।

यह जहान है अजब तमाशगाह। हर तमाशा, यहाँ नया देखा॥

७५—एक व्यक्ति ने अर्ज़ की कि आप मुशकिल से छटांक भर भोजन करते हैं, इसके लिये ही बाज़ गृहस्थी आपको अपने घर ले जाते हैं, और आप पैदल चलकर वहाँ जाते हैं इन लोगों को इतना नहीं सूजता ज़रा सा भोजन देकर माहात्माओं को इतना कष्ट देते हैं, आप किसी के घर भोजन के लिये न पधारें जिसको लाना होगा यहीं ले आयेगा। जब हरएक पदार्थ यहाँ ही आ जाता है तो फिर आप वहाँ जायें भी क्यों ?

श्री महाराज ने फरमाया कि रोज़ी तो भगवान ने सबकी नियत कर ही दी है लेकिन जहाँ अन्नजल रखा है वहाँ जाने में हानि भी क्या ? दूसरी बात यह है कि आने जाने में श्रद्धा और भक्ति का भी तो प्रश्न है—भगवान भी श्रद्धालु भक्त की इच्छा पूरी करते हैं तो क्या साधू को इतना अभिमान करना चाहिये कि किसी के घर वह न जायें बल्कि इस अभिमान और अंहकार को चूरन करने के लिये ही मधूकरी व्रत और भिक्षा रखी है अगर थोड़े भोजन की जगह ज़्यादा भोजन किया जाये

तो गृहस्थी मना तो नहीं करते वे तो बड़े आग्रह और प्रेम से यह चाहते हैं कि जितना ज़्यादा खायें उतना ही उनका दिल खुश होता है। गृहस्थियों को कभी घृणा और छोटी नज़र से नहीं देखना चाहिये गृहस्थी ही बाकी तीन आश्रमों का निर्वाह करते हैं। पाठशाला, मखतब, धर्मशाला, औषधाल्य, आदि सब इन्हीं के धन से चल रहे हैं। सरकार भी इन्हीं से कर लेकर राजपाट के सब काम और रक्षा का प्रबन्ध करती है तो गृहस्थी अतिथि ब्रह्मचारी, बानप्रस्थ, साधु सन्यासी, अपाहज, मोहताज, दुखी, रोगी, अनाथ, विधवा, अन्धे, लंगड़े-लूले, बूढ़े, गरीब की खबरगीरी करता है और उनकी ज़रुरतें पूरी करता है। उसको ऐसे समझो जैसे छत्ते में शहद, घर में कामधेनु, आंगन में कल्पवृक्ष, अमृत से भरा कुण्ड, मरुस्थल में हरा बाग और खेत में अन्न, फलों से लदे पौधों और वृक्षों के समान है, इसका तिरस्कार कभी नहीं करना चाहिये। बहुत से मनुष्य तो गृहस्थ धर्म की जिम्मेवारियों का चिन्तन करके ही भयभीत हो जाते हैं और कान फटा, मूंड मुंडा और जटा बढ़ाकर बनो और जगलों में जा छिपते हैं। गृहस्थी ही मर्द होकर मैदान में डटे रहते हैं और सब बाधाओं का मुकाबला करते हैं। बच्चों को पालना, पढ़ाना-लिखाना, रोग में इनकी सेवा करना और जितने कष्ट उपस्तिथ हों सबको झेलना, फिर भी धन बचाकर अन्य आश्रमों का पालन करते हैं और कुछ समय निकाल कर सत्संग में भी लगाते हैं।

> ज़ोरे गुलचीं इश्केगुल, खोफे खिज़ां इज़ाऐख़ार-
> लाख-आफत में फंसी हैं, एक जाने अनन्दलीप।

बुलबुल की जान पर लाख आपत्तियाँ,जैसे माली का अत्याचार, फलों से प्रेम, खुश्क मौसम का डर और काँटे चुभने का कष्ट उसे उठाना पड़ता है।

७६–एक सत्संगी ने प्रार्थना की कि राजा, बादशाह भी अन्य मनुष्यों के समान होते हैं उनको इतना बड़ा और आदरणीय क्यों माना जाये।

श्री महाराज ने फरमाया की श्रीमद्भागवद्गीता में स्पष्ट लिखा है कि नरों में मुझको राजा समझो इसके अतिरिक्त और भी कई शास्त्रों में राजा की महिमा का वर्णन है। एक शास्त्र में लिखा है कि राजा छः देवताओं को स्पष्टन

करता है—यम, सूर्य, चन्द्रमा, मंगल विश्ववरन और अग्नि (१) यम, पाप पुण्य का लेखा लेते हैं इसी प्रकार राजा भी करता है। (२) सूर्य जगत को प्रकाशित करता है, सुखाता है और फुलाता है। राजा भी अच्छों को खुश करता है पापियों को त्रास देता है। (३) चन्द्रमा तारागणों से घिरा हुआ सब को शीतलता देता है। राजा अपने मुसाहिबों से घिरा हुआ प्रजा को शान्ति प्रदान करता है। (४) मंगल कृषि और युद्ध का देवता है। इसी प्रकार राजा कृषि की उन्नति करता है और युद्ध में बैरी को जीतता है। (५) विश्ववरन मित्रों को धन देता है बैरियों से छीन लेता है और उनको दुर्भाग्य देता है। इसी प्रकार राजा भी मित्रों और शत्रुओं से व्यवहार करता है। (६) अग्नि सब को दाह करती है, राजा का क्रोध भी भस्म करता है।

७७—एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि न्याय तो न्याय ही होता है एक ही जुर्म में तीन बातें कैसे होती हैं, किसी दोषी को फाँसी की सज़ा हुई। हाई कोर्ट की अपील में पाँच साल की सज़ा रह गई प्रीविकौनसिल में बिल्कुल बरी हो जाता है—

श्री महाराज ने फरमाया के मुआमलात को तीन दृष्टि से देखा जाता है वाकेआत, वजूहात, वाजिबात। (१) वाकेआत यह हुए के किसी स्त्री ने एक आदमी को मार डाला इस लिहाज़ से कानून की रूह से मारने वाले को फाँसी की सज़ा का हुक्म हुआ। (२) वजूहात में लड़ाई का कारण देखा जाता है जिसको बिनाय मुखासमत या लड़ाई की बिना कहते हैं इस पर बिचार करने से मालूम हुआ कि मारने वाले को गाली दी गई थी उस पर उसको क्रोध आ गया और उसने मार दिया वह फाँसी की सज़ा हटा करके दस साल का जेलखाना रह गया। (३) वाजिबात, प्रिविकौन्सिल के सामने यह पेश किया गया कि मारने वाली स्त्री को गाली ही नहीं दी गई बल्कि उसकी इज़्ज़त पर भी हमला किया गया, ऐसी हालत में इज्ज़त बचाने के लिये तेज़ हथियार से काम लेना वाजिब बात थी। लिहाज़ा वह बिलकुल बरी हो गई जो न्याय इन तीनों पर एक साथ विचार करके किया जाता है उसमें रद्दो बदल की गुञ्जायश नहीं रहती।

७८—एक सत्संगी ने पूछा कि बाजे आदमी स्त्री का ज़िकर सुन कर

ही बहक जाते हैं, बाजे उसको देख कर फिसलते हैं, बाजे उससे बात-चीत करके गिरते हैं, बाज़े ऐसे भी होते हैं जो हर हालत में सावधान रहते हैं इसका क्या कारण है।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि सत-रज-तम तीन गुण इसका कारण हैं। तामसी मनुष्य को तो स्त्री का ध्यान ही चलायमान कर देता है। राजसी इससे मतवाला हो जाता है। सात्विकी उसके प्रेम वचन और सेवा टहल से विचलित हो जाता है। शुद्ध सत्वगुणी पर इन तीनों में से कोई जादू असर नहीं करता, वह सबको अपना ही रूप समझता है। फिर मोहित हो तो किस पर हो, वैर-प्रीति करे तो किससे करे।

७९— एक व्यक्ति ने अर्ज़ किया कि मौहम्मद साहब के पास जिबराईल आते थे, हज़रत मूसा से ख़ुदा बात करते थे, हज़रत ईसा मसीह ख़ुदा के बेटे थे, इन तीनों में किसका दरजा बड़ा है?

श्री महाराज ने फ़रमाया कि हम तो सबको बुजुर्ग मानते हैं उनके दरजे की निरख-परख करना हमारा काम नहीं। रही ख़ुदा से बात करने की, सो भक्तमाल में बीसों मिसाल ऐसी हैं जिनमें भगवान भक्तों से बात करते थे उनके साथ खेलते और हास-बिलास करते थे। मीराबाई, रसखान यहाँ तक कि कन्हैय्या मेहतर तक से कहा कि गोसांई जी से कहना कि परदे की दीवार गिरवादें और बात-चीत ही नहीं बल्कि अपने भक्तों की सेवा भी करते थे। आगरा में काज़ीपाड़ा में श्री श्यामजी का मन्दिर है उसके पुजारी के आगे मशाल लेकर मन्दिर से जमुना जी तक गये और आये। भक्त अहमद शाह हुए हैं, वे ढाक के पेड़ के नीचे ही बैठे तपस्या करते थे उनसे त्रिलोकी नाथ मूंह दर मूंह बात करते थे। एक दफ़ा भगवान ने उनसे कहा कि तुम अपना टोपा बेचो तो हम खरीद लें। अहमद शाह ने कहा टोपा बड़ा कीमती है आपके पास है ही क्या जो इसका मोल दोगे। आप त्रिलोकी के नाथ हो हमको त्रिलोकी तृण के समान मालूम होती है। फिर उनसे भगवान ने कहा कि चलो तुमको वैकुण्ठ में ले चलें तो वह बोले कि यह ढाक का वृक्ष ही वैकुण्ठ के कल्प वृक्ष के समान है जहाँ तुम हो वहीं वैकुण्ठ है। इससे यह भी प्रकट है कि भगवान त्रिलोकी नाथ इनको दर्शन देते थे। इस्लाम में भी सात

आसमान माने हैं। सनातन धर्म में भी सात लोक हैं तो तीन लोक से ऊपर चौथे, पाँचवें, छठे, सातवें लोक के भी स्वामी होंगे या ऊपर के चारों लोक का एक ही स्वामी होगा इससे साबित होता है कि कोई परमात्मा ऐसा भी है जिसने यह सात लोक बनाये और उनके स्वामी स्थापित किये। अब आप ग़ौर कीजिये कि हज़रत मूसा से कौन से ख़ुदा बात करते थे। इसलिये ऐसे सवाल उठाना मुनासिब नहीं। अपने काम में लगे रहो और फ़र्ज़ समझकर किये जाओ। जो कुछ है वह प्रगट हो जायेगा। कहने सुनने की गुञ्जाइश नहीं।

८०--एक सत्सङ्गी ने प्रार्थना की कि आजकल दिन दहाड़े खुल्लम-खुल्ला लोग कुकर्म करते हैं उनको शर्म भी नहीं आती।

श्रीमहाराज मुसकराये और फ़रमाया कि जिसकी आँखें खुली होती हैं उसको शर्म आती है आँखें बन्द हों या उन पर कुछ भरा हो तो यह पता ही नहीं चलता कि वह मनुष्य बुरे काम कर रहा है। जब देखता ही नहीं तो बुराई-भलाई का निर्णय कैसे करे। पहले जो कोई खोटा काम करता था और बराबर करता चला जाता था तो कहते थे कि इसने तो आँख पर ठींकरी धर ली है। आजकल आप देख लें कि कितनों की आँखों पर ठीकरी धरी है और ठीकरी तो मिट्टी के बरतन की होती है आजकल तो आँखों पर पत्थर धर लेते हैं। कोई बूढ़ा-ठेरा हो तो भी हर्ज़ नहीं। बच्चा, लड़के, जवान, स्त्री, पुरुष सब ही ने आँखें बन्द कर लेना बहुत ही अच्छा समझ रखा है—ज़रूरत तो है सो है, अब तो शौक हो गया है।

८१—एक व्यक्ति ने अर्ज़ किया कि आजकल कैसे २ यंत्र चले हैं कि जिनसे रोगों का निदान और इलाज किया जाता है। कैसे २ कला कौशल, हवाई जहाज, रेल, पानी के जहाज बने हैं जो लाखों मन बोझा एक स्थान से दूसरे स्थान को ढोकर ले जाते हैं इस कलियुग में बड़ी उन्नति हुई है।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि आपका ख़याल है कि और युगों में न इलाज होता था, न कोई वायुयान थे, न बोझा उठाने के साधन थे। त्रेता युग में पुष्पक विमान और भी बहुत से विमान रावण के यहाँ थे। हनुमान जी पूरा पहाड़ हाथों पर ही उठाकर ले गये थे। लक्ष्मण जी की शक्ति का इलाज औषधि से ही हो गया था। समुद्र को बिना जहाज पार किया था। मंत्र शक्ति

से बाण चलाकर लाखों मनुष्य एकदम से मारे जाते थे। भेद यह है कि किसी युग में सब काम मंत्र द्वारा होते थे, किसी युग में तंत्र द्वारा, इस युग में यंत्र द्वारा हो रहे हैं।

८२—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि कुत्ता भोंकता है, गधा रेंकता है, कव्वा काँय २ करता है, चिड़िया चिड़चिड़ाती है, शेर दहाड़ता है। गोया हर पशु-पक्षी एक ही प्रकार की बोली बोलता है। अपनी वाणी बदलते नहीं। मनुष्य ही ऐसा है जो अपनी वाणी बदल देता है कभीकुछ कहता है कभी कुछ कहता है। कारण यह है कि हर एक इन्सान चौरासी लाख योनियों में से गुज़र चुका है सब योनियों का इसको तज़ुर्बा है, सब के संस्कार इसमें वर्तमान हैं, जिस योनी में उसको अधिक मोह रहता है या जिस योनी के संस्कार अधिक होते हैं वह मनुष्य होते हुए भी उसमें रहते हैं और समय-समय पर प्रकट भी होते हैं वह गधे की सी बेहूदा हरकतें करता है, शेर की तरह बहादरी भी दिखलाता है, कुत्ते की तरह वफादारी दिखलाता है, कबूतर और चिड़ियों की तरह मस्ती जतलाता है सब प्रकार के पशु, पक्षी की बोली भी बोल सकता है जैसी उसकी गति होती है वैसा ही उसको सब समझते भी हैं। यह इन्सान गधा है, यह शेर बहादुर है, यह मैमने की तरह भोला है, यह कबूतर की तरह जिसका दाना चुगता है उसके हाथ पर बैठ जाता है, इसके अतिरिक्त यह जो कुछ भी बनना चाहे वही बन सकता है। पूर्ण मनुष्य वही है जो मनुष्यता प्रकट करे, जो बात कहे उस पर कायम रहे और भी जो मनुष्य के गुण हैं वे भी उसके जीवन में पूर्ण रूप से दिखलाई दें। जब यह मानता है कि 'ततत्वमसि' तो ईश्वरीय गुण भी यह अपने में प्रकट कर सकता है और स्वयं ईश्वरीय भाव को प्राप्त हो सकता है।

८३—एक मनुष्य ने अर्ज़ किया कि जितने योगेश्वर और वेदान्ती हुए हैं वे सब प्रतिमा पूजन के विरोधी हैं आप योग मार्ग का उपदेश करते हुए भी प्रतिमा पूजन का विरोध नहीं करते बल्कि अकसर लोगों को श्रीकृष्ण भगवान् और श्री रामचन्द्र जी या जिस पर जिसकी श्रद्धा हो उसका ही ध्यान बतलाते हैं—

श्री महाराज ने फरमाया कि बाबा नानक जी, श्री कबीर जी, श्री दयानन्द सरस्वती जी व हज़रत मोहमद साहिब और भी बहुत से महात्माओं

ने मूर्त्ति पूजन का विरोध किया मगर अब उन सब की मूर्त्ति और तसवीरें और स्तेमाल की चीजें पुस्तक और समाधियाँ पूजी जाती हैं। पूजन के यह मायने कि यह परमात्मा है नहीं लेने चाहिये बल्कि मूर्त्ति पूजा उस मनुष्य की याद कायम रखने के लिये है। श्रद्धा से उसका चित्र आदि रखने से उसको देख कर श्रद्धा से महात्मा का स्मरण करना है—किसी का स्मरण मात्र करने से वह परमात्मा नहीं माना जा सकता है। जो कहते हैं कि निराकार की उपासना करनी चाहिए उनसे स्वाभाविक यह प्रश्न उठता है कि वह निराकार प्रभु क्या पदार्थ है इसका समाधान आज तक नहीं हुआ, वह भी नेति-नेति कहते हैं। सीधे-साधे मनुष्यों को साफ-सुथरे रास्ते से जिस पर आज से नहीं बल्कि बहुत समय पूर्व से मनुष्य चल रहे हैं, हटा कर ऐसी राह पर लगाना जिसका पता स्वयं बतलाने वाले को नहीं और साथ ही राह भी पथरीली चट्टान और काँटों के जङ्गल और घास-फूस से भरी है, कहाँ की बुद्धिमानी है? अप्राप्तविकट मार्ग का पता लगाना इने-गिने मनुष्यों का काम है, जनता सीधी राह को छोड़कर ऐसे ऊबड़-खाबड़ मार्ग से चलना कदापि पसन्द नहीं करती और देखा भी जाता है कि सुधारकों की बताई हुई राह चलते २ भी जनता कुछ समय पश्चात फिर अपने पुराने पथ पर आ जाती है; क्योंकि वह सुगम है और आँधी पानी से बचने को पथिकों को जगह २ आश्रम स्थान हैं और दूसरी आवश्यकताओं की पूर्ति का भी प्रबन्ध है। साधारण जनता सरलता का मार्ग ढूढती है, विकट निर्जन मार्ग को पसन्द नहीं करती। निराकार का ध्यान उस रास्ते पर कमर बाँध कर दृढ़ता से चलना व दुखों में सावधान रहना और मञ्जिल तक पहुँचना, बड़े हौंसले वाले का काम है।

८४—एक सख्श ने सवाल किया कि शास्त्रों में कुछ नियम ऋषिकृत या ईश्वर के बनाये हुये हैं और उनके उल्लंघन के नुकसान और उनके फायदे भी कहे। जो जैसा करेगा तैसा भरेगा फिर भक्त और ज्ञानी इससे कैसे बच जाते हैं। क्या भक्तों का इष्टदेव पक्षपाती नहीं है कि किसी को बचाता है और किसी को नहीं बचाता है फिर वह नियम अटल भी नहीं कहे जा सकते; क्योंकि टल जाते हैं।

श्री महाराज ने फरमाया कि किसी रास्ते में जल भरा है, आगे चल

सत्तासी

कर कीचड़ है, कुछ दूर चल कर एक लट्ठा गड़ा है, उससे कुछ दूर चलकर एक दीवार बनी है और रास्ता बन्द है। एक बच्चा अकेला बग़ैर किसी संरक्षक के रेहड़ू के सहारे उसी रास्ते पर चल रहा है। अब लाज़िमी बात है कि नियम के अनुसार उसके पैर पानी से भीगें और आगे चल कर कीचड़ में सने और फिर उसका रेहड़ू खम्भे से टकराये, और दीवार पर पहुँच कर उसकी गति बिल्कुल रुक जाये। उसी उम्र के दूसरे बच्चे के साथ उसका पिता संरक्षक है, जब बच्चा जल के पास पहुँचा पिता ने रेहड़ू समेत उसे उठाकर जल से आगे खड़ा कर दिया फिर बच्चा चलने लगा। जब कीचड़ सामने आई तो उसे भी उठाकर सूखी धरती पर छोड़ दिया, बच्चे के पैर नहीं सने और फिर चलने लगा जब खम्भे के पास पहुँचा तो ज़रा उसके रेहड़ू को मोड़ दिया, बच्चा चला जा रहा है और खम्भ से टकराया भी नहीं, जब दीवार तक पहुँच गया तो रेहड़ू को बिल्कुल पीछे की तरफ या किसी बगली में मोड़ दिया, बच्चा ज्यों का त्यों रेहड़ू चलाता जा रहा है। इस हालत में जो नियम था कि पानी में भीगना, कीचड़ में सनना, खम्भे से टकराना और दीवार से रुक जाना, इनमें से किसी नियम का उल्लंघन नहीं हुआ और न बच्चे की गति रुकी। इसी प्रकार भगवान और इष्टदेव और गुरु, अपने भक्तों और शिष्यों की रक्षा करते हैं और भक्त अपनी चाल पर चलते जा रहे हैं। जीवन की बाधाएँ उनको नहीं व्यापती या सूली का काँटा बन जाती हैं। ज्ञानवान जानते हैं कि इस रास्ते पर बिना विचारे चलने से यह बाधा उपस्थित होती है, वह अपने ज्ञान से उससे बचकर चलते हैं, पानी को फलाँग जाते हैं, कीचड़ को लाँघ जाते हैं, खम्भे को उलाँघ जाते हैं, दीवार सामने देखकर दूसरी तरफ मुड़ जाते हैं। इसमें न तो पक्षपात का कोई प्रश्न उठता है, न ईश्वरीय नियम का उल्लंघन होता है, साधारण मनुष्य जिनकी आँखों पर लोभ, मोह, मद, मत्सर, काम, क्रोध की पट्टी बँधी है वह कीचड़, पानी में गिरते पड़ते और टक्करें खाते हैं, या जो गुरु, शास्त्र, ईश्वर किसी को न माने और अन्धाधुन्ध मनमाने रास्ते पर बिना विचारे चलें, उनकी रक्षा कौन करे ? वह अपने कर्मों के जिम्मेवार हैं और फल भोगते हैं।

८५—एक व्यक्ति ने प्रार्थना की सब मज़हब वाले अपनी २ किताबों

को ईश्वर कृत मानते हैं, फिर उनके उसूलों में अन्तर क्यों है ? मज़हब दर-असल में क्या वस्तु है ?

श्री महाराज ने फ़रमाया कि यह तो कोई नहीं कहता कि परमात्मा या खुदा ने खुद किताबें लिखी हैं। यह ही मानते हैं कि सन्त महात्माओं का अनुभव है या प्रत्यक्ष रूप से किसी अपूर्व शक्ति ने इनको बतलाया है जिनको इलहाम और वली कहते हैं, श्री व्यास जी ने वेद रचे, गुरु अर्जुन देवजी ने गुरु ग्रन्थ साहब का संग्रह किया। मौलवी जैदबिन साहिब ने कुरान लिखा। मज़हब ईश्वर कृत कोई सनातन वस्तु नहीं। वह और वस्तु और नियमों की तरह मानव जीवन को एक ढर्रे पर चलाने के लिये कल्पित प्रमाण है। जैसे मनुष्य ने कल्पना की है उसी के अनुसार वह उत्तम, अति उत्तम और उत्तरोत्तर होता है समय के साथ बदलता जाता है अगर मज़हब के दो भाग कर लिये जावें तो बेहतर हो। एक तो सर्वदेशीय, सर्वकालीय और सर्वपात्री हो, दूसरा देश, काल, पात्र सम्बन्धी हो। इसमें एक आपत्ति उपस्थित होती है कि जहाँ कहीं भी कोई आदमी जाता है वह अपने मज़हबी उसूलों को साथ ले जाता है।

८६—एक व्यक्ति ने रामायण की यह चौपाई पढ़ी—

"नारी स्वभाव सत्य कवि कहईं। अवगुण आठ सदा उर रहईं॥
साहस अनृत चपलता माया। भय अविवेक अशौच अदाया॥"

और कहा कि देखिये तुलसीदास जी ने स्त्रियों को कितना बुरा समझा है। क्या आप भी ऐसा ही मानते हैं और तुलसीदास जी से आप सहमत हैं।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि तुलसीदास जी जैसे महात्मा से विरोध करने का और उनकी बात न मानने का कारण ही क्या हो सकता है जो कुछ उन्होंने कहा बिलकुल सत्य है इसीलिए उन्होंने साफ लिख दिया है कि यह वचन हमारा नहीं है बल्कि कवियों का है और कवियों की बात कभी प्रमाणित नहीं। जो कुछ उनको मिल जाये या मिलने की आशा हो तो राई को पर्वत बना दें और जो हित न हो तो पर्वत को धूरि कर दें। देखो "फिरदोसी" की गिनती बड़े कवियों में है उसने एक साधारण पहलवान को रुस्तम बना दिया और जब धन न मिला तो महमूद जैसे बड़े बादशाह की कैसे अनुचित शब्दों में हिजो (बुराई) लिख दी और उसकी तीन पीढ़ीयों का बखान कर डाला

बखानी

इसलिए तुलसीदास जी ने साफ लिख दिया है कि कवियों की बात कुछ प्रमाणित नहीं। दूसरी बात यह भी है कि यह बचन रावण का है किसी साधू महात्मा का नहीं है। यह दो बातें हम मानते हैं और अगर तुलसीदास जी यह कह देते के स्त्रियों की तरफ से हमारा भी ऐसा ही खयाल है तब तो आपको हम से पूछने का हक था।

८७—एक व्यक्ति ने अर्ज़ किया कि मैंने एक किताब में पढ़ा था कि खुदा ने ज़रूरत से संसार को उत्पन्न किया।

श्रीमहाराज ने फ़रमाया के हर मनुष्य का अपना-अपना ख़याल और निश्चय अलग-अलग होता है और वशिष्ठ जी का कथिन है के जैसा जिसका निश्चय होता है उसको वैसा ही भासने लगता है। एक मनुष्य अबदाल, अलिहुसैन अबू (एक महात्मा है) अबू से हज़ार साल पहले अफगान में पैदा हुए थे दस साल की आयु में रेखागणित लिखा, कानून, चिकित्सा, तत्त्व ज्ञान में पूर्ण योग्यता प्राप्त करली थी करीब तीन सौ किताबें लिखी थीं। एक विद्यावली लिखी थी वह सब किताबें ख़लीफा बग़दाद के हुकुम से जला दी गईं, उसका निश्चय था (मुसलमान मानते हैं खुदा की मरज़ी से संसार पैदा हुआ) के खुदा ने अपनी इच्छा या मरज़ी से संसार की उत्पत्ति नहीं की बल्कि आवश्यकता से संसार बना है मरज़ी के अर्थ इच्छा के हैं और परमात्मा निर्इच्छित माना जाता है इसलिए सबसे पहले चाहे वह करोड़ों या संख्यों या बिला गिनती के समय के जब कभी भी संसार उत्पन्न हुआ हो उसको परमात्मा की मौज मानने से सब बाधा मिट जाती हैं। मौज में क्यों और किस कारण से और कब से और आवश्यकता आदि का कोई प्रश्न उठता ही नहीं है उसके बाद कर्म और उसके फल के अनुसार संसार का सिलसिला चल रहा है, जैसे वृक्ष से बीज, बीज से वृक्ष, फिर वृक्ष से बीज, फिर बीज से वृक्ष।

८८—एक व्यक्ति ने पूछा कि विद्यार्थियों को ठीक शिक्षा कैसी होनी चाहिए।

श्रीमहाराज ने फ़रमाया कि जो हो रही है उसी को ठीक शिक्षा समझो हमारे बताने और आपके जान लेने से तो शिक्षा प्रणाली नहीं बदली जा सकती है, इस काम के अधिकारी सब कुछ जानते हैं कि इस वर्तमान विद्या

का क्या लाभ जनता उठाती है, सिर्फ पेट भरने का ज़रिया अलबत्ता हो जाती है अगर वह न जानते हों और जानना चाहें तो विद्या सम्बन्धी शास्त्रों में सब कुछ लिखा है, उनसे ज्ञान प्राप्त करलें जब उनकी ही इच्छा नहीं तो ज़बरदस्ती तो किसी को उपदेश नहीं दिया जाता है, उसने फिर अर्ज़ किया कि मैं तो खुद इस बातको जानना चाहता हूँ तब श्रीमहाराज ने फरमाया कि शिक्षा भी जीवन क्रिया का एक अङ्ग है समस्त जीवन का आदर्श यह होना चाहिये कि तन धन, बानी मन बुद्धि और 'आत्मा' का उत्थान बढ़े और धर्म पूर्वक जीवन गुज़रे उस आदर्श को लेकर ही पहले शिक्षा दी जाये उसके पश्चात जीवन के और आश्रमों का काम किया जाये। पहला ब्रह्मचर्य आश्रम है जिसमें ब्रह्मचर्य ठीक रहना चाहिये वरना स्वास्थ ठीक नहीं रह सकता आज कल के विद्यार्थियों को देख लो कि बारह तेरह वर्ष की आयु से ही आँखों पर ठीकरी धरनी पड़ती है। पढ़ाई खतम होने तक कागज के सुन्दर पटेबाज़ बन जाते हैं। कपड़े उतार कर देखो तो शरीर की कुल हड्डियों की गिनतीं हो सकती है और नस नाड़ियों के सब जाल का चित्र उतर सकता है। पढ़ लिखकर नौकरी या धन्धा शुरू किया तो बेईमानी ठगी, रिशवत, स्वार्थ के सिवाय दूसरा काम नहीं ऐसी अवस्था में मन बुद्धि कैसे ठीक रह सकती है और आत्म उन्नती का तो ज़िक्र ही क्या है। किताबों द्वारा और भाषण देकर स्वास्थ्य ठीक रखने की शिक्षा बचपन से ही देनी चाहिए और बिलफर्ज़ कोई खोटी लत लग जाये तो उसको जलदी से जलदी छुड़वाना चाहिए। भाषा, ज्ञान, गणित इतिहास, भूगोल व्याकरण आदि-आदि के साथ-साथ शिक्षा देनी चाहिए कि वह अपने साथियों से वाकफियत पैदा करें कि कौन कैसा है ताकि असभ्य से दूर रह सकें, बराबर वालों के सत्सँङ्ग से स्वयं विश्वासी बनें, शान्ती से चित्तरंजक मन बिहारक रोचक और प्रिय भाषी हों, अहंकार और घमण्ड का त्याग करें, दूसरों का हित करना उनको प्रसन्न करना, उनके साथ सभ्यता का बरताव करना, निस्वार्थ सेवा करना, मित्रता, ईमानदारी और साहसी का महातम अच्छी तरह से जहननशीं करा देना चाहिए ताकि वह अपने जीवन में उनसे काम ले सकें, झट आज्ञा पालन की वृत्ति बन जाये ताकि इस कान से सुनकर उस कान से उड़ा देने वाली आदत

न पड़ने पावे, और टालमटोल न बनने पावे। धन को ईमानदारी से उपार्जन करें और निस्वार्थ भाव से जनता के काम में लगा सकें। यह न हो कि खल खाओ, कम्बल ओढ़ो और द्रव्य जोड़ते और बेटी के विवाह में जमाई को सौंप दो या गाड़ कर धर जाओ और मर जाओ। उसके पश्चात् अध्यात्म विद्या की बारी है वह भी पहले तो गुरु द्वारा गुरुकुल और ऋषी कुल में दे दी जाती थी अब मदरसों में इसका प्रबन्ध न हो सके तो साधू महात्मा इस काम को करें।

८९—एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि अमीरी अच्छी है या गरीबी।

श्रीमहाराज ने फ़रमाया कि अमीरी की चाहना तो दुनियाँ भर करती है फिर उसके मुकाबले में गरीबी कैसे अच्छी हो सकती है। लेकिन संतोषी गरीब धन की तृष्णा वाले अमीर से अच्छा होता है। यत्न यह होना चाहिए कि ईमानदारी से अमीर बने, धर्म से धन उपार्जन करे अगर धन उपार्जन के साधनों से अन्तःकरण मलीन हो गया तो समझ लेना चाहिए कि सर्वस्व नाश हो गया। दूसरी बात यह है कि धन उपार्जन के साधन ऐसे न हों जिनके कारण से स्वास्थ्य बिगड़ जाये, क्योंकि सुन्दर स्वास्थ्य धन से नहीं खरीदा जा सकता। यह भी विचार रखना चाहिए कि बहुत धन न जुड़ने पाये। बहुत धन के साथ बहुत आपदा लगी रहती हैं—

पानी बढ़ा नाव में, घर में बाढ़े दाम।
दोनो हाथ उलीचिये, सही सयाना काम॥

अधिक धन अक्सर लोक परलोक तक को बिगाड़ देता है ऐसी योग्यता प्राप्त करनी चाहिए के धन को प्रफुल्लता विनीत भाव और कृतज्ञता से ख़र्च कर सके या पर उपकार के काम में लगाये वरना भोग व दान के न होने पर उसकी तीसरी गति नाश होती है। अमीर होना और अमीर रहना अच्छा है लेकिन अमीर मरना यानी धन छोड़ कर मरना ठीक नहीं।

९०—एक रोज इर्शाद हुआ कि संसार में अधिक आदमियों का विचार अपने सुख भोग के लिये धन उपार्जन का होता है। लेकिन ऐसे मनुष्य चाहें जितना धन जोड़ लें और अपना सब जीवन धन बटोरने में लगादें लेकिन सच्चे मायनों में वह धनाढ्य नहीं होंगे। यह अधम और मलीन लालसा और अभिलाषा है। अपने ही लिये धन जोड़ना रोग है बहुत

मनुष्य इस लिये धन जोड़ते हैं कि बहुत से काम बगैर धन के हो ही नहीं सकते। स्त्री बच्चों के लिये भोजन वस्त्र। बालकों की उच्चकोटि की शिक्षा, विदेश यात्रा के लिये धन आवश्यक है। इसलिये धन संग्रह करने वालों की निन्दा भी नहीं कर सकते। अलबत्ता यह निर्णय करना चाहिये के धन किस लिये जोड़ता है मनुष्य की परीक्षा उसके पेशे और व्योपार से नहीं करनी चाहिये बल्कि यह देखना चाहिये कि यह ईमानदार और व्यवहार का शुद्ध है, अपना कर्तव्य पालन करने में दृढ़ है। दूसरी बात यह है कि बड़े शहरों का जीवन ऐसा है कि उनको दिन भर तनमन लगा कर बड़े ध्यान से काम करना पड़ता है, पित्ता मारकर एक जगह बैठे रहना पड़ता है इस तरह से शरीर और मन ऐसा थक जाता है कि इसको उत्साहित करने के लिये कुछ मनोरंजन की ज़रूरत पड़ती है उसके लिये भी धन चाहिये लेकिन ये बातें देहात वालों के लिये विलास में शामिल नहीं हैं उनके लिये आवश्यक नहीं, इसलिये इन सब बातों को अच्छी तरह से विचार करके और हर एक की ज़रूरत के लिये गुञ्जायश रखकर उनके धन जोड़ने के विचार पर राय कायम करनी चाहिये।

९१—एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि बहुत से महात्माओं और अवतारों के चित्र में उनके चेहरे के चारों तरफ़ एक घेरा सा बना रहता है जिसमें से रोशनी की किरनें और धारें सी निकलती हुई दिखलाई देती हैं यह क्या वस्तु है।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि हर मनुष्य के स्थूल शरीर के चारों तरफ सिर से पैर तक लगा कर एक अण्डाकार घेरासा बना रहता है वह सूक्ष्म शरीरों का वह भाग जिसके अन्दर उसके छेओं, बल्कि सातों शरीरों के रूप और रंग अलग-अलग होते हैं कर्म और मनोवृती बौद्धिक और आत्म उन्नती के लिहाज से जैसी उसकी स्थिती और नीच ऊँच वृती होती है उसके चित्र बने रहते हैं, वह हर एक को नहीं दिखलाई देते, लेकिन यत्न और अभ्यास से जिसकी वृत्ती ऊँचे दर्जे पर पहुँच जाती है उसको वह अण्डाकार शरीर और उसके अन्दर के रङ्ग और रूप दिखलाई देने लगते हैं जिनको देखकर मनुष्य की भीतर से भीतर छिपी हुई काम, क्रोध, लोभ, मोह की हालत, मनोवृती बौद्धिक और आत्मिक उन्नती को जान सकता है। स्थूल शरीर को देखकर

मनुष्य की वृत्ती का विलकुल ठीक पता नहीं चल सकता। धोखा भी हो जाता है लेकिन इस अण्डाकार शरीर और उसके अन्दर के रूप और रंग को देखकर कोई बात छिपी नहीं रह सकती। जिनके कर्म और विचार अच्छे नहीं होते उनका यह अण्डाकार शरीर छोटा और मैला होता है और रंग एक में दूसरे मिले होते हैं। और जिनके शुभ कर्म और सुन्दर विचार होते हैं काम, क्रोध, लोभ मोह कम होते हैं या बिल्कुल निवारण हो जाते हैं उनका "औरा" बहुत फैला हुआ, प्रकाशमान अलग-अलग रङ्ग और रूप में सुन्दर जलाल से भरा हुआ होता है। महात्मा और अवतारों के शरीर से जो शुद्ध धारें ज़ोर के साथ निकलती हैं उसकी अधिक मात्रा का उनके चेहरे के चारों तरफ घेरा बन जाता है उसको तेजस और "औरा" कहते हैं। उनके शरीर से ज़ोर के साथ जो शुद्ध धारें निकलती हैं वे पास जाने और बैठने वालों को प्रभावित करती है। महात्माओं के दर्शन करने और उनके पास बैठने से एक यह फल भी प्राप्त होता है।

९२—एक शख्स ने पूछा के भक्ती के कितने रस हैं।

श्रीमहाराज ने फ़रमाया के भक्त माल के शुरू में इनका पूरा वर्णन है। नौ रस माने हैं (१) शान्त, (२) दास्य, (३) सख्य, (४) वात्सल्य, (५) मधुर, (६) भय, (७) द्वेष, (८) मात्सर, (९) दम्भ, इनमें से पहले पांच अनुकूल माने हैं और पिछले चार प्रतिकूल भाव में। बैरी का ध्यान हर समय मनुष्य को बना रहता है इसलिये प्रतिकूल भावों से ईश्वर प्राप्ती शीघ्र होना माना गया है। मगर ये मुश्किल से सधते हैं, इनके लिए बड़ा हौंसला होना चाहिये।

९३—एक मनुष्य ने प्रश्न किया कि सुख क्या है।

श्रीमहाराज ने फ़रमाया के सुख के दो भाग हैं एक प्रवृत्ति सम्बन्धी दूसरा निवृत्ति सम्बन्धी। प्रवृत्ति का सुख यह है।

प्रथम सुख निरोगी काया, दूजा सुख होय घर माया।
तीजे सुख सुलक्षण नारी, चौथे सुख पुत्र अधिकारी॥

निवृत्ति का सुख बल्कि परम सुख, शमम परमं सुखम, मन का शान्त होना परम सुख है।

९४—एक व्यक्ति ने प्रार्थना कि आजकल लोगों की मति मारी गई है और मूढ़ विश्वास हो गया है भूत प्रेतों को मानते हैं भला इस बेवकूफी का भी कोई ठिकाना है।

श्रीमहाराज ने फ़रमाया कि भूत मानने वालों को बेवकूफ तो नहीं कहना चाहिये इतना तो उनका विश्वास है कि आत्मा अमर और अजर है मरता नहीं, दूसरी बात, यह है कि भूतों के किस्से कहानियाँ और वर्णन से साफ ज़ाहिर है कि जो मनुष्य जीवन भर खोटे कर्म करते हैं और जिनकी जीवन में बुरी वासनायें और कामनायें पूरी नहीं होती हैं जो कत्ल हो जाते हैं या अकाल मृत्यु से मरते हैं या माया जाल में फंसे रहते हैं और कुकर्म से नहीं बचते वे कुगति को प्राप्त होते हैं और भूत प्रेम बनते हैं। जिसने यह बात मानली और इस पर विश्वास कर लिया वह भूतों की गति को देख कर या उनके हालात सुनकर या पढ़कर अपने को ऐसी बातों से बचाने का यतन भी कर सकता है—आप तो अंग्रेजों की बात बहुत अच्छी जानते हैं विलायत में भी भूत प्रेत मानने वाले बहुत हैं जादू टोना भी मानते हैं वहाँ तो सन् १८६२ से भूतक्लब जारी है जिसमें बड़े-बड़े बुद्धिमान मेम्बर हैं जिन्होंने स्पष्ट रूप से मनवा दिया है कि भूत योनि है।

९५—एक व्यक्ति ने कहा कि यह संसार बड़ा विचित्र है जहाँ तक इसकी और इसके बनाने वाले की प्रशंसा की जाये कम है आप कुछ फरमाइये कि यह क्या भेद है।

श्रीमहाराज ने फरमाया के हर वस्तू विचित्र की प्रशंसा दो प्रकार से होती हैं (१) उसको खूब देखा भाला, खूब विचारा, खूब समझने की कोशिश की लेकिन उसकी महिमा न समझ सके तो कहते हैं कि क्या ही विचित्र वस्तु रची है कि किसी प्रकार इसका भेद समझ में ही नहीं आता। कैसी कैसी नाना प्रकार की चेष्टा और क्रिया हो रही हैं देखते हैं, सुनते हैं, भेद का पता नहीं चलता। तब कहना पड़ता है कि कारीगर ने हद ही कर दी। अपने आप सब कर्म होते चले जाते हैं इनके फल मिलते जाते हैं, इस प्रकार की प्रशन्सा तो आम तौर से सब ही करते चले आ रहे हैं। (२) श्रवण, मनन और निद्धियासन द्वारा जिस किसी की समझ में भेद आगया तो वह मुस्करा

देता है गोया दिल से उस वस्तु की प्रशंसा करता है ऐसी प्रशंसा करने वाले विरले ही होते हैं। जब किसी गोरखधन्धे का भेद किसी की समझ में आ जाता है या बाज़ीगर की बाज़ीगरी और लाग और हथकण्डों से वाकफियत हो जाती है तो बाज़ीगर इशारा करता है कि खामोश रहना यह भेद खोलकर तुम्हारे हाथ क्या आवेगा इस गोरखधन्धों से हमारा धन्धा चल रहा है और संसार का दिल बहल रहा है। ऐसा मनुष्य न फिर प्रशंसा करता है न निन्दा करता है, मौन हो जाता है।

९६—एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि दयावान और गुनवान में आप किसको बेहत्तर समझते हैं।

श्रीमहाराज ने फ़रमाया कि अपने-अपने स्थान पर सब ही अच्छे हैं किसी को धन की ज़रूरत हो तो गुणवान उसको पूरा नहीं कर सकता और जो गुण के ग्राहक हैं उनकी कामना धनवान से पूरी नहीं हो सकती। लेकिन हमारे विचार में कद्रदान इन सबसे बेहतर है। धन हुआ और चीज़ की क़द्र नहीं जानता है तो दस की चीज सौ में भी खरीद सकता है। और अधिकारी की जगह अनाधिकारी को भी धन दे सकता है। धन से फायदे की जगह नुकसान भी पहुँचा सकता है। इसी प्रकार गुणवान भी अपने गुण से अर्थ की जगह अनर्थ भी कर सकता है। दयावान दुष्ट पर भी दया कर सकता है। विद्यावान अनाधिकारी को भी विद्या दे सकता है लेकिन कदरदान जो हर चीज़ और मनुष्य की कदर जानता है उसके हाथ से जो काम होगा अच्छा ही होगा। वह हर बुरी भली वस्तु और मनुष्य की निरख परख कर सकेगा। छोटे बड़े सब के साथ यथा योग्य बरताव कर सकेगा।

९७—एक शख़्स ने अर्ज़ किया कि बचपन तो माता-पिता की देख रेख में कट जाता है, जवानी अपने बल बूते पर गुज़र जाती है बुढ़ापे में धन और औलाद का सहारा टटोलना पड़ता है। यह न हों तो मिट्टी पलीत होती है।

श्री महाराज ने फरमाया कि साधारण मनुष्य के लिये तो यही बात है अगर वह पाप की तरफ़ झुक जाता है तो धीरे-धीरे ये पदार्थ भी अविद्यमान हो जाते हैं मगर धर्मात्मा पुरुष कभी भी इनका सहारा नहीं टटोलता। इसका

धर्म ही उसको हर प्रकार का सुख चैन यथा-योग्य पहुँचाता है। धर्मात्मा साधुओं को देख लो धन, स्त्री, पुत्र किसी की भी ज़रूरत नहीं पड़ती और किसी अवस्था में उनका जीवन दुखमय नहीं होता। ख़िदमत और ख़ातिर सब ही होती रहती है। धन, स्त्रियाँ पुरुष पीछे-पीछे फिरते हैं। संसार के बड़े से बड़े मान्य पुरुष भी उनका आदर मान करते हैं इसलिये धर्ममय आचरण करने की कोशिश करनी चाहिये।

९८––एक रोज़ इर्शाद हुआ कि यजुर्वेद के तैत्रीय और सर्वमेध उपनिषदों में लिखा है कि राज सुधार, सभा सुधार, तीर्थ, यात्रा, मन्दिर, धर्मशाला बनवाना धन-दौलत संसारी भोग आदि कर्म-ज्ञान पथ के बाधक और विरोधी हैं। राज का धन और अंश स्वार्थ के काम में न लाना चाहिये।

९९––एक रोज़ इर्शाद हुआ कि अथर्ववेद के शुक्र उपनिषद् में लिखा है कि ज्ञानी जब मरे तो उसके लिये रोना नहीं चाहिये। उसका क्रिया-कर्म भी नहीं करवाना चाहिये। जो ज्ञान प्रगति में सब इन्द्रियाँ और मन को भस्म कर चुका, फिर दाह कर्म किसका।

१००––एक व्यक्ति ने कहा कि फलां सत्संगी को कितनी माकूल तनख्वाह मिलती है और कैसे घराने से है कुछ आमदनी निज की भी है और सत्संग के कामों और देने में उदार भी है इतना होने पर भी उसके तन पर ऐसा कपड़ा कभी न देखा जिस पर जोड़ न लगा हो देख कर घृणा सी आती है।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि हमने उनको कभी ऐसी गन्दी या मैली पोशाक में तो नहीं देखा जिससे घृणा हो, जोड़ लगे कपड़े से घृणा करना तो मुनासिब नहीं। इन्होंने अथर्वण वेद के परमहंस आदि उपनिषदों के अनुसार अपनी रहनी बना रखी है उनमें लिखा है कि भोजन ऐसा और इतना करे जिससे शरीर काम करने के योग्य बना रहे। एक वस्त्र पहने वह भी ऐसा हो जिसको लोगों ने नाकारा समझ कर त्याग दिया हो, उसको सीकर और जोड़ लगा कर पहनने योग्य बनाये ताके शरीर का परदा ढका रहे और मौसम के असर से बचता रहे। इस मंजिल को तै करने पर ऐसी अवस्था हो जाती है कि वस्त्र का ध्यान ही नहीं रहता सरदी गरमी असर ही नहीं करती।

१०१—एक मनुष्य ने अर्ज़ किया कि एक समय वह था जब प्रजा ढूँढ़-ढूँढ़ कर और खुशामद करके राजा बनाते थे और एक समय यह आ गया है कि बादशाह को गद्दी से उतार देते हैं तथा उनका नाम व निशान तक मिटा देते हैं इतना परिवर्तन क्यों आ गया है।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि दिन इरते फिरते बदलते रहते और परिवर्तन होते रहने को ही संसार कहते हैं। समय एक रूप में सदा नहीं रहता। राजा व प्रजा दोनों का ही आचरण बदल गया है और धार्मिक ग्रन्थों पर श्रद्धा घट या मिट गई है। वह गपोड़ा बन गये हैं। राजा में व्यावहारिक, सामाजिक, पैत्रिक, राजनीतिक और धार्मिक पद माने जाते हैं, व्यावहारिक में राजा विशुद्ध हो उसका चाल-चलन खरा और आदर्श योग्य हो यूहीं न हो। सामाजिक में वह किसी पार्टी, समाज या फिरका मज़हब का पक्षपाती न हो। आसपास के राजाओं से पैत्रिक मेल रक्खे वह प्रजा को पुत्र के समान रक्खे व पिता का सा प्यार करे, वचन का सच्चा हो, दयावान हो, कद्रदान हो, मनुष्य की कदर जानता हो, साहसी शूरवीर हो और धार्मिक में धर्मात्मा ईश्वर परायण और अनन्य भक्त हो ताकि यथा राजा तथा प्रजा के अनुसार उसकी प्रजा में भी ऐसे गुण हों, इस धार्मिक विचार से और गीता के अध्याय १० श्लोक २७ के अनुसार ही राजा को भगवान का स्वरूप या प्रतिनिधि मानते हैं। और उसकी सेवा शुश्रूषा करते हैं। अब वह धार्मिक विचार तो रहा नहीं केवल राजनीतिक पद रह गया है। उसमें भी उसको साधारण मनुष्यों की भाँति समझने हैं। जैसी जाकी भावना वैसों वाको राम-की गति प्रतिभास है। राजा के खान पान रहन सहन पर भी आक्षेप करते हैं। सब काम तो राज सभा करती है और कर रही है इन राजाओं और बादशाहों को बैठा कर खिलाने का खर्चा क्यों प्रजा के सर पड़ता है। लेकिन एक सर धरा होना ही चाहिये। उसके बगैर काम नहीं चलता इसलिये राजा को निकाल कर उसकी जगह प्रेसीडेन्ट आदि बना लेते हैं और मुखिया पद की रस्मात उसके ज़रिये होती रहती है। प्रजा का विचार है कि जब सब जीव समान हैं तो उनके अधिकार भी समान होने चाहिये। प्रजा अपने लिये जिसको योग्य समझे मुखिया बना ले और जब चाहे हटा दे जीवन का बढ़ा हुआ मैखाना High

standard of living सबके लिये हैं इसमें कुछ त्रुटिदृष्टिगोचर है। जिस मनुष्य को कुछ समय के लिये अधिकार मिलता है वह तन मन लगा कर काम नहीं कर सकता जब किसी अफसर का किसी दूसरे स्थान को तबादला हो जाता है तो उसके सर पर सफर सवार हो जाता है और जहाँ जाना है वहाँ की धुन लग जाती है। जहाँ से जाना है वहाँ के काम में दिलचस्पी मिट जाती है इसी प्रकार चार या पाँच साल के लिये मुखिया या प्रेसीडेन्ट बनने वाले मनुष्यों की हालत होती है वह जानते हैं कि चार या पाँच साल के बाद तो हटना ही है जैसा कुछ हो सका या नहीं हो सका किया। बाज़ अपनी झोली भरने की फिकर में लग जाते हैं दूसरी बात इनका रोब और दबाव है आज जो साधारण मनुष्य था और चार पाँच साल बाद फिर इसी ही गति को प्राप्त होता है उसका रोब राज्य सेवक और सभासदों पर क्या हो सकता है।

जब तक पद पर रहता है तभी तक की मानता है। बातों-बातों में कह भी देते हैं, अरे वही तो है। आस पास के राज्यों के लोभ में आकर वह राज्य में बाधक काम भी कर सकता है। प्रजा हर काम में अपने को समान मान ले तो वर्ण व्यवस्था कैसे रह सकती है और वर्णशंकर होने से वर्णशंकर औलाद पैदा होने से उनके काम भी वैसे ही होंगे। इंगलिस्तान वाले किसी मजबूरी से तलाक को मान रहे हैं लेकिन अच्छा नहीं समझते। बादशाह या उसकी बेटी का विवाह तलाक लिये हुए स्त्री या पुरुष से नहीं हो सकता। गोया राजा के चाल चलन और ठीक औलाद होने का भाव छिपा हुआ है। वहाँ राजा के सम्बन्ध में धार्मिक विचार भी हैं। राज पर अभिषेक के समय अगर राजा और बादशाह का पद मोरूसी मान लिया जाये तो उसमें बड़ी दृढ़ता होती है। राजा प्रजा और देश को सर्वदा के लिये (लाट या पादरी बादशाह को मुकुट पहनाता है तलबार दण्ड चक्र आदि सौंपता है, यह धार्मिक चिन्ह है। बादशाह बड़ी वेदी पर जाकर पूजन करता है) अपना समझ कर सब कार्यवाही करता है प्रजा के हित में हमेशा के लिये अपना हित समझता है। मोरूसी पद होने से चूहे के बच्चे बिल ही खोदते हैं। मसल के अनुसार उस कुल में, वैसे ही गुण वाले मनुष्य अक्सर पैदा होते हैं। युद्ध के समय या जब वैरी अपने देश में घुस ही आये उस वक्त राजा की ज़रूरत महसूस होती

है। सब प्रजा उसी के चारों तरफ घिर आती है और उसी का सहारा टटोलती है और राजा भी ऐसे संकट के समय देश और प्रजा को अपनी मोरूसी सम्पत्ति समझ कर जी जान से काम करता है । प्रेसीडैन्ट का विचार तो मल्लाह वाला होता है कि नाव डूबेगी तो जान माल नाव के मुसाफिरों का नुकसान होगा उसका तो लंगोट ही भीगेगा। इस विचार और उस विचार में कितना अन्तर है। कोई देश ऐसा नहीं है जिसमें विविध मत के लोग और नाना प्रकार की पार्टी वाले न हों । हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, जैनी, सिक्ख, आर्यसमाजी, सनातनी, सुन्नी, सिया, रोमन कैथेलिक, प्रोटैस्टैन्ट, पंजाबी, बंगाली, बिहारी, उड़िया, मद्रासी आदि । इंगलैन्ड में राजनैतिक भेद, लिबरल, कंसरवेटिव आदि भरे पड़े हैं । प्रेसीडैन्ट भी आखिर को इनमें से ही किसी न किसी मत, मजहब, समाज आदि का होगा तो उसी समाज का पक्ष भी करेगा। बादशाह और राजा को इन भेद भावों से अलग रहना चाहिये तब ही राज की व्यवस्था ठीक हो सकती है। स्त्री पुरुषों की आजादी से प्रजा का आचरण कैसे ठीक रह सकता है । इनसे जो अवर्ण और अनुलोमन, प्रतिलोमन सन्तान बढ़ेगी वह स्थिति को बिगाड़े होगी । लेकिन, "मिथ्या न होय सन्त की बानी" कलियुग की व्यवस्था शास्त्रों में पहले से ही लिख दी है। तुलसीदास जी ने रामायण के उत्तर काण्ड में स्पष्ट लिख दिया है। भागवत में भी राजाओं का हाल लिखा है वह ही हो रहा है और वैसा ही होगा। इसमें बुराई भलाई का भेद करने की ज़रूरत नहीं।

१०२—एक शख्स ने कहा कि फ़लां समाज का काम बिलकुल धर्म विरुद्ध है।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि पक्षपात का काम कहीं भी और कभी भी सराहनीय नहीं जब सब धर्म वाले अपने-अपने व्यवहार को धर्म-युक्त समझते हैं तो किसी को भी क्या अधिकार है कि वह दूसरों को वेधर्मी और अधर्मी कहें। धर्म के न तो विभाग हैं और न वह एक से अधिक हो सकता है। इसलिये धर्मात्मा मनुष्य वह ही हो सकता है जो किसी मत मतान्तर को धर्म विरुद्ध न समझें। धर्म आचरण के दर्जे अलबत्ता हो सकते हैं । जैसे विद्याध्ययन में पहली कक्षा से लगा कर एम. ए. तक पढ़ना पड़ता है। इसी

प्रकार धर्म आचरण में पदार्पण करके उसकी सीमा तक बढ़ते ही बढ़ते जाते हैं। अगर एम. ए. में पहुँच कर कोई नीचे की कक्षा वालों को फिजूल और बेकार ठहराता है तो उसकी नादानी समझनी चाहिये। धर्म पर चलने वाले को धर्म ही रास्ता दिखलाता है और आगे से आगे बढ़ाता ले जाता है धर्म सब एक हैं या यूँ कहो कि धर्म एक ही है अपनी-अपनी प्रकृति और स्वभाव के अनुसार उसका आचरण सब मनुष्य करते हैं।

१०३—एक शख्स ने अर्ज़ किया कि आजकल छावनी या जङ्गी या ज़िला बोर्ड की मेम्बरी के लिये लोगबाग मंगतों की सी टोली बना कर दरवाज़े दरवाज़े फेरी लगाते फिरते हैं। एक समय वह था जब बड़ी खुशामद करने पर भी मनुष्य राज पदवी को भी ग्रहण करना पसन्द नहीं करते थे। राज पदवी में क्या कष्ट और दोष है।

श्री महाराज ने फरमाया कि जो मनुष्य राज के उत्तरदायित्व को समझता है उसके लिये तो महा दुःख है। दिन को चैन न रात को नींद। हर समय राजा ऐसा चिन्तित रहता है जैसे जिम्मेवार बड़ा-बूढ़ा अपने गृहस्थी के संचालन की चिन्ता में लगा रहता है और अपने परिवार के हर जीव और गृह आदि सम्पत्ति की हर प्रकार से रक्षा करता है। इतनी ही या इससे भी अधिक चिन्ता राजा को अपने देश और प्रजा आदि की होती है। बैठे बिठाये ऐसी चिन्ता को कौन अपने सिर पर ले क्योंकि वह निजस्वार्थ के अभिलाषी न थे। जिस प्रकार जहाज के कप्तान को जहाज और मुसाफिर और नौकर-चाकर, जहाज की चाल, जल, वायु, मौसम की गति आदि हर बात का ध्यान रखना पड़ता है इसी प्रकार राजा हर समय चिंतित रहता है। प्रजा के जान व माल का ही नहीं बल्कि प्रजा के स्वास्थ्य यानि दैहिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक उन्नति का भी वह उत्तरदायी है। उसकी प्रजा बलवान हुई पर दुराचारी या खोटे विचार वाली या आध्यात्मिक विचारों से शून्य हुई तो इससे देश की उन्नति नहीं बल्कि अवनति समझना चाहिये और यह दोष राजा के सिर थोपा जाता है क्योंकि यथा राजा तथा प्रजा के अनुसार राजा ही इन सब त्रुटियों का जिम्मेवार है। विधान बनाने में उनको यह ख्याल रखना पड़ता है कि कानून का अमल दरामद दया से मिला हुआ हो और समस्त

जनता की व्यक्तिगत और सामाजिक, धार्मिक और आत्मिक उन्नति का कारण हो और उसमें धर्म से विरोध न हो। क्या यह काम साधारण है? इसमें बड़े भारी विचार और विचारवान मन्त्री और सभा सदों की ज़रूरत होवी है। अगर राज सेवकों और कर्मचारियों के दुराचार से भी प्रजा को कष्ट पहुँचा तो राजा ही उसका दोषी ठहराया जाता है।

१०४—एक शख्श अपने लड़के को साथ लेकर आये और अर्ज़ किया कि मेरे घर में यह गधा पैदा हो गया है। आपकी कृपा और सङ्गत से इन्सान बन जाने की आशा है। आप इसको अपने साथ रखें या साधु बना लें। इसका खाने पीने का जो कुछ खर्चा होगा मैं देता रहूँगा और यह इन्सान बन गया तो धन से भी आपकी सेवा करूंगा।

श्रीमहाराज मुस्कुराये और फरमाया कि एक पण्डित अपने घरके आगे सड़क चबूतरा पर लड़कों को पढ़ाते थे। पड़ोस में धोबी रहता था। वह पण्डित जी को यह कहते सुना करता था कि मैं गधों को इन्सान बना देता हूँ। धोबी के औलाद न थी उसने अपनी पत्नी से सलाह करी कि अब हमारी तुम्हारी आयु बहुत हो गई है बालक तो कोई है नहीं। पण्डित जी गधे को मनुष्य बना देते हैं तुम कहो तो बनवालें, यही बुढ़ापे का सहारा होगा। वह रज़ामन्द होगई तो धोबी ने पण्डित से सब हाल कहा पण्डित जी ने सोचा कि अच्छी चिड़िया फंसी है। बोले बड़े भैया यह काम तो हम कर देगें मगर पाँच सौ रुपया खर्चे होंगे। धोबी ने सब ज़ेवर आदि बेचकर पाँच सौ इकट्ठे किये और रुपया और गधे को लेकर पण्तिडजी के पास पहुँचा। पण्डितजी ने कहा कि गधे को छोड़ जाओ दो महिना बाद आना और ले जाना और रुपया को कब्जे में किया और गधे को किसी दूसरी जगह भिजवा दिया। दो महीने बाद जब धोबी आया और पूछा तो कहा कि भाई तुम्हारा गधा तो बड़ा समझदार निकला, दो महिने से पहले ही मनुष्य बन गया। बहुत रोका, माना ही नहीं, फलाने शहर का गवर्नर बन गया है, वहाँ जाकर मिल लो। धोबी ने कहा कि जब वह इतना बड़ा आदमी बन गया है तो मुझे पहचानेगा कैसे। पण्डितजी ने कहा कि तुम उसको चारा किस बर्तन में खिलाते थे। धोबी ने जवाब दिया कि भट्टी चढ़ाने के बड़े बर्तन के पैंदे में

छेद हो गये थे, उसी में उसे दाना चारा खिलाता था। पण्डित जी ने कहा कि वह बर्तन साथ ले जाना, उसे दिखलाना, पहचान लेगा। धोबी वहाँ पहुँचा। बड़ी सभा लग रही थी सैक्रैट्री, मन्त्री सब बैठे थे। यह भी सामने जा खड़ा हुआ और वह बर्तन सामने कर दिया। सभा समाप्त हो गई तब भी धोबी बर्तन सामने किये खड़ा रहा। गवर्नर ने पुछवाया कि क्या चाहता है तो बोला कि तू अब तक मुझे पहचाना नहीं इतने दिन मेरे यहाँ पला, खाया पिया अब ऐसा भूल गया और सब हाल कहा। वह बड़ा क्रोधित हुआ और लोगों को कहा कि, यह पागल मालूम होता है बाहर निकाल दो। उसको अपमानित करके बाहर निकाल दिया गया। धोबी बहुत ही नाराज होकर घर लौट आया और पण्डितजी से कहा यह तो गधा ही अच्छा था मनुष्य होने से तो इसका दिमाग बहक गया। मुझे पहचाना तक नहीं और बड़ी बेइज्ज़ती करके मुझे निकलवा दिया। अब तो जैसे हो सके उसे फिर गधा बना दें तो लाठी से ख़बर लेकर इस अपमान का बदला लूँ और खूब बोझा लादूँ। पण्डितजी ने कहा कि गधा जब मनुष्य हो जाता है और किसी बड़े पद पर पहुँच जाता है तो उसका स्वभाव ऐसा ही हो जाता है। गधापन कैसे जा सकता है, असलियत का मिटना मुश्किल होता है।

नीच ताई नीच से हरगिज निकल सकती नहीं।
असलियत रज बीज से प्रतिकूल चल सकती नहीं।।

इसमें खर्चा बहुत होगा मगर तुम हमारे पड़ौसी हो और पहले पाँच सौ रुपये खर्च कर चुके हो, हम तुमसे आधा खर्च सिर्फ ढाई सौ रुपया लेकर इसको फिर गधा बना देंगे। धोबी ने कहीं न कहीं से मांग तांग कर और उधार लेकर ढाई सौ रुपया पण्डितजी की भेंट किया तो हुकम हुआ कि १५ दिन बाद आकर ले जाना। इस अर्से में उन्होंने गधे को मंगवालिया और जब धोबी आया तो उसको सौंप दिया। क्या आप अपने लड़के को ऐसा ही मनुष्य बनवाना चाहते हो ? आपको मालूम होगा कि हम तो रुपया छूते भी नहीं न हमारा कोई मठ या आश्रम है जहाँ आपके पुत्र को रख सकें न भोजनालय या लङ्गर है जहाँ भोजन करा सकें, न हम भोजन के दाम किसी को देते हैं कि इस बालक के भोजन का उतना ही खर्चा आपसे ले लेवें।

हमको तो जो कोई बुलाकर ले जाता है उसके साथ चले जाते हैं रेल का टिकिट आदि भी वह ही ले लेता है और रखता है हमारे पास रखने को जेब भी नहीं। आप इस द्विविधा में क्यों पड़ते हैं? हरएक के संस्कार अलग होते हैं। इस बालक का भी कुछ 'संस्कार' आपके साथ है तब ही तो आपके घर में इसका जन्म हुआ है। अपने कर्म के अनुसार इसका भी निर्वाह हो ही जायेगा। आप बहुत चिन्ता न करें, वरना किसी के फन्दे में फंस गये तो रुपया गांठ का और बिगाड़ बैठोगे। हमने तो अबतक किसी को साधू नहीं बनाया। किसी की गृहस्थी बिगाड़ना नहीं चाहिये। मुख्य चीज़ भजन साधना है वह सब को बतला देते हैं जो करना चाहें या कर सकें वह करे उसके असर से बुराइयाँ अपने आप निकल जावेंगी और दैवी सम्पदा के गुण बढ़ जायेंगे।

१०५—एक रोज़ बोस्ता का यह शेर पढ़ा—

"ग़र आईना अज़ आह गरदद स्याह।
शवद रोशन आइने दिलब आह॥"

और फ़रमाया कि आह के साथ जो स्वांस बाहर निकलती है, वह आइने पर छोड़ी जाये तो आइना मैला पड़ जाता है लेकिन भगवत विरह में जिज्ञासु जो सांस भीतर को आह के साथ लेता है उससे उसका हृदय रूपी दर्पण निर्मल हो जाता है।

१०६—एक शख़्श ने अर्ज़ किया, कि आप राजनीतिक विषयों पर कभी कुछ नहीं कहते, इनकी तो आजकल बड़ी चर्चा है, बड़े-बड़े नेता इस विषय का प्रचार कर रहे हैं बंगाल से लगा कर पंजाब तक और उत्तर से लगा कर दक्षिण तक यही हवा चल रही है। समाज, जाति, देश को अधःपतन से उठाने का काम भीं तो महात्माओं का ही है।

श्रीमहाराज ने फ़रमाया कि आपका कथन ठीक है, जब तक समाज, जाति, देश अपने पराये का विचार होता है तब तक समाजिक जातीय, राजनैतिक काम में लगन रहती है या कोई अधिकारी मनुष्य इन मुआमलात पर निर्पक्ष भाव से पूछना चाहे तो उससे भी यथार्थ बात कहने में हर्ज़ नहीं या आशा हो कि हमारी बात मान ली जायेगी या उसका निरादर और तिरस्कार न किया जायेगा या उससे दूसरे लोग बुरा न मानेंगे या उनका दिल

न दुखेगा तो भी अपने विचार प्रकट करने में हर्ज नहीं लेकिन जब निश्चय हो जाये कि इस कहा सुनी का परिणाम ठीक न होगा तब तो व्यर्थ सर पचाने से क्या लाभ। राजनीतिज्ञों का विचार अपने देश, अपने समाज अपनी जाति आदि की उन्नति का इतना भरपूर होता है कि उनको दूसरों के लाभ और हानि का ख़्याल ही नहीं रहता अपनी ही अपनी धांधे चले जाते हैं। वे चाहते हैं कि हमारी समाज, हमारी जाति, हमारा देश, हमारा राज, इनकी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति हो। संसार भर के किसी भी देश में जो उत्तम वस्तु कला कौशल मन्दिर, भवन, भोग विलास हों, वह सब हमारे देश में भी होने चाहिये। नाच, गाना, बजाना, थियेटर, सिनेमा, मोटर, रेल, डाक, तार, हवाई जहाज़, चौड़े-चौड़े बाज़ार ऊँचे-ऊँचे मकान सब कुछ हो। हमारे देश में किसी बात की कमी न हो। इस तीव्र अभिलाषा में इन पदार्थों की प्राप्ति की कठिनाइयों और उनके फल और परिणाम पर भी ध्यान नहीं देते। सीधे रास्ते से धोका धड़ी, चालबाज़ी चोरी चकोरी, लूट खसोट जैसे भी यह बातें प्राप्त हों सब करने को तैयार रहते हैं। मुँह में राम बगल में छूरी होती है। उपदेश होता है कि किसी को मत सतायो, किसी को मत मारो, जीव हत्या मत होने दो, अपना राज स्थापित कर लो। किसी के हाथ में से एक पैसा भी छीना जाये तो हाथापाई होने लगती है। भला देश और राज और अधिकार जैसे पदार्थों को कोई राजी खुशी कैसे दे देगा। मामूली मेम्बरी के चुनावों में मार पीट हो जाती है तो भला राज परिवर्तन चुपके से शान्ति पूर्वक कैसे हो सकता है। इसके विपरीत तत्ववादी और तत्वदर्शी ब्रह्मज्ञानी साधु महात्माओं का ऐसा विचार होता है कि मायावी पदार्थ, संसारी सफलता, समृद्धता आने जाने वाले पदार्थ हैं, सम अवस्था में सदा नहीं रहते इनका घटना बढ़ना, कम और ज़्यादा होना ईश्वरीय नियम है। कभी किसी देश की उन्नति होती है। समय पूरा होने पर इसका अधःपतन होने लगता है। संसार भर के बहुत देशों के इतिहास से यह बात स्पष्ट है। इसलिये साधु लोग इन मामलात में अपना समय नहीं लगाते। घटियंत्र की तरह यह काम ऊपर जाने और खाली होने, फिर नीचे जाने फिर भरने और ऊपर चढ़ने का नियम अनुसार होता ही रहता है। क्या रथ चलाने वाला नीचे जाने वाले यात्रियों को नीचे जाने से रोकता है इसलिए जो कार्य स्वयं होते रहते हैं उनमें वे अपना पैर नहीं अड़ाते और न हाथ

डालते हैं। देशवासी और जनता के जैसे कर्म होंगे इसका फल अवश्य भोगना पड़ेगा। कर्मफल के भोग में बाधा डालना महात्माओं का काम नहीं। इन मायावी पदार्थों की प्राप्ति, इनकी अधिकता, राज की स्वतन्त्रता आदि कामों से आत्म उन्नति नहीं हो सकती। मानसिक और आत्मिक उन्नति का जो रास्ता है उसका उपदेश करने को हम हर समय तैयार हैं। जब राजनैतिक और आध्यात्मिक विचारों और कामों में इतना भेद और अन्तर है तो फिर एक की बात दूसरे को कब सुहायेगी। व्यर्थ का झगड़ा खड़ा करने से क्या लाभ होता है ?

१०७—एक शख़्श ने पूछा कि काम के लिये समय का विभाग कैसे करना चाहिये ?

श्री महाराज ने फ़रमाया कि मनुष्य धन दौलत को बहूमूल्य समझते हैं लेकिन काल या समय अनमोल है साधारण मनुष्यों में जितनी क़दर और चीज़ों की है उतनी समय की नहीं। जो उसका अच्छा उपभोग करते हैं, वही बुद्धिमान हैं। उसमें इतनी बातों का विचार करना ज़रूरी है—

(१) हर कार्य के सम्बन्ध में पहले यह विचार करना चाहिए कि यह करने योग्य है या नहीं।

(२) जब निश्चय कर ले कि करना है तो उस काम को जल्दी करे इतना अटका कर न रखे कि काम का समय निकल जाये। मसलन किसी को विवाह करना है तो बीस वर्ष हद है। पच्चीस वर्ष की आयु तक कर ले, यह न होके बैठा-बैठा सोचता रहे और चालीस वर्ष की आयु में करे।

(३) अगर कोई किसी कार्य के बारे में राय पूछे या किसी काम के करने को कहे तो उसको हाँ या ना का जल्दी उत्तर दे देना चाहिये। यह मुनासिब नहीं कि कल आना परसों आना कह कर उसका समय खराब करें।

"दाता से तो सूम भला जो जल्दी देय जवाब।"

(४) जैसे आमदनी मुकर्रिर हुई है उसी प्रकार समय भी मुकर्रिर हो चुका है। होश सँभालने से मरने तक के सब काम इसी थोड़े से जीवन में पूरे करने हैं। भजन, भोग जीविका, मिलना जुलना सत्संग बिरादरी व्यापार लेना देना सब काम समय अनुसार करे।

(५) अगर कई काम एक साथ सामने आ जाये तो यह निर्णय करे कि पहले कौनसा काम करना है और जिस काम को आरम्भ करे उसको जहाँ तक हो सके पूरा करने के बाद दूसरे बड़े काम को हाथ में ले।

(६) बहुत मनुष्य यह कहते हैं कि हमको फ़ुरसत ही नहीं यह अनित्य बात है जो धन का सद् उपयोग करते हैं उनके पास धन बहुत आ जाता है। जो समय का अच्छा उपयोग करते हैं उनको समय बहुत निकल आता है।

(७) समय ढूंढ़ने से नहीं मिलता वह प्राप्त रूप है। उस पर हाथ डालो और ले लो।

(८) जब काम करते-करते जी उकता जाये तो कुछ समय के लिए विश्राम करे और अगर काम करने से थक जाय तो कोई हलका काम हाथ में ले ले जैसे सीना पिरोना या लिखना पढ़ना या और कोई मनोरंजन जिससे जी बहल जाय और चित्त हरा भरा हो जाय इससे और काम करने के लिये उत्साह बढ़ता है।

१०८—एक रोज़ जनाब बाबू प्रभूदयाल जी साहब ने किसी किताब से बहुत बड़ा करीब ३२ सफ़े का लेख मनुष्य शरीर और जीव के सम्बन्ध में लिख कर पेश किया उसका खुलासा निम्नलिखित है—मनुष्य शरीर को तीन भागों में विभाजित किया है। (१) रूपवान जो दिखाई देता है उसको स्थूल शरीर भी कहते हैं यह भौतिक द्रव्यों से बनता है, (२) जिसका रूप आँख से नहीं दीखता मगर उसकी हस्ती का पूरा पता लगता है जैसे स्पष्ट दीखता नहीं मगर साइन्स की रु से हस्ती प्रकट है उसको लिंग शरीर या ईस्ट्राल शरीर भी कहते हैं उसका पृत्रिलोक से सम्बन्ध है, (३) अरूप शरीर जिसको कारण शरीर भी कहते हैं, इसमें मन, बुद्धि और आत्मा शामिल है, यही असल जीव है। कारण शरीर से लिंग शरीर और लिंग शरीर से स्थूल शरीर घिरा हुआ है। स्थूल शरीर अपने सूक्ष्म अंशों से लिंग शरीर का और लिंग शरीर अपने सूक्ष्म अंशों से कारण शरीर को सहारा पहुँचाते रहते हैं, यानि स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्म से कारण में तरक्की करते रहते हैं।

(१) स्थूल शरीर का वर्णन करने की ज़रूरत नहीं है। जिन तत्त्वों से यह बना है उसका हाल सब साधारण सत्सङ्गी भी जानते हैं। तत्त्वों के अंश और इन्द्रियों के स्वरूप इसमें शामिल हैं। जिस जीव में तमोगुण अधिक होता है उसका स्थूल शरीर बहुत पुष्ट होता है और वह अपनी स्थूल और सूक्ष्म शक्तियों से इस स्थूल शरीर को ही बढ़ाता रहता है। इसका लिंग शरीर निर्मल होता है और मानसी शरीर तो बेतरतीब छोटा सा होता है। तामसी मनुष्यों में कर्म करने के लिये मानसी शरीर की तरफ से कोई हुक्म निकलता ही नहीं और निकलता भी है तो वह अन्तरात्मा की बात सुनता ही नहीं है, यानि ज़मीर का उसमें पता ही नहीं चलता बाहर के माद्दे से जो असर पड़ता है उससे ही मेल करके वह कर्म करता है। बुरे कर्मों के असर से लिंग और मन शरीर क्षीण होते रहते हैं। अच्छे कर्मों के असर से वह पुष्ट होते रहते हैं। लोभ मोह से दुःख या भय लिंग शरीर में तूफ़ान पैदा करते हैं और मानसिक शरीर पर भी हल्का असर डालते हैं और उनके असर से ऊपर के शरीरों में भी उसी प्रकार के ज़र्रात बढ़ते रहते हैं, यानि अच्छे कर्मों के असर से अच्छे और बुरों से बुरे अंश बढ़ते रहते हैं। बुरे अंशों से सुस्ती और अच्छों से चेतनता बढ़ती है—लिंग और कारण शरीर एक दूसरे से इतने मिले हुए हैं कि दोनों मिल कर एकसा काम करते हैं और ऊपर के शरीर से नीचे के शरीर में जो अच्छी सी शक्ति आती रहती है, वह पशु प्रकृति वाले मनुष्यों में प्रत्यक्ष रूप से नहीं पाई जाती यानि उसका पता ही नहीं चलता। स्थूल शरीर में पैदा होने वाले असर कम ठहराव के होते हैं। लिंग शरीर में पैदा होने वाले अच्छे या बुरे असर ज़्यादा ठहराव के होते हैं। मानस शरीर में पैदा होने वाले और भी अधिक ठहराव के होते हैं। यह असर शब्द में प्रतीत नहीं होता बल्कि शकल और चित्र रूप में होता है यानि स्मृति और क्रिया शक्ति का आरम्भ होता है और धीरे-धीरे ये रूप साँचों में ढलने लगते हैं। इन्द्रियों के मिलाप से पैदा हुई शक्लें मानस व स्थूल माद्दे को अपने चारों तरफ खेंच लेते हैं ताकि बाहिरंग इन्द्रियों के कर्म से जो असर पैदा होते हैं उन पर विचार करके दुःखदाई कर्म से बचने और सुखदाई में प्रेरित होने की इच्छा पैदा होती है। कुछ शक्तियाँ स्थूल शरीर में सोई हुई अवस्था में

होती हैं, वे स्थूल दुःख के असर के बगैर जागती ही नहीं। इनको दुःखों का अनुभव और मानसी शरीर से आने वाली धारें जगा देती हैं और जीव को शनैः शनैः कर्त्तव्य और इन करने वाले कर्मों में अन्तर प्रतीत होने लगता है और तजुरबात के नतीजे चैतन्यता पर असर डाल कर नई शक्लें बनाते हैं। विचार ध्यान क्रिया शक्ति पर काम करते हैं और चैतन्यता को इन तजुर्बों के कबूल करने से रोकती है। स्थूल दुनियाँ के द्वार ईस्थूल पर पहुँच कर फिर मानसी शरीर में पहुँच कर ऐसा सबक देते हैं कि इन्द्रियों को स्वतन्त्र विचरने के बजाय मन उनको अपने आधीन रखे इस प्रकार की रोकथाम सूक्ष्म माद्दा को मानसिक शरीर की तरफ खेंचने लगती है। अगले जन्मों के तजरबात के बमुजिब ख़्याल से पैदा की हुई तसव्वुरात की आपस की खींचा तान से मानसिक शरीर की विरोधी होती है और उसकी बनावट नियम अनुसार होने लगती है।

(२) मध्यम श्रेणी के इन्सानों का मानसिक शरीर बहुत कुछ बढ़ जाता है। जिस प्रकार पृथ्वी लोक का जीवन तजरबों की प्राप्ति में व्यतीत होता है, उसी प्रकार बीच के लोकों की जिन्दगी भी इन लोकों के तज़रबों के नतीजे इकट्ठा करने में काम आती है। इस क्रिया से हर नये जन्म में जीव इस पृथ्वी लोक पर हमेशा कुछ न कुछ बढ़ी चढ़ी शक्तियाँ लेकर आता है। जिस मनुष्य ने अभी उन्नति नहीं की है और अधम अवस्था में हैं, वह शनैः शनैः मध्यम अवस्था में बनता जाता है और इसी प्रकार जन्म लेते-लेते मनुष्य हो जाता है।

नियम है कि व्यायाम से शरीर की वृद्धि होती है। जिस अंग को बेकार छोड़ दिया जाय वही शक्तिहीन हो जाता है। इसी प्रकार अगर सूक्ष्म और मानसिक शरीरों से काम न लिया जाये तो वे शिथिल हो जाते हैं। जिस अंग में रोग उत्पन्न हो जाता है और रोगी माद्दा स्वास्थ्य के नियमों के अनुसार काम नहीं करता तो नियम है उसको निकाल कर अच्छे परमाणु उत्पन्न किये जाते हैं। इसी प्रकार मनुष्य के सूक्ष्म और मानसिक शरीर के नाकारा और विपरीत कर्म करने वाले परमाणु भी धीरे-धीरे निकाल दिये जाते हैं और अच्छे परमाणु उत्पन्न किये जाते हैं। जिस प्रकार कोई वस्तु अति हानिकारक होती है उसी प्रकार मानसी शरीर में किसी खास समानता की

अधिकता भी बाधा करती है। इसलिये इस बात का ध्यान आवश्यक है कि कोई खास तरफ भारी न होने पावे बल्कि सब तरफ समानता और खुशगवारू हो। इसलिये आत्म-परीक्षा और आदर्श प्राप्ति के लिये खास रास्ते की तजवीज, ये दो बातें जरूर होनी चाहिये। नियमों के ज्ञान के साथ-साथ जो तजरबात होते हैं उनसे भी बहुत सहायता मिलती है और उन्नति का विश्वास हो जाता है।

जब उत्तम इख़लाक और दैवी सम्पति की तरफ पैर उठाया जाता है तो मानसी शरीर की स्वतन्त्रता को रोक लगती है। इसलिये वह विरोध पर खड़ी हो जाती है और बहुत कठिनाइयाँ सामने आती हैं, यहाँ तक कि प्रयत्न बन्द तक हो जाता है। इसलिये पहली सीढ़ी पर पैर धरते समय विरोधों का मुकाबला करने में भी बड़ी शक्ति और सावधानी की जरूरत है। बहुत अर्से तक मनुष्य को अपनी उन्नति का पता नहीं चलता इससे निराश नहीं होना चाहिये। शनैः २ पैर जमा कर चलने से उसको उन्नति का दृढ़ विश्वास हो जाता है और अन्त में सब बाधाओं को हटाकर सफल होता है। जिसने आत्मिक उन्नति कर ली है उसके शरीर की मलयुक्त मिलावटें दूर हो जाती हैं और शारीरिक भोग-विलास की इच्छा नहीं रहती। उसके विचार बहुत ऊँचे हो जाते और अच्छे २ खयाल और शुभ चिन्तन होने लगता है। पूर्व जन्म के तजरबात और संस्कार से ये सब बातें प्राप्त होती हैं। उपदेश का असर तो सिर्फ इतना होता है कि उनके निदिध्यासन से जो आत्म-संस्कार उसमें होते हैं उनको धक्का देकर बढ़ाने के लिये उकसावें और विरोधी शक्तियों को नष्ट कर दें। जबरदस्ती नये संस्कार किसी में डाले नहीं जाते न डालने की कोशिश करनी चाहिए।

अरूप मानसिक तत्वका—मनुष्य के सब जन्मों में यह ही इसका असली घर होता है। जब जीव-आत्मा का विकास गर्भ में या बचपन अण्डाकार रूप में होता है हिरण्यगर्भ या कारण शरीर या अन्तरयामी या सूत्र आत्मा कहते हैं। यह इस तबके के सबसे ऊँचे तीन दर्जों के माद्दा से बना हुआ बहुत सूक्ष्म झिल्ली की तरह होता है और तरक्की करके बहुत सुन्दर शानदार और खूबसूरत बन जाता है। शुद्ध ब्रह्माण्डी आत्मा की एक किरण या चैतन्य झलक ने अरूप मानसिक तबके के माद्दे से अपने आपको

घेर लिया है। ऐसा करने से उसमें अहम् भाव उत्पन्न होकर वह जीवात्मा कहलाता है। दरअसल वह ब्रह्म शुद्ध ही है; उसकी शक्ति इस माद्दे में ऐसे छिपी रहती है जैसे बीज में वृक्ष। मनुष्य जीवन ऐसे है जैसे बीज को बोना, सुकर्म और परोपकार रूपी सूर्य की गरमी से पलकर और भक्ति के आंसुओं के जल से हरा भरा रहकर और जीवन के तजरबात की ख़ुराक से बढ़कर बड़ा वृक्ष बनकर अपने पैदा करने वाले मालिक या अपने भण्डार का जिसमें से यह उत्पन्न हुआ है उसी का रूप धारण कर लेता है। जन्म लेते समय मानसिक शरीर के ऊपर लिंग और स्थूल शरीर जैसे २ बनते हैं उसी प्रकार मरने के पश्चात सिलसिले से छूटते जाते हैं। कहने में आता है कि फलाँ मनुष्य ने चोला छोड़ दिया उसकी योनि छूट गई। आत्मिक उन्नति के समय भी जैसे २ मनुष्य तरक्की करता है वैसे ही वैसे सिलसिले के साथ उसका अभ्यास नीचे के शरीरों से छूटता जाता है। जिस २ लोक से गुज़र कर वह ऊपर चढ़ता है उसी लोक के शरीर को वहाँ छोड़ जाता है। लेकिन उन शरीरों में रहकर जो तजुरबे किये हैं वे और भोगों के फल साथ जाते हैं वह कारण शरीर में एकत्रित होते जाते हैं। उन्हीं में से कुछ ज़रूरी अंश लेकर इसका नाम प्रारब्ध रखकर नया शरीर बनता है। जन्म लेते समय चेतनता बहुत कम होती है, धीरे-धीरे जवान होकर वह अपना जीवन अपने हाथ में ले लेता है।

कुकर्मों में बराबर रुचि रखने के कारण शरीर पर खराब असर पड़ता है और उन्नति रुकने के अतिरिक्त अच्छे असरों को ग्रहण करने की योग्यता बहुत ही कम हो जाती है जिसको कहते हैं कि इस मनुष्य का ज़मीर तो मर गया उसको बुराई दीख ही नहीं पड़ती है। इसलिये कुकर्म छोड़ देने के पश्चात भी कुछ समय तक उन्नति रुकी रहती है। बुद्धि और आत्मा सम्बन्धी बुराइयों के कारण शरीर पर बहुत गहरा असर पड़ता है। इसी प्रकार बुद्धि और आत्म सम्बन्धीपन और धर्म कार्यों का अच्छा असर पड़ता है। यह बात सीधे और वाम दोनों मार्गों पर लागू है। साधारण अनादि जीव का अरूप लोक में सबसे नीचे निवास होता है। ये ही जीव हर जन्म में नये २ चोले धारण करता है। इसी में "मैं" रूपी अहंभाव उत्पन्न होता है और माया की वजह अपने वाहन रूपी शरीर को ही अपना रूप समझने लगता है इस शरीर

और इन्द्रियों के विषय भोग में आनन्द लेता है और उन्हीं को अपना समझता है। जो मनुष्य कुछ उन्नति कर जाते हैं वह मनको "मैं" समझते हैं उनका आनन्द, वासना और तृष्णाओं में होता है उनके जीवन की एकाग्रता का वह ही केन्द्र बन जाता है। बहुत ही कम मनुष्य ऐसे होते हैं जो अध्यात्म विद्या की असली हद पर खड़े रहकर "मैं" को अनादि जीव समझते हैं। पिछले जन्मों की स्मृति और भविष्य जन्मों के लिये आशा, सम्मुख खड़ी रहती है। जब कोई अंग कट जाता है या चोट खा जाता है तो पहले दिमाग़ में दुःख प्रतीत होता है। उसके पश्चात् चोट के स्थान पर दर्द मालूम होता है। कभी ऐसा भी होता है कि दिमाग़ में तो दुःख प्रतीत होता है लेकिन चोट लगने के स्थान पर ठीक पता नहीं चलता। कभी एक जगह दर्द मालूम होता है, कभी ज़रा हट कर मालूम होता है। इससे पता चलता है कि एक ही "मैं" दिमाग में और शरीर के अंग में काम कर रहा है। गोया जिस गिलाफ में जीव निवास करता है वहीं के दुःख दर्द को मालूम करता है। जीव एक है, वह अपार शक्तियों का सरोत्र है उसके दो रूप मान लिये गये हैं। एक अधम दूसरा उत्तम। कम दर्जे के सूक्ष्म शक्तियाँ अधम मानसिक तबके के मसाले को खींच लेती हैं और उनमें विषय की वासनाएँ उत्पन्न होती हैं। यह अधम मन है। ऊँचे तबके की शक्तियाँ जब स्थूल तत्त्व में काम करती हैं उनको बुद्धि शक्ति कहते हैं जैसे दलील, इन्साफ, निर्णय, विचार, ध्यान, निश्चय इनकी गति इस्ट्रायलमादे में होकर एथेरिक दिमाग पर काम करके स्थूल दिमाग तक पहुँच कर उस पर प्रभाव डालती है। यह प्रभाव बहुत सुस्त और कमज़ोर होता है। वजह यह है कि इस स्थान के स्थूल माद्दे को हिलाने में उसकी अपनी बहुत सी तेज़ी खप जाती है। मन की सूक्ष्म तेज़ धारा के मुकाबिले में दिमागी कर्म बहुत कम अनुकूलता प्रकट करते हैं। साधारण मनुष्य इसी को चैतन्यता समझ लेते हैं। वह ज़रिया जिससे मनन करने वाला अपने विचारों को एकत्र करके उन्नति कर सकता है। उस पर जब विषय काबू कर लेते हैं तो यह ही निराकुंश हो जाता है और अपनी अधम शक्तियों को बढ़ा लेता है। लेकिन अपने जीवन के असली आदर्श को पूरा करने के काबिल तो तब ही होता है जब कि वह अपनी ऊँची शक्तियों को इकट्ठा करके

काम में लाता है। जीव जैसे-जैसे उन्नति करता जाता है उसको अपनी स्वाभाविक शक्तियों का और नीचे के शरीरों में उन शक्तियों का जो इन शरीरों ने अपने गिर्द बना रखे हैं ज्ञान हो जाता है। अन्त में पिछली स्मृति को अपने इरादे का रहनुमा बना कर वह उन पर असर फेंकना आरम्भ कर देता है। इन्हीं असरों को जब वह इखलाफी उसूलों की तरफ उदू करें तब उसको ज़मीर यानि कानशैन्श कहते हैं जब वह दिमागी अक्ल को रोशन करें तो अनुभव हो जाता है। जब यह असर लगातार इतना आने लगे कि वह मामूल से बन जावे तो इस अवस्था का नाम ज़हानत है। अदना बाहनो पर कब्ज़ा बढ़ जाना उत्तम अवकाश का चिन्ह है। इस हालत में उसके असरात को कबूल करने की शक्ति बढ़ जाती है और दिनबदिन उन्नति के लिये मसाला इकठ्ठा करने लग जाते हैं। चुपचाप और लगातार स्थिरता के साथ गैर दुनियावी अशिया की बाबत विचार और स्वाध्याय भी इसी प्रकार की क्रिया मानसिक शरीर की तरक्की के साधन हैं और उत्तम मन की तरफ उठा ले जाते हैं। तथा अधम मन के सूक्ष्म मसाले को इस हदतक पहुँचा देते हैं। छोटी से छोटी कोशिश भी व्यर्थ नहीं जाती है। एक पग भी इस तरफ उठा वह दूसरा पैर उठाने में सहायक होता है। जितना भी मसाला जमा करके दिया जाता है वह कारण शरीर के खज़ाने में भविष्य में काम लाने के लिये जमा होता रहता है। इस प्रकार विकास चाहे कितनी भी सुस्ती और धीरे-धीरे चाल से हो, सर्वदा आगे को ही बढ़ता है और दैवी ज़िन्दगी में सब पदार्थों को आहिस्ता २ अपने कब्ज़े में ले ही आता है।

बुद्धि, ज्ञानवान बुद्धिमान और चैतन्य विचार करने वाले को मनुष्य कहते हैं जो कि अधम मन और उसके नीचे के शरीरों से ढका हुआ है उसका अन्तरिंग स्वरूप आत्मा है जिससे मनुष्य निकला है। यह आत्मा शब्द ब्रह्म की एक किरण है, जिसने स्वयं शब्द ब्रह्म की तरह उसके तीन गुण, सत, चित, आनन्द लेकर अपने आप को स्थापित किया। इन गुणों का तरतीब के साथ विकास हो जाना ही मनुष्य का विकास माना जाता है। इसलिये मनुष्य ब्रह्मांड का छोटा सा प्रतिरूप या दर्पण या प्रतिबिम्ब माना गया है।

मसल है कि "पिण्डे सो ब्रह्माण्डे"। जो कुछ ब्रह्माण्ड में है वह सब मनुष्य के अन्तर में भी है। यह कूटस्थ आत्मा शब्द ब्रह्म का रेचक प्राण यानि श्वांस द्वारा बाहर निकाला हुआ जीवन है जिसमें सब दैवी शक्तियाँ बीज रूप से छिपी हुई हैं। संसारी माद्दे से मिल कर इस आत्मा की शक्तियाँ धीरे-धीरे विकास करती हैं। इन गुणों में से आनन्द शक्ति को बुद्धि माना गया है। यह इस ब्रह्माण्ड का चौथा लोक है जहाँ द्वैत तो बाकी रहता है मगर पृथकता का भान नहीं होता।

निर्वाण ऐसी ही अवस्था है जिसमें हर मनुष्य अपना आप होता है फिर भी दूसरों को अपने आपमें इस तरह मिला हुआ प्रतीत करता है जैसे सच्चे प्रिय और प्रियतम। पृथकता और मेरा तेरा का पता नहीं लगता। एक धीमी गुञ्जार इस लोक से आया करती है जिससे साधक को इच्छित वस्तु के प्राप्ति का आनन्द प्रतीत होता है। बजाय अकेलापन प्रतीत होने के उसको मिलाप का आनन्द प्रतीत होता है यह ही आनन्दमय कोष माना गया है। शुद्ध निष्काम सब के हित के लिये प्रति उपकार न चाह कर पक्षपात से रहित ऐसा प्रेम उत्पन्न होता है जिसमें सब कुछ दिया ही जाता है लिया कुछ नहीं जाता। वह दैवी सम्पत का ऊँचा गुण है जहाँ ऐसा प्रेम दीख पड़े वहाँ समझ लेना चाहिये कि आनन्द शक्ति जाग रही है और वहाँ रूपवान आनन्दमय कोष बन रहा है जिसमें दुई के सब बन्धन टूट कर जीवन में इकाई का आनन्द अनुभव करता है। शुद्ध प्रेम से सृष्टि हुई है। अशुद्ध प्रेम से ही पल रही है और शुद्ध प्रेम ही उसे आनन्द के पद पर पहुँचा देगा। उसमें पृथकता कुफर है। विशाल एकता निर्वाण मुक्ति ही सब महान मतों का आदर्श है। पृथकता, स्वार्थ और खुदगर्ज़ी बुराई की जड़ है उसको उखाड़ कर फेंक देने से क्लेशों का अन्त हो जाता है। इस हद से निकल जाने और स्वार्थ के बन्धन से छूट जाने का नाम मुक्ति है।

निर्वाणी तबका या आत्मा—यह अन्तर्आत्मा का सब से ऊँचा पद है। यह शुद्ध सत चैतन है और जिन पाँच रूपों में संस्कार का विकास हुआ है उसकी पूरी दैवी शक्तियाँ इसमें होती हैं जिन्होंने मनुष्य विकास के सिलसिले को समाप्त कर दिया है वही इस आत्मिक या निर्वाणिक चेतनता को

प्राप्त करते हैं और ऋषी कहलाते हैं तथा पूर्ण सच्चिदानन्द अवस्था में रहते हैं। जब जीव शुद्ध ब्रह्म से उत्पन्न होता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि आत्मिक समुद्र से प्रकाश की छोटी सी चिनगारी बुद्धि तत्त्व ने अलग कर दी और अण्डे के रूप में घेर लिया । यह मानसिक लोक के अरूप भाग से सम्बन्ध रखता है। ज्यों ज्यों विकास बढ़ता है त्यों त्यों यह प्रकाशवान अण्डा बड़ा और दूधिया रंग का होता जाता है इस अण्डे को शुद्ध ब्रह्म से जुड़ा रखने वाला धागा या सूत्र इतना फैल जाता है कि आत्मिक जीवन की लहरें उसके द्वारा आती जाती हैं। चौथे और पाँचवें तबके के विकास के लिये समय निश्चित है तो भी जो लोग जतन करके जल्दी प्राप्त करना चाहें वह अब भी इस रास्ते पर चल सकते हैं । इस प्रकार आनन्दमय कोष जल्दी प्रकट हो जाता है। मनुष्य उत्तम लोकों की चैतनता को भोगने लगता है आवागमन का चक्कर बन्द हो जाता है मुक्ति का आनन्द जो निर्वाण पद है उसको प्राप्त होता है।

निर्वाण को विनाश नहीं समझना चाहिये, निर्वाण की अवस्था नाश से विलक्षण है । यह एक प्रकार का ज़ोरदार जीवन है जिसको इन्द्रियाँ और मन नहीं पा सकते। निर्वाण में वह शक्तिवान आत्मा रहते हैं जिन्होंने पिछले जन्मों में विकास को पूरा कर लिया है और शब्द ब्रह्म के ज़हूर के साथ इस संसार को प्रकट करने के लिये आये हैं, देव लोक के स्वामी और नीचे के लोकों के प्रबन्ध कर्त्ता इसी स्थान पर रहते हैं । निर्वाण पद ब्रह्माण्ड का हृदय माना जाता है जहाँ से जीवन की लहरें निकलती हैं । रेचक प्राण जो जीवन का स्वरूप है यहीं से निकलता है और यहाँ ही पूरक हो जाता है जब ब्रह्माण्ड की मियाद पूरी हो जाती है वह सुन्दर दृश्य जिसकी भक्त जन इच्छा रखते हैं वह बिला परदे के यहाँ ही दीखता है। इस स्थान से नीचे जो लोक अलग-अलग हैं उन सब का यहाँ मेल हो जाता है। अहंकार यानि वह बुद्धि इन्सान को "मैं" और "मैं नहीं" में अन्तर सिखाती है, चेतनता को अपने तक रखती है और सब को अपने से अलग देखती है। यह वियोग करने वाली बुद्धि कहलाती है। लड़ना झगड़ना अहंकार का असूल है । वह सब से अलग रहना चाहता है, बुद्धि से नीचे के सब लोकों में ज्यों ज्यों इस

अहंकार सम्बन्धी बुद्धि का मेल होता है वहाँ झगड़े दीख पड़ते हैं और इच्छित पदार्थ की प्राप्ति में जो बाधा उत्पन्न होती है तो लड़ाई आरम्भ हो जाती है। इन जज़बात में ज्यों ज्यों मन की तेज़ी घुसती जाती है वह ज़्यादा दुखदाई होते जाते हैं क्योंकि इस हालत पर पहुँच कर वह आइन्दा इच्छाओं के पूरी करने के लिये कुदरत के भण्डार से ज़्यादा से ज्यादा खींचने की इच्छा करता है। इसी स्थान पर अलैहदगी की जड़ें रहती हैं। इस स्थान से ऊपर शुद्ध बुद्धि के तबके पर पहुँच कर इकाई का अनुभव होने लगता है जिसको मेहराब (ऊँचा) कहते हैं उसका अनुभव होने लगता है। भाइयों के दिल भाइयों से, नसलों कौमों आदि के दिल इसी अहंकार के भेद से एक दूसरे से अलग हो रहे हैं। बुद्धिमान इन छोटे अन्तरों को नहीं देखता और सब को अपना सम्बन्धी कुनबा एक ही सोत से जीवन शक्ति पाने वाला समझता है। असलियत तो यही है। अहंकार स्वार्थ आदि के बस होकर इसको न मानने से ईश्वरीय नियम नहीं बदल सकता। एक बाल बराबर भी कमी बेशी नहीं हो सकती है। यह भी निश्चय है कि जो ईश्वर इच्छा के विरुद्ध कर्म करता है चाहे वह एक मनुष्य हो चाहे कौम भर हो या देश भर हो वह नष्ट भ्रष्ट हुए बग़ैर नहीं रह सकता। जो चाहता है कि वह और उसके काम नष्ट न हों तो उसको इस विरोध से बचना चाहिये।

१०९—एक कवि ने सत्संग में यह कवित्त पढ़े—

सत्त गयो चढ़ स्वर्ग, धर्म गयो धसक धरनी में।
पति हेतु गये छूट, बैर भयो बरण बरण में॥
घर-घर है रह्यो अन्धेर, दुखित भये नर और नारी।
राजा करे न न्याय, प्रजा की है रही खुआरी॥
शील संतोष ना जाने, कहाँ गये बैताल कहत।
सुन विक्रम चहूँ ओर, प्रचन्ड कलयुग भयो॥
शील को समुद्र सूखो, साँच को जहाज डूबो।
दया के खजाने की ताली, कोउ ले गयो॥
सत्तहू की कोठी लूटी, धर्म हूकी ध्वजा टूटी।
घर-घर में और घट-घट में, पाप छाय गयो॥

संतन को दर्श कहाँ होते, कोउ देत नाये ।
नहीं है को नकीब घर-घर में बोल रह्यो ।।
सन्त कहत हैं अबहू चेत रे अचेती नर ।
स्व धर्म और पुन्न को बीज कहूँ-कहूँ रह गयो ।।
जस सोना भूषण विचार सो ना मंत्र कोई ।
साहते न सूर जोत नन्द सी न सुगण सो ।।
संयम सी न औषध, विद्या ते अटूट धन ।
नेह ते न बन्धन, दया ते पुण्य कौन सो ।।
सोच सी न चोट, हरके नाम सी न ओट ।
कछू तप नाहीं मौन सों ।।
आलस सौं न बैरी, हर सौं ना हेतू ।
कोई अन्न सों न पियारो मीठो नहीं नौन सो ।।

११०—एक शख़्स ने सत्संग में यह शेर पढ़े—

जिन्दगी अपनी थी कुल चौंसठ घड़ी की कायनात ।
रह चले दुनियाँ में हम भी एक दिन और एक रात ।।
फिर इसी दिन रात में क्या-क्या बनाये हमने घर ।
थे मुसाफिर फिर इसी दिन रात में हम कर गये आखिर सफर ।।
नौकरी पेशा जहाँ में, क्या सगीर और क्या कबीर ।
सब किये हमने मियाँ इस जाल में होकर असीर ।।
फिर इसी दिन रात में सो तुखम अहसान बोलिये ।
मरदुम आज़ारी भी की दामो दिरम भी खोलिये ।।
मेहनत सख़ती सही, पत्थर भी सर पर ढोलिये ।
थी यही फुरसत इसी में था, जो होना हो लिये ।।
तिफल से ठहरे जवां, और फिर जवांसे बनके पीर ।
आली रुतबा भी बने और फिर बने आखिर हकीर ।।
देखली, होली, दीवाली ईद भी और सक्रांत ।
फिर इसी में चल बसे, आख़िर को रख छाती पै हाथ ।।
खाक़ छानी दर-ब-दर घाटा मुनाफ़ा कर गये ।
थोड़ी थी फुरसत इन्हीं झगड़ों में आख़िर मर गये ।।

इतने अरसे ही में क्या-क्या हम पे गुज़री वारदात ।
रहे चले दुनियाँ में हम भी एक दिन और एक रात ।।

१११—एक शख़्श ने पूछा कि कर्म, उपासना, भक्ति और ज्ञान में कर्म से क्या मंशा है ? कौन से कर्म करने चाहिये ।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि कर्म से मतलब कमाई करने वाले कर्म से नहीं हैं बल्कि साधना से तात्पर्य है । शरीर की साधना, इन्द्रियों की साधना, मन की साधना, आत्म संयम आदि ।

११२—एक शख़्श ने प्रश्न किया कि साधू बिलकुल नंगे क्यों रहते हैं, उनको शर्म नहीं लगती ?

श्री महाराज ने फ़रमाया कि जब कोई दूसरा हो ही नहीं तो पर्दा किससे करें । स्वप्न में बिना स्थूल शरीर के काम होता रहता है; शरीर ढका है या खुला है, कोई पास बैठा है या लेटा है इसका पता भी नहीं चलता । इसी प्रकार जब स्वप्न और उससे ऊपर सुषुप्ति अवस्था में विचरने से शरीर के खुले या ढके रहने का पता ही नहीं चलता, न किसी ग़ैर के होने का ध्यान रहता है ।

११३—एक शख़्श की शिकायत होने लगी कि उसका मिजाज बड़ा गर्म है, बड़ी जल्दी क्रोधित हो जाता है, मगर दिल का साफ है और दयावान है ।

श्री महाराज ने फरमाया कि गर्म नर्म होता है, ठण्डा कड़ा होता है, रोटी, पूरी, परावठा किसी भी भोजन को देख लो जब तक गर्म है, नर्म है, ठण्डा होने पर कुछ कड़ापन आ ही जाता है । गर्म जल्दी पचता है ।

११४—एक शख्श का ज़िक्र हुआ कि उसने मन्दिर बनवाया है लेकिन राज्य की कुछ धरती पर ज़बरदस्ती कब्जा कर लिया उसकी ऐसी वृत्ति क्यों बिगड़ गई ।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि जब कोई अच्छा काम आरम्भ करता है तो उसकी परीक्षा की जाती है कि यह मनुष्य दरअसल है भी अच्छा या दिखावटी है । अगर वह चोरी करने लगे, किसी की ज़मीन दबाले या इमारत का सामान चुरा ले तो पता चल जाता है कि नकली है, असली नहीं । ऐसों

की अच्छाई का फल नहीं मिलता। साधु के सामने मकानात बनाने का सवाल, स्त्रियों का झुरमट, रुपये की थैलियाँ आती हैं। अगर उनमें से किसी भी वस्तु पर हाथ डाल दिया तो पता चल जाता है कि यह साधु नहीं, बहरुपिया, मक्कार, दुनियाँदार है। साधु का झूठा भेष भर आया है।

११५—एक सख्श ने कहा कि आजकल साइन्स की बड़ी वृद्धि है। पहले ग्रन्थों से साइन्स का कुछ हाल मालूम नहीं होता है।

श्री महाराज ने फरमाया कि सनातन धर्म के ग्रन्थों में अधिकतर आध्यात्म विद्या का विषय है। पदार्थ ज्ञान की तरफ ध्यान नहीं दिया। लिखा है कि "श्री रामचन्द्र जी ने पतंग उड़ाई थी, जो देवलोक पहुँची थी उसको हरिसुत जयन्त की नारी ने विचित्र चंग देख सर पकड़ लिया था तब महावीर छुड़ा कर लाये थे।" यह साइन्स का ही चमत्कार समझना चाहिये। आजकल तो एक लोक से दूसरे लोक की बात करने की शक्ति भी अभी तक पैदा नहीं हुई है।

११६—एक शख्श ने अर्ज़ किया कि मुझको भगद्गीता बहुत प्यारी लगती है, खूब पढ़ता हूँ और रोज़ पढ़ता हूँ, समझने की कोशिश करता हूँ, मगर अभी तक न तो यह समझ सका कि क्या करना है और न लाभ उठा सका। आप खास-खास चुने-चुने श्लोक बतला दीजिये जिनके पढ़ने से लाभ हो।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि जब आप सब गीता पढ़ते हैं तो चुने श्लोक भी ज़रूर पढ़ने में आते होंगे। दूसरी बात यह है कि आप क्या लाभ उठाना चाहते हैं? गीता का उपदेश तो महायुद्ध के समय किया गया था और उसके पश्चात् दो घरानों की तबाही हुई। गीता के अठारहवें अध्याय का ६४ वाँ श्लोक यह है—

सर्व गुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥

सम्पूर्ण गोपनियों से भी अति गोपनीय मेरे परम रहस्य युक्त वचनों को फिर भी सुन, क्योंकि तू मेरा अतिशय प्रिय है। इससे यह परमहित कारिक वचन मैं तेरे लिये कहूँगा। इसके पश्चात् ६५ वें श्लोक में कहा—

मनमनाभवमद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

मुझ परमेश्वर में मन लगा और मेरा भक्त हो और मुझको नमस्कार कर, मुझको ही प्राप्त होगा। तू मेरा प्यारा है, मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि कर्म और भक्ति मार्ग वालों के लिये वह वचन है। जो कुछ इसमें करने को कहा है वह ही इनके लिये अति उत्तम कर्म है। दूसरे अध्याय के ११ वें श्लोक का पिछला भाग—

गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।

कि पण्डित जीते और मरे हुओं का सोच नहीं करते, जब मनुष्यों का सोच नहीं करते तो संसारी धन,सम्पति की प्राप्ति या हानि का क्या सोच करना। और अठारहवें अध्याय के ६६ वें श्लोक का पहला भाग—

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

सब धर्मोंको त्याग कर अकेले मेरी शरण प्राप्त कर। दो श्लोकों के आधे भागों में ज्ञान मार्ग वालों के लिये यह उपदेश है।

११७—एक रोज इर्शाद हुआ कि नाम रूप प्रपंच जो कुछ भी है प्रणव यानि ओ३म् है। ब्रह्म का भी सब से बड़ा नाम माना गया है। भूत भविष्य वर्तमान सब इसी से हैं। इसकी चार मात्रा हैं और आत्मा भी चार चरणों में निवास करता है। (१) पहला चरण जाग्रत अवस्था है। इसके सात अङ्ग हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, मन, बुद्धि। एक उपनिषद् में यह सात लिखे हैं—(१) सूरज लोक यानि मस्तक, (२) चन्द्र लोक यानि नेत्र, (३) वायु यानि प्राण, (४) आकाश यानि धड़, (५) समुद्र आदि यानि मूत्र स्थान, (६) पृथ्वी यानि चरण, (७) भों अग्नि यानि मुख। कुल भोग के साधन पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ, पाँच कर्म इन्द्रियाँ, पाँच प्राण, चार अन्तःकरण यह उन्नीस मुख हैं और पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ और पाँच कर्म इन्द्रियाँ, पाँच तत्व और मन यह सोलह कला हैं। जिनके तीन लक्षण हैं यानि उत्पत्ति, स्थिति और शान्ती यानि मिट जाना। देवता वैश्वानर अग्नि हैं। यह सब मिल कर पहला चरण प्रणव की पहली मात्रा अः कहलाता है, आत्मा की दूसरी स्वप्न अवस्था है जिसको प्रत्मंकृत और तेजस यानि नूरानी कहते हैं। जाग्रत अवस्था की तरह इसके भी १९ मुख हैं। जिनसे सूक्ष्म मनुमात्र अविद्या के रचे पदार्थों को भोगता है। यह प्रणव की दूसरी मात्रा "ऊ" है

जिसमें "म" भी है माया, (३) आत्माके तीसरे चरण को सुषुप्ति या जबरूत कहते हैं। इसमें जीवात्मा और परमात्मा एक हो जाते हैं। इसमें प्राज्ञ अविद्या की वृत्तियों से अज्ञान से ढके हुए आनन्द को भोगता है। यही सब का मालिक ज्ञाता अन्तरयामी और अन्तर के सब भेदों का जानने वाला और सब की उत्पत्ति का स्थान यानि कारण है। जागृत और स्वप्न के सब पदार्थ भी उत्पन्न करता है और इसी में वे लीन होते हैं। इस प्राण को भूत, वर्तमान, भविष्य के सब पदार्थों का ज्ञान होता है। इस अवस्था में आत्मा में तो लीन हो जाता है, परन्तु अविद्या जो साथ लगी रहती है वह इसको खींच कर स्वप्न में और फिर वहाँ से जागृत में ले आती है। यह प्रणव की तीसरी मात्रा "म" है जिसमें निराकार और उपचार गति "अ-ऊ" की समाप्ति होती है। (४) आत्मा का चौथा पद तुर्या या लाहूत है। जब अविद्या दूर हो जाये और मन निर्मल होकर यह जान ले कि जिस आत्मा में मैं लय होता हूँ, वही मैं हूँ और सोई वह है, तब आत्माका जीव भाव छूट कर वह निर्मल या शुद्ध ब्रह्म हो जाता है यानि जीवात्मा और आत्मा एक हो जाते हैं लेकिन मुख से इस अवस्था का शब्दों में वर्णन नहीं हो सकता। सब जग उसमें लय हो जाता है। वह परम आनन्दघन है। यह ओम् की अर्द्ध मात्रा है जिसको मात्रा भी नहीं कह सकते। इसमें अ. उ. म लय हो जाते हैं। जो प्रणव को ऐसा अनुभव कर लेता है वही ज्ञानी है।

११८—एक शख़्श ने अर्ज़ किया कि बहुत दिनों से भजन अभ्यास कर रहा हूँ अभी तक मन बुद्धि में कोई अन्तर नहीं हुआ और न भजन में प्रेम उत्पन्न हुआ। मन लगता नहीं है बेगार सी प्रतीत होती है।

श्री महाराज ने फरमाया कि—

"मन लागत लागत लागत है भय भागत भागत भागत है,
बहुत दिनों का सोया मनवा जागत जागत जागत है।"

जन्म जन्मान्तरों के फल एकत्र हैं उनसे प्रारब्ध बनी है उसका भोग भोगता है गोया वह कर्म तो निश्चित हो गये हैं। इस जन्म में करने ही पड़ेंगे उनको करते हुए भजन अभ्यास करते रहना चाहिये। धीरे-धीरे संस्कार

बनेंगे उकताना नहीं चाहिये। रस्सी की बारम्बार की रगड़ से पत्थर की सिल कट जाती है मन इन्द्रियाँ भी ज़रूर क़ाबू में आजायेंगे।

११६—एक रोज़ ईर्शाद हुआ कि पुराने कर्मों को याद करने से उनके संस्कार मनमें जगह कर लेते हैं लेकिन इनका पश्चात्ताप मनुष्य के भविष्य को बताता भी है और उन्नति के मार्ग लगाता भी है लेकिन पूजन भजन जप तप कोई भी काम बदला मिलने की इच्छा से नहीं करना चाहिऐ वरना वह तो व्योपार हो गया यह करेंगे तो वह लेंगे या वह लेने के लिये यह कर रहे हैं जो कुछ भी करना है उसको अपना धर्म और कर्तव्य समझ कर फल की आशा न करके करना चाहिये आशा करके दया न करो, जब हर काम का कुछ न कुछ फल होता ही है तो इस जप तप का भी जो फल होता है वह ज़रूर होगा आशा के जल्दी पूरे होने से जो उद्वेग मन में होता है उससे बच जायेगा और स्वभाव में धीरता आ जायेगी और चित्त स्थिर होने लगेगा, दृढ़ता, सन्तोष और धीरज हर काम को पूरा कर देती है और बिगड़े काम को भी संवार देती है लेकिन भूत और भविष्य का अधिक ध्यान विचार मुनासिब नहीं सिर्फ इस हद तक होना चाहिये वे मनुष्य अपने वर्तमान को सुधार और संवार सके। जिस प्रकार भूत कर्मों के फल का भोग वर्तमान में भोग रहे हैं इस प्रकार वर्तमान कर्मों का फल भविष्य में भोगता है। गोया जो भूत था वह वर्तमान हो गया और भविष्य भी किसी समय वर्तमान बन जायेगा। गोया हम अपने भविष्य का इस वर्तमान में निर्माण कर रहे हैं शिशिरऋतु में से पत्ते नहीं गिरते और न बसन्त ऋतु में फूल पत्ते लगते हैं, यह सब क्रिया तो ऋतु के आने से वृक्षों में होती है इसलिये काल किसी बात का जुम्मेवार नहीं जुम्मेवार तो मनुष्य और उसका मन है।

१२०—एक सख्श ने प्रश्न किया कि अवतार होने की क्या जरूरत है। और अवतार क्या करता है? और मज़हब की कौन-कौन सी पाबन्दी ज़रूरी हैं और उसकी जरूरत क्या है, और उससे क्या लाभ है उसका क्या फल है?

श्री महाराज ने फरमाया कि अवतार होने की ज़रूरत तो गीता के चौथे अध्याय के सातवें श्लोक में और जो कुछ काम अवतार करते हैं वह

आठवें श्लोक में वर्णन है। मज़हब में सम्मूलियत का मतलब चन्द बातों को मानना और उन पर अमल करना है। मसलन (१) जो रस्मोरिवाज इस मज़हब में स्थापित हो गये हैं उनको मानना, उन पर चलना, और उनके अनुसार अपना चाल चलन बनाना, (२) उस मत के पूज्य स्थान, गिरजा, मस्जिद, धर्मशाला, मन्दिर तीर्थ आदि में जाना। (३) उस मत के बानी से चाहे वह मौजूद हो या गुप्त हो गया हो, प्रेम रखना और उसकी स्तुति करना। (४) उसकी कभी निन्दा न करना, न उसके सम्बन्ध में कोई शक व शुबाह अपने मन में लाना जैसे ईसाई मत वालों को चाहिये कि हज़रत ईसा को ख़ुदा का बेटा माने। (५) मत की पुस्तक और सिद्धान्त द्वारा यह निर्णय करना कि यह मत उन सिद्धान्तों के अनुसार है या नहीं। (६) इस मत में क्या धार्मिक बात विलक्षण है, इसमें कोई खास सचाई या शास्त्र विधि, या क्रिया पद्धति है या नहीं। (७) उसका कोई विशेष चरित्र, वृत्तान्त या कथा है। (८) मज़हब दर-असल जीवन पंथ है, इस कल्पना और आभास को साक्षात् करना चाहिये। अगर साक्षात् न हुआ या न कर सके, तो सब काम अधूरा समझना चाहिये। परमात्मा को मानने वाले हर प्राचीन मत का यह दृढ़ निश्चय रहा, और यह भावना रही कि परमात्मा को किसी न किसी रूप में इस संसार में देखना और इसका यहाँ होना या यहाँ आना निश्चय करना चाहते हैं जब परमात्मा ने सब जगत को बनाया तो क्या वह अवतार धारण नहीं कर सकता। जब वह परमात्मा ठहरा और कुल सृष्टि उसकी बनाई हुई निश्चय हुई, और कुल जीव उसकी सन्तान या स्वरूप अंश माने गये, तो क्या एक को दूसरे से मिलने की इच्छा अचम्भे की बात है ? यह तो स्वाभाविक दीख पड़ता है, उसको अपने बनाये हुये संसार के बिगाड़ और धर्मात्मा जीवों के दुख दर्द में सहानुभूति होनी ही चाहिये। संसार का उद्धार धर्मात्मा जीवों के तारने का ध्यान परमावश्यक है। साधारण मनुष्य की बनाई हुई किसी भी वस्तु को कोई बिगाड़े या उसकी सन्तान या शरणागत, या सेवक या माता पिता आदि किसी भी सम्बन्धी को कोई दुख दे, तो वह मनुष्य निश्चय रूप से ऐसे काम में दखल देता है। यहूदियों का ख़ुदा उनके पूर्वजों से बात करता था। उनका पथ दर्शक था। हज़रत मुहम्मद साहब ख़ुदा के रसूल और पैगम्बर बन कर आये। ख़ुदा बन्द

हज़रत ईसा के रूप में बेटा बन अवतरे। श्रीरामचन्द्रजी, श्रीकृष्णजी भगवान् का अवतार बन कर आये। ये ही चरित्र और बातें पौराणिक कथाओं की जड़ या नींव है। जब जीव को अमर मानते हैं तो उसके बनाने वाले परमात्मा को अमर मानने में क्या बाधा हो सकती है। अपने और उसके अमर होने का निश्चय ही कितना हर्ष वर्द्धक है। हर समय उसका ध्यान, उसकी लीला अनुकरण की याद कितनी आनन्द दायक है? ईसाई बड़े दिन के त्यौहार, सनातन धर्मी रामनवमी और जन्माष्टमी के दिन कितना आनन्द मनाते हैं। जब भगवान का स्वरूप निमेष मात्र के लिये ध्यान आदि में प्रगट होकर सुखदाई प्रतीत होता है तो जिस भक्त को उसके स्वरूप का साक्षात हो जाता है, उसके आनन्द का क्या कहना है? नित्य प्रति देखने में आता है कि एक मनुष्य हथकड़ी बेड़ी पहने रस्सी से बंधा जा रहा है और एक मनुष्य सुन्दर वाहन और विमान में चढ़ा जा रहा है तो स्पष्ट हो गया कि शुभ और अशुभ कर्म का फल ज़रूर है। फल भोग का स्थान शफाखाना, पागल खाना, जेलखाना, कालापानी, राजसभा, राजसिंहासन, इसलोक में होना या स्वर्ग नरक और ऐराक किसी और लोक में हो और फल बगैर न्याय के हो नहीं सकता। इसलिये प्रलय या कयामत भी लाज़मी तौर से माननी पड़ती है। मरने के पश्चात् का जीवन भी बहुत से मज़हबों में मानी हुई बात है, जिस किसी ने नहीं माना है वह भी इस जीवन में किसी को जन्म का सुखी किसी को जन्म का दुखी देख कर उसके मानने पर मजबूर हो रहे हैं। आवागमन बड़ा उत्साह बढ़ाने वाला निश्चय है, इससे हौसला बढ़ता है कि अगर इस जीवन में यह काम पूरा नहीं हुआ तो दूसरे जीवन में पूरा हो जावेगा। और दूसरे में भी कसर रह गई तो किसी न किसी में तो पूरा होकर ही रहेगा।

जैसे आज जो काम समाप्त न हुवा तो दो दिन चार दिन दस दिन में कभी न कभी पूरा होकर ही रहेगा। मुक्ति और निर्माण का विषय तो इतना सुखदायी है कि उसकी व्याख्या करने की ज़रूरत ही नहीं। उसके आनन्द के कोई ठीक उपमा नहीं।

१२१—एक सख़्श ने सवाल किया कि मनुष्य में सबसे बड़ा गुण क्या है?

श्रीमहाराज ने फरमाया कि इसका जवाब तो देना कठिन है क्योंकि हर शख्श अपने विचार के साथ गुण को देखता है। तब उसने पूछा कि यही बतलाइये कि आपके निकट सबसे बड़ा गुण क्या है?

श्रीमहाराज ने फरमाया कि हमारे निर्णय में तो विवेक यानी कदरदानी सबसे बड़ा गुण है। बड़ों को पत्र लिखने में उर्दू अलकाब में लिखते हैं, मेहरबान, कदरदान, अनाज के व्योपारी को अनाज़ की कदर, कपड़े के दुकानदार को कपड़े की पहचान, सुनार को ज़ेवर में खरे खोटे की निगाह, सराफ को सोने चाँदी की जाँच, जौहरी को जवाहिरात और पत्थरों तक की निरख परख होनी चाहिये वरना काम बिगड़ जावेगा। मनुष्यों में सबसे बड़ा राजा माना जाता है उसको मनुष्यों की पहचान होनी चाहिये कि कौन कैसा है? सभी प्रकार के मनुष्यों से राजा को पाला पड़ता है। राजा कदरदान न हो धोखा खा जाये तो राज उलट पुलट हो जाये। साधु भी कदरदान होना चाहिये ताकि अपने विवेक द्वारा सत, असत, विनाशी और अविनाशी को समझ कर सत्य को ग्रहण करे और असत्य का त्याग करे। अध्यात्म विद्या में मुमुक्षु में सबसे पहला लक्षण विवेक ही माना जाता है।

१२२—एक सख्श ने कहा कि पहले विद्यार्थी को पाठ ज़बानी याद कराया जाता था उसमें दिमागी मेहनत बहुत करनी पड़ती थी। दुनियाँ भर की बातों को कहाँ तक याद रखा जाये। उसकी वजह यह भी हो सक्ती है किताबें बहुत कम थीं। अब हर प्रकार की किताबें छपने लगीं हैं हर कोई अपने पास रख सकता है। जब ज़रूरत हो उसमें से देखले। रट-रट कर दिमाग परेशान करने की क्या ज़रूरत है?

श्रीमहाराज ने फरमाया कि मुमकिन है किताबों की कमी की वजह से ही जबानी याद कराते हों। हमारा यह ख्याल है कि नाई की पेटी की तरह किताब को कहाँ कहाँ मनुष्य साथ लिये फिरता रहे। विद्या तो कण्ठ हो वही हर समय काम आ सकती है। वार्तालाप में उसका हवाला दिया जा सकता है, उपदेश किया जा सकता है। दूसरी बात यह है कि जब कोई पद या मसाल जबानी याद हो जाता है तो मनुष्य उसको बोलता चला जाता है और यह भी उसको सुनता जाता है कि हृदय से ठीक बात निकल रही है या गलत। इसका

बार-बार अभ्यास होने से उसको अपने घट में से निकलने वाले राम और उस शब्द को सुनने और साक्षी रूप का साक्षात्कार हो जाता है, यह कितनी बड़ी बात है।

१२३—एक व्यक्ति ने सवाल किया कि परमात्मा का ध्यान किस रूप से किया जाये, जीव का जन्म मरण और जीवन क्या वस्तु है।

श्रीमहाराज ने फरमाया कि ध्यान उसी वस्तु का हो सकता है जिसको पहले कभी देखा हो, और उसकी स्मृति हो, या उसके रूप का कुछ हाल किसी से सुना हो, या किसी पुस्तक में पढ़ा हो। सनातन धर्म का सबसे महान ग्रन्थ वेद इसको नेति-नेति कहते हैं ऋषिमुनि महात्मा कहते हैं "अनामीअगोचर, अलख, अक्षय है और अब तक देखने में किसी के आया नहीं, तो फिर ध्यान किस रूप का किया जावे। इसलिये ध्यान से मुराद चित्त को स्थिर करने से है। जैसे शामको संध्या समय एक तारा टिमटिमाता सा दिखाई दिया उसको तीव्र दृष्टि वाला देख कर कहता है कि तारा निकल आया। दूसरा जिसकी निगाह कुछ कम है वह कहता है कहाँ है हमको तो दीखता नहीं उसको इशारे से बतलाया जाता है कि वह देखो वह चमक रहा है।

जब वह चित्त को स्थिर करके निगाह को खूब जमाता है, तब वह सितारा उसको दिखलाई देता है। इसी प्रकार गुरु इशारा करके या सैन से बतलाते हैं कि "वह है।" और शिष्य अपना मन, चित्त, बुद्धि स्थिर करके ध्यानस्थ होता है तब उसको आत्मा का अनुभव होता है। सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, सागर, पृथ्वी, पर्वत, नक्षत्र आदि महान पदार्थों के दर्शन से पता चलता है कि कोई विशाल हस्ती भी है जिसने ऐसे पदार्थों को रचने वाला भी रचा है। और अपने घट में भी किसी ऐसी विचित्र वस्तु की प्रतीति तो होती है लेकिन उसको हम जानते नहीं। वह भी मन चित्त और बुद्धि को सम करने से प्रगट हो जाती है। जीवन मरण का हाल ऐसे समझो जैसे लोकोशेड में खाली इञ्जन खड़ा हुआ है जब उसको चलाना मंजूर होता है तब उसमें कोयला पानी भर कर चैतन्य रूपी चिंगारी डालने से और कर्म रूपी वायु भड़कने से अग्नि प्रज्वलित होकर स्टीम यानी जीवन शक्ति बनने लगती है। जब स्टीम खूब बन जाती है तो ड्राइवर उसको जोतने के लिये स्टेशन पर ले जाता है।

यह बार-बार का स्टीम भर जाना और फिर यात्रा पूरी हो जाने पर राख कोयले का इञ्जन से निकाल कर इञ्जन का खाली खड़ा रहना, और फिर धोकर साफ करें, कोयला पानी भर कर अग्नि का डाला जाना है तो उसकी नित्य क्रिया जीवन उद्देश्य समझना चाहिये। इञ्जन बाँदीकुई से आगरे तक जाना है, कोई चाहे जितना कहो, और ज़ोर दो कि आगरे नहीं इस इञ्जन को देहली ले जाओ। मगर ड्राइवर किसी की नहीं मानेगा और आगरा ही ले जावेगा। यह उसका प्रारब्ध समझो। भरतपुर के पास रेल की पटरी खराब हो गई और इञ्जन लाइन से उतर गया। उसका पटरी पर से उतरना पहले से निश्चित नहीं था। लाइन की खराबी इसका कारण हो गई। घन्टे दो घन्टे में क्रेन-रूपी यन्त्र द्वारा उसको पटरी पर चढ़ा देने के बाद वह चालू हो जाता है उसको जीवन का वकूआ या हादसा कहना चाहिये। यह उसका प्रारब्ध नहीं है बल्कि क्रियमाण कर्म का फल है। इंजन को बनाते समय उसकी आयु स्थापित की जाती है कि २० साल तक यह काम करेगा। लेकिन दो चार साल चलते-चलते किसी नदी का पुल खराब हो जाने से, इंजन पुल पर से नदी में गिर पड़ा और जल और पोली धरती होने से नदी की तह में बहुत नीचा घुस गया। अब वह दो चार रोज़ में नहीं निकल सकता बड़े-बड़े यंत्रों द्वारा इंजन को धरती में से खींच कर बाहर निकाला। उसके कल पुर्जे जल और जङ्ग से इतने नाकारा हो गये कि अब वह काम नहीं दे सकता। यह उसकी अकाल मृत्यु हो गई। और २० वर्ष की अवस्था जो उसकी स्थापित की गई थी २० वर्ष काम देकर वह बेकार हुआ तो उसको साधारण जीवन अन्त या शरीरान्त कहना चाहिये।

१२४—एक रोज़ सत्सङ्ग में यह पद किसी ने पढ़ा—

अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में।
है जीत तुम्हारे हाथों में और हार तुम्हारे हाथों में॥
मेरा निश्चय बस एक यही, इकबार तुम्हें पाजाऊँ मैं।
अर्पण कर दूँ दुनियाँ भर का, सब भर तुम्हारे हाथों में॥
जो जग में रहूँ तो ऐसे रहूँ ज्यों फूल कमल का हो जलमें।
मेरे गुण दोष समर्पित हैं, करतार तुम्हारे हाथों में॥

यदि मानष का मुझे जन्म मिले, तो चरणों का पुजारी बनू ।
इस पूजक की इक-इक रग का हो तार तुम्हारे हाथों में ॥
जब २ संसार में पाऊँ जनम, निष्काम भाव से कर्म करूँ ।
फिर अन्त समय में प्राण तजूँ भगवान तुम्हारे हाथों में ॥
मुझमें तुझमें बस भेद यही, मैं नर हूँ तू नारायण है ।
मैं हूँ संसार के हाथों में, संसार तुम्हारे हाथों में ॥

१२५—एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि मनुष्य को अपना जीवन सुखी व धार्मिक बनाने में कौन से नियमों का पालन करना चाहिये ?

श्री महाराज ने फरमाया कि नियम तो केवल एक ही होता है वह यह है कि जो काम हम करे वह अपने शरीर व आत्मोन्नति के लिये करें। हम अपनी गृहस्थी, कुटुम्ब, समाज, शहर, जिला प्रान्त, पृथ्वी और ब्रह्माण्ड भर के लिये समान भाव से कार्य करें यही परमार्थ है। जब सारे ब्रह्माण्ड में केवल एक आत्मा ही फैली हुई है और उस आत्मा में ब्रह्माण्ड समाया हुआ है तो जब एक अंश के दुःख से हम दुःखी होते हैं तो एक अंश के सुख से हमें सुखी भी होना चाहिये। जब इस विचार को छोड़ कर मनुष्य ऐसे कर्म करता है कि केवल उसका ही जीवन सुखी रहे तो यही स्वार्थ है। अपनी गृहस्थी विरादरी, समाज, कुटुम्ब, प्रान्त, देश या सिर्फ पृथ्वी के लिए ही सकल ब्रह्माण्ड को दृष्टि में न रख कर जो काम किया जाता है वह सब स्वार्थ है, अलबत्ता अपने स्वार्थ से लेकर पृथ्वी तक के स्वार्थ को दृष्टि में समझ कर जो काम किया जाता है उसमें स्वार्थ क्रमशः घटता जाता है और परमार्थ का अंश बढ़ता जाता है।

१२६—एक व्यक्ति ने प्रार्थना की कि भारत में चार वर्ण माने गये हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र। इनमें से क्षत्रिय को ही क्यों राजा बनाया गया है ? शूद्र को न सही ब्राह्मण व वैश्य को राजा क्यों नहीं बनाते ?

श्री महाराज ने फरमाया कि प्रत्येक क्षत्रिय को भी राजा बनने का अधिकार शास्त्र में नहीं है ब्राह्मण तो दयावान होते हैं दया से प्रेरित होकर वे निष्पेक्ष न्याय नहीं कर सकते, यदि किसी अपराधी को मृत्यु दण्ड देना हो तो ब्राह्मण का हृदय द्रवित हो जायेगा ठीक न्याय करने से वह हिचकिचायेगा।

लेना नियम बनाये रखते हैं, कुछ मिले तो सेवा करते हैं, देने में ज़रा त्रुटि या देर हुई कि हरजाना नज़राना लेना उनका स्वभाव है और पक्षपाती भी होते हैं। क्षत्रिय न्यायकारी होते हैं निष्पक्ष स्वभाव से न्याय करते हैं। न्याय के समय दया का विचार नहीं करते हैं, जिस बात पर अड़ गये तो अड़ गये अपने वचन से हटना नहीं जानते। राज अधिकार ऐसे मनुष्य को देना चाहिये जिसमें धर्म व न्याय हो, जो गणित विद्या जानता हो, निष्काम सेवा कर सके भूल कर भी चालाकी व पक्षपात न करे अनर्थ करके धन न ले। सर्व त्यागी, अनासक्त और निष्काम सेवा करने वाला हो। आजकल का विचार है कि राजनीति में बिना चालाकी के काम नहीं चल सकता यह असत्य है, यदि राजा ही झूठा हो तो प्रजा की क्या हालत होगी राज्य वही स्थिर रहेगा जिसमें धर्म व न्याय हो निष्काम सेवा करने वाला व राज अधिकारी हों।

एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि जागृत अवस्था और स्वपनावस्था को पार कर लेना व जीतना क्या बात है इसका क्या मतलब है?

श्री महाराज ने फरमाया कि अवस्था का वर्णन वाणी से कैसे हो सकता है? इतना ही कहा जा सकता है कि स्वपनावस्था में जागृत अवस्था का बिल्कुल अभाव हो जाता है, किन्तु जागने पर पुनः भास होता है। जागृत अवस्था पार कर लेने पर जागृत जगत यानि यह संसार नहीं भासता। स्वप्न अवस्था को पार कर लेने से स्वप्न जगत भी नहीं भासता। जिस मल के कारण संसार के विक्षेप स्वप्न अवस्था में भासते हैं वह दूर हो जाते हैं। इसी प्रकार माया का वह आवरण जिससे सुषुप्ति भासती है दूर हो जाने पर सुषुप्ति का भी अभाव हो जाता है और तुरिया अवस्था प्राप्त हो जाती है।

१६८—एक व्यक्ति ने प्रार्थना की कि वर्तमान समय ऐसा आ गया है कि भले बुरे का पता लगाना कठिन हो गया है। साधुओं में भी अधिक ठग व ढोंगी हैं। गृहस्थियों को देखो तो धोखेबाज नज़र आते हैं। किसी भले मनुष्य को बोलने नहीं देते, या उसे अपनी धूर्तता से परास्त कर देते हैं फिर भले बुरे का निर्णय कैसे हो? कृपा करके कोई सहज युक्ति बतलाइये।

श्री महाराज ने फरमाया कि जब आप स्वयं ही यह कहते हैं कि

धूर्तों और ढोंगियों की संख्या अधिक है तो ज़ोर उन्हीं का होगा जिनकी गिनती अधिक होगी। इस कारण जिस साधु की बहुत लोग निन्दा करें और भला बुरा कहें उसे ही अच्छा समझना चाहिये क्योंकि हित की बात कहता होगा जो कि ढोंगियों को पसन्द नहीं आती। जिस गृहस्थी को अधिक मनुष्य बुरा कहेंगे और हाथ धोकर उसके पीछे पड़ जाये उसी को भला व भद्र पुरुष समझना चाहिये।

क्योंकि वह कहेगा जुआ मत खेलो, चोरी मत करो, दुराचार मत करो, पराई बहूबेटी को कुदृष्टि से मत देखो बुरे लोगों को ये बातें कब आयेंगी वे तो हाथ धोकर सद्गृहस्थ के पीछे पड़ जायेंगे जो धनवान होता है लोग उसको भी देखकर ईर्ष्या करते हैं कुछ कहते हैं कैसी मौज उड़ा रहा है, कुछ कहते हैं कि कैसे शादी ब्याह करता है हम लोगों को पूछता भी नहीं। किसी की कीर्त्ति यश फैली हो उसको भी कुछ बदनसीब लोग बुरा ही कहते हैं और उसके यश को कलंकित करने का प्रयत्न करते रहते हैं।

एक व्यक्तिने प्रश्न किया कि—शीतप्रसाद और चरणामृत के बारे में आपकी क्या राय है। क्या यह ज़रूरी बात है या परम्परा है। इसका लाभ क्या है।

श्री महाराज ने उत्तर दिया कि हम तो किसी को शीतप्रसाद के लिये कहते नहीं, न चरण धोने के लिये ही कहते हैं यदि कोई ज़िद करके पैर धोना चाहता है तो केवल अँगूठा धुलवा लेते हैं, श्रद्धालु से किसी न किसी यत्न से पीछा छुड़ाना चाहिये। हम इस लाभ के बारे में क्या कहें और एक सेवक की तरफ इशारा करके फरमाया कि इस बारे में इनको कुछ मालूम हो तो पूछ लो। पूछे जाने पर उस व्यक्ति ने उत्तर दिया कि इन दोनों बातों के लाभ का शास्त्रों में वर्णन है उनमें देख लेना चाहिये। एक उदाहरण तो मैं कहता हूँ कि शबरी बेरों को चख-चख कर रखती थी। जब श्री रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी शबरी के आश्रम में पधारे, शबरी ने दोनों भाईयों को प्रेम से बेर दिये श्रीराम ने तो खा लिये लेकिन लक्ष्मणजी ने आँख बचाकर फेंक दिये वह बेर जिस पहाड़ पर जाकर गिरे उसका नाम द्रोणगिरी पर्वत हुआ उन बेरों की गुठलियों से जो पौधे पैदा हुये वे शकल में बेर के समान थे। जो असल में संजीवनी थी जब एक भक्त के झूठे बेरों में इतना असर पैदा हो गया कि

बेरों की बजाय संजीवनी भक्ति आ गई तो गुरु जो गोविन्द के स्वरूप हैं उनके शीतप्रसाद में क्या असर होगा ऐसा आप विचार लें । शबरी के आश्रम के पास एक सरोवर था जिसमें कीड़े हो गये थे । इस कारण सरोवर का जल पीने और स्नान के योग्य नहीं रहा जो ऋषि मुनि वहाँ रहते थे उनको जल की बहुत कठिनाई हुई उनको इस बारे में जब श्री रामश्चन्द्रजी से प्रार्थना की तो श्री रामचन्द्र जी ने शबरी के चरण उस सरोवर में धुलवा दिये । जिससे कीड़े दूर हो गये, जल पीने तथा स्नान के लायक हो गया । जब शबरी के चरणों के धोने की इतनी महिमा है तो गुरुदेव के चरणों के धोने की क्या महिमा होगी ।

एक व्यक्ति ने पूछा कि स्वधर्म क्या है ?

श्री महाराज ने फर्माया कि स्वधर्म का अर्थ यह है कि अपना और दूसरों का समान रूप से भला हो जैसे किसी किसान का मासिक खर्चा ५० रुपये हैं । यदि उसने सर्व साधारण के भोजन आदि के लिये अनाज पैदा किया और अपने लिये छः महीने या साल भर का अनाज रख कर बाकी वाजिब मोल पर बेच दिया तो यह उसका स्वधर्म कहलायेगा । अगर वह अनाज की जगह पोस्त गन्ना या ऐसी वस्तु पैदा करे जिसकी उसे कीमत ज्यादा मिले यदि वह इस धन से भोग विलास के सामान इकट्ठे करले और ऐसा करके खूब धन भी इकट्ठा करले फिर खेती करना छोड़ दे यह स्वधर्म नहीं हैं । जो चाकर अपने पद के अनुसार भोजन वस्त्र प्राप्त करने की इच्छा से चाकरी करता है वह स्वधर्मी है । जो अपने पद से बढ़ कर रहन-सहन का जीवन व्यतीत करता है वह स्वधर्मी नहीं है ।

इसी प्रकार सब कार्य व्यापार और उद्योग धन्धों पर विचार कर लो । इसी नियम पर चारों वर्णों के कर्म को ठहरा लो । जो ब्राह्मण और लोगों को सद्उपदेश करता है, कथा वार्त्ता सुनाता है, भगवत पूजा और ध्यान का उपदेश करता है तथा निर्वाह मात्र धन ग्रहण करता है वह स्वधर्मी है । जो वृक्ष आपने लगाया है वह समय पाकर अपनी किस्मत के लिहाज से कम या ज्यादा फल ज़रूर देगा । फिर पाँच या छः साल तक इच्छा करके अपने दिल दिमाग को सोच-सोच कर परेशान करने से क्या लाभ । इच्छा

करने से ऐसा तो हो नहीं सकता कि आम ही आम लग जावें, यदि फल की शीघ्रता है तो पानी खाद से उस पौधे की रक्षा करनी चाहिये इसी तरह मनुष्य को भी कर्म करते रहना चाहिये। दूसरी बात यह है कि कर्म करते हुये भी किसी आफत या आधि दैविक ताप अथवा कोप हो जैसे बिजली गिरना अति वर्षा बाढ़ या सूखा पड़ना या किसी बुरे आदमी के हाथ से पेड़ काटे जाने पर फल प्राप्ति नहीं होती है तब उसके नष्ट होने पर आशा से हार्दिक दुख होता है वह भी कम होगा तथा चिन्ता से मुक्त रहेगा। क्या यह लाभ कम है। ऊपर लिखे उपद्रवों से बचने के लिये शास्त्र मना नहीं करता, जितना भी यत्न हो सके उतना जरूर करना चाहिये। फल को ईश्वर आधीन इसलिये रखा है कि उन बाधाओं में से बहुत सी ऐसी हैं उनमें मनुष्य का वश नहीं चलता वह दैव की इच्छा पर रहती है। इसलिये कर्मफल को दैवाधीन माना गया है। अगर इन बाधाओं के भय से कोई आम का वृक्ष ही न लगावे तो वह स्वयं ही नहीं बल्कि और भी प्राणी आम नहीं खा सकेंगे। मनुष्य अपने शरीर की रक्षा स्वभाविक रूप से करता है और उसके लिये सामिग्री एकत्रत करता है इसी प्रकार सब शुभ कार्यों के लिये स्वभाविक क्रिया करनी चाहिये। कर्म करते समय अधिकारी और अनाधिकारी का विचार करना भी आवश्यक है। इसका लाभ भी प्रत्यक्ष है। प्राण अर्पण करके सबकी रक्षा करता है निर्वाह मात्र धन पर सन्तोष करता है वह स्वधर्मी है। जो वैश्य चाहे करोड़ों की सम्पत्ति इकट्ठी कर लेता है लेकिन उसे अपने निजी खर्च में नहीं लगाता और धमार्थ कार्यों में जैसे कुआ धर्मशाला आदि बनवाने में लगाता है वह स्वधर्मी है यदि यही धन अपने परिवार या अपनी प्रसिद्धि में लगाये तो वह कुधर्मी है। यदि शूद्र निष्काम सेवा करे और स्वामी उसके जीवन निर्वाह का पूरा प्रबन्ध करता रहता है तो दोनों स्वधर्मी है। स्वधर्म का असली अर्थ यह है कि जिस धर्म और कर्म में अपनी आत्मा की उन्नति हो वही स्वधर्म है।

एक व्यक्ति ने कहा कि वर्त्तमान काल को कलियुग कहते हैं, परन्तु कलियुग का तो इसमें नाम ही नहीं प्रत्येक स्थान पर सत्यनारायण की कथा होती है और पूजन होता है। यह सुनकर श्री महाराज मुस्कुराये और

चुप हो रहे। एक सेवक बोल उठे कि सत्यनारायण की कथा तो कथा ही है महिमा तो नकद नारायण की है। कलियुग नकद नारायण का रूप धारण कर संसार को उबार रहे हैं। नकद नारायण की सेवा पूजा में मनुष्य खाना सोना तक भूल जाता है, इसके पीछे अपने पराये हो जाते हैं और मित्र वैरी बन जाते हैं। जहाँ नकद नारायण है वही ६८ तीर्थ पहुँच जाते है और ३३ करोड़ देवता भी वहीं विराजमान रहते हैं।

एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि श्री गीता आदि शास्त्रों में लिखा है कि मनुष्य जो कर्म करता है उसे उसके फल की इच्छा नहीं करनी चाहिये। यदि मनुष्य इच्छा करे तो इसमें क्या अपराध है।

श्री महाराज ने फर्माया कि जिस व्यक्ति ने आम का वृक्ष अच्छी धरती में यदि कोई बंजर या खार वाली धरती में आम का वृक्ष लगाये तो वृक्ष जड़ नहीं पकड़ेगा और उगेगा नहीं। फल का लगना तो दूर रहा। यही कारण है कि शास्त्रों ने कर्म करते रहने और उसके फल की इच्छा न करने बल्कि फल को ईश्वराधीन समझ कर कर्म को ईश्वर अर्पण करने का उपदेश दिया है।

एक व्यक्ति ने विनय की कि पहले लोगों में बहुत मेलजोल होता था। कुनबे के कुनबे एक साथ रहते थे और एक दूसरे की सहायता करते थे। अब ऐसा जमाना है कि भाई का भाई के साथ और बेटे का बाप के साथ निर्वाह कठिन हो गया है। जिसे देखो अलग-अलग रहता है।

श्री महाराज ने फरमाया कि सृष्टि तो भगवान की ओर से चलती है फिर वह बुरी कैसे हो सकती है। पहले मनुष्यों के आचरण बहुत अच्छे होते थे। वह काम भी मिलकर करते थे। एक और एक मिलाकर ११ का बल मानते थे। वर्तमान समय में बुराई इतनी फैल गयी है कि जहाँ कहीं भी दो मनुष्य का मेल हो वहाँ ११ गुना बुराई बढ़ती है। एक पंथ वाले आपस में मिलकर अपनी उन्नति तो करते नहीं परन्तु दूसरे पंथ वालों का तिरस्कार ज़रूर करते हैं। चोर-चोर में, शराबी-शराबी में और जुआरी-जुआरी में एकदम पूर्ण मेल हो जाता है। एक ने दूसरे को पहले कभी शक्ल न देखी हो तो भी पहली

ही मुलाकात में हम भाई हो जाते हैं। आजकल राजसी मनुष्य एक दूसरे का सिर फोड़ते हैं और तामसी तो लात, घूंसे और हथियारों से सत्कार करते हैं। ऐसे मनुष्यों में किस प्रकार मेल हो सकता है ? न मेल होना ही अच्छा है। ऐसे बुरे मनुष्य जितना अधिक मेलजोल रखेंगे उतना ही अधिक उपद्रव खड़ा करेंगे। इसलिए वर्तमान समय में ऐसी प्रकृति के मनुष्यों से मेल बढ़ाना अच्छा नहीं है। उनमें ही आपस में जूते चलते रहते हैं अतः इसमें ही संसार शहद और शहद की मक्खी को तरह का होना चाहिए। आप मिलकर रहें लेकिन एक दूसरे का नुकसान न करें, बल्कि एक दूसरे को कुछ लाभ ही पहुँचावें। बर्र और ततैये की तरह का मेल अच्छा नहीं कि कोई पास से निकला और डंक मारदे।

एक व्यक्ति ने कहा कि भारत वर्ष के इतिहास से पता चलता है कि जितनी मुसीबत भारत पर आई उतनी किसी और मुल्क पर नहीं आई। एक हजार वर्ष के इतिहास में ही महमूद गज़नवी ने दिल खोल कर लूटा, फिर मोहम्मद गोरी ने फिर तुगलक लोदी, पठान, मुगल और अंग्रेजों ने। एक ताँता सा बँधा रहा। भारतवासी यह कह कर संतोष कर लेते हैं कि उनके खोटे कर्म का फल है। हालाँकि भारतवासियों के कर्म धर्म का अगर दूसरे मुल्क वालों से मुकाबला करें तो पता चलेगा कि यहाँ के आचार विचार संस्कृति और धर्म के मुकाबले में ऊँचे हैं। अन्य देशों के इतिहास में राग रंग ठगी जालसाजी आदि बेधड़क किये जाते रहे हैं वहाँ ऐसी मुसीबतें क्यों नहीं आती। क्या यहाँ का और वहाँ का ईश्वर पृथक-पृथक है।

श्रीमहाराज ने फरमाया कि अतलस, खीमखाब रेशमी और ऊनी कपड़ों में ज़रा भी दाग़ लग जाये तो उसको साफ करने के लिये साबुन लगाते है।

आवश्यकतानुसार उसे मलते-मसलते, कूटते-पीटते और निचोड़ते भी हैं और उसे लोहा भी करते यानि स्त्री के नीचे दबाकर घिसते हैं यदि टाट का कम्बल अन्य मामूली कपड़े पर दाग़ लग जावे तो न तो कोई खास ध्यान ही देता है न धुलाई ही करते हैं न दाग़ ही छुड़ाते हैं। क्योंकि उसका मूल्य ही क्या है कि उसके लिये इतना परिश्रम करें। जिस अवस्था में वह है उसी में पड़ा रहता है।

एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि छुआ छूत के बारे में आपकी राय क्या है ? छूतछात करनी या न करनी चाहिये ।

श्री महाराज ने फरमाया इस विषय में शास्त्रों ने जो आज्ञा दी है उसके विपरीत हम कुछ नहीं कह सकते सफाई व स्वच्छता की सबने प्रशंशा की है । जहाँ छूत से बाधा पड़े वहाँ उसका ध्यान रखना आवश्यक है जैसे किसी को कोढ़ की बीमारी हो या चेचक निकल रही हो या कोई अन्य छूत वाले रोग में ग्रस्त हो चुका हो तो उससे बच कर रहना ही अच्छा है । इसी प्रकार कुछ देश ऐसे हैं जहाँ पास बैठने से घृणा लगती है यह अपने वश की बात नहीं होती यदि इन स्थानों से बचकर ही बैठा जाये तो बुराई की क्या बात है । कुछ स्थान और काल ऐसे हैं जिनमें छूतछात का दोष नहीं माना जाता जैसे तीर्थयात्रा में, नाव आदि की सवारी में, विवाह शादी व मेले के उत्सव में, युद्ध में कहीं आग लग गई हो या धर्म संकट पड़ गया हो तो छूत का विचार नहीं किया जाता ।

एक व्यक्ति ने कहा कि आजकल विद्या का इतना प्रचार है कि पहले कभी नहीं रहा होगा अनेकों बी. ए. व एम. ए. नौकरी की तलाश में फिरते रहते हैं यदि भाग्यवश नौकरी मिल भी गई तो कर्तव्य पालन में दुःख उठाना पड़ता है कोई भी सुख चैन से जीवन व्यतीत करता नहीं दिखता

श्री महाराज ने फर्माया कि आध्यात्मिक विद्या ही सुख देने वाली है और इसका ही आज अभाव है बूरा और जीभ विपरीत गुण वाले हैं मिठास चाहने वाले को रति भर बूरे से मिठास प्राप्त हो जाता है भर-भर के नीम खाने से भी मिठास प्राप्त नहीं होता नीम से जिस प्रकार मिठास प्राप्त करता भूल है उसी प्रकार आजकल की विद्या को विद्या समझना भूल है ।

एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि तीर्थयात्रा करने से क्या लाभ है ? आपके विचार में सबसे अच्छा व बड़ा तीर्थ कौनसा है ?

श्री महाराज ने फरमाया कि संसार के जितने भी कर्म हैं अच्छे अथवा बुरे सभी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन्हीं चारों या इनमें से कोई तीन या दो या एक की प्राप्ति के लिये किए जाते हैं । तीर्थ यात्रा भी एक कर्म है । जिस प्रकार संसार के सब पदार्थ जड़ और चेतन गुणों के प्रभाव से तीन

प्रकार के हैं इसी प्रकार तीर्थ के विभाग भी तीन गुणों के अन्तर्गत हैं। जिस व्यक्ति की जैसी वृत्ति होगी और वैसे ही तीर्थ उसको फलदायक और सुखदायक होगा तथा उसे वैसे ही गुण प्रधान तीर्थ में श्रद्धा होगी। मनुष्य को सबसे बड़ा तीर्थ और सबसे अच्छा काम वह ही समझना चाहिये।

दूसरा भाग तीर्थ का महात्म—वे साधू ब्राह्मण और उपदेशक है जो जगह-जगह पर जाकर धर्म का प्रचार करते हैं और घर बैठे प्राप्त हो जाते हैं अन्यथा उनके लिये दूर देश जाना पड़ता है।

तीसरे स्थावर होते हैं ये नियत स्थानों पर स्थापित होते हैं इनके तीन भाग हैं। (क) जैसे शरीर के कुछ अंग पवित्र समझे जाते हैं उसी प्रकार पृथ्वी के कुछ स्थान पवित्र समझे जाते हैं उनको तीर्थ कहा जाता है जैसे—गङ्गा, गोदावरी आदि बहुत प्राचीन काल से पवित्र तीर्थ माने जाते हैं। (ख) जो स्थान अवतारों के जन्म स्थान हैं या जहाँ लीला की गई है वे स्थान पवित्र माने जाते हैं जैसे—गोकुल, वृन्दावन, नन्दगाँव, बरसाना, अयोध्या आदि। (ग) जहाँ सन्त महात्माओं ने तप किया हो या निवास किया हो या जहाँ उन्होंने शरीर त्यागा हो। जैसे—रोड़ी स्थान, कबीर चौरा, गोरख टीला और दादूजी की समाधि। इनमें से कुछ सुगम हैं न तो शरीर को जाने में कष्ट होता है और नहीं विशेष धन लगता है। कुछ दुर्गम है जहाँ जाना शरीर को कष्टदायक तो है ही पैसा भी अधिक लगता है। किसी भी प्रकार का तीर्थ किया जाता है तो दान-पुण्य, भोजन किराया भाड़ा तो खर्च के साधन बनते हैं। अगर शारीरिक कष्ट को और कम करें तो धन ज्यादा लगेगा। किसी ने सच ही कहा है कि—

"परदेश कलेश नरेशन को"

साधारण मनुष्य तो उस कष्ट से बच ही नहीं सकता। मनुष्य श्रद्धा और भावना से प्रेरित होकर कष्ट और खर्च दोनों को सहता है। मशहूर कहावत है कि यात्रा या तो राजा करता है या रंक इससे स्पष्ट है कि राजा धन से रंक अपने पैरों के बलपर यात्रा करता है। लाभ की बात पर ज्यादा कहने की जरूरत नहीं। संसार भर में किसी भी मतमतान्तर के मनुष्य ऐसे न होंगे जो अपने तीर्थ को देखना, अवतारों की लीला को देखना और संत महा-

त्माओं के भजन के प्रताप से जिन स्थानों का महत्व शुरू हो गया है उनसे उसका चित्त प्रभावित न होता हो। मार्ग में जो स्थान पड़ें उनको देखना वहाँ की सभ्यता का ज्ञान प्राप्त करना आदि से अनेक लाभ हो सकते हैं।

(१३८) एक व्यक्ति ने अंग्रेजों की बड़ी निन्दा करी कि वे भारतवासियों से बड़ी घृणा करते हैं अगर भारतीयों को अफसर बना दिया जाये तो इतनी आसानी तो अवश्य हो जायेगी कि अपना दुःख दर्द कहा जा सकता है।

श्री महाराज ने फरमाया कि जो आप लोग चाहते हैं वह बात तो ठीक है। लेकिन अवगुण के साथ प्रत्येक मनुष्य के गुण भी देखने चाहिये। समय और बात की पाबन्दी जितनी अंग्रेज करते हैं भारतवासी नहीं करते जो भारतीय अफसर हो गये हैं उनका चरित्र मुख से बोल रहा है। घंटा भर की देरी भारतीय अफसरों में कुछ देरी नहीं समझी जाती। किसी भी भारतीय अधिकारी को देखलो वह किसी सभा का प्रधान हो या कहीं उसका प्रवचन हो तो व्यक्ति यही गिला करते पाने हैं कि घंटा भर इन्तज़ार करने के पश्चात प्रधान जी पधारे सभी जनता बैठे-बैठे एक दूसरे का मूंह ताक रही थी। अंग्रेज़ों में चाहे कोई कितना भी बड़ा अफसर हो ठीक समय से ही पहुँचेगा चाहे दो पहर के बारह क्यों न बजे हो। अंग्रेज़ वचन के पक्के होते हैं जो कह देते हैं वह पूरा करके दिखाते हैं। वास्तव में मनुष्य का उत्तम गुण वचन का पक्का होना ही होता है। ब्राह्मण का वाक्य तो ब्रह्म वाक्य माना जाता है। राजपूत और पठान तो बात के पीछे अपनी जान तक दे देते हैं। वर्तमान समय में भारतीयों की बात में कहाँ तक सच्चाई रह गई है यह बात छिपी हुई नहीं है। अंग्रेज़ अफसर इस समय में भी गनीमत हैं, जो समय और अपने वचन के पाबन्द हैं।

(१३९) एक व्यक्ति ने कहा कि पश्चिमी देशों ने जैसे—योरोप, अमेरिका में विज्ञान ने कैसे २ सुख आराम के सामान उत्पन्न कर दिये हैं जिनका वर्णन पढ़कर सुनकर ही आश्चर्य होता है भारत में तो उनका शतांश भी नहीं नज़र आता। अस्पताल सिनेमा थियेटर, और सर्कस आदि के जो थोड़े से साधन हैं वे मात्र साधन हैं। आम जनता के लिये नहीं हैं गाँव वालो का जीवन

इसकी तुलना में बहुत फीका है। वही हल वही बैल और वही खेत। हुक्का भर कर पीना ही केवल मात्र उनके लिये सुख सुविधा का साधन है।

श्रीमहाराज ने फरमाया कि हमारे जो प्रेमी बहुत समय तक विलायत रह कर वापिस आये हैं वे तो कहते हैं कि वहाँ के शहर और गाँव में भी बहुत अन्तर है। ऐसा ही अन्तर है जैसा भारत में। यदि सुख भोग की सामग्री वहाँ सुलभ है तो उससे जो हानि लाभ हुआ है उस पर भी तो विचार करिये। पहले साधारण भारतीय का खर्च कितना कम था और अब कितना बढ़ गया है इस बढ़े हुए खर्च को पूरा करने के लिये कितनी दौड़-धूप करनी पड़ती है इसके साथ झूठ, फरेब, चोरी बेइमानी कितनी बढ़ गई है। अपराधों की रोकथाम के लिये पुलिस अदालतों का कितना खर्च बढ़ गया है। चाय कौफी के अल्पाहार से, सिनेमा आदि मनोरंजन के साधनों से क्षय प्रमेह आदि रोग आम होने लगे हैं क्या पहले भी इतने रोग होते थे जब रोग बढ़े तो अस्पतालों और दवाओं का बढ़ाना भी जरूरी हो गया। ऐसे भयंकर रोगों के कारण मृत्यु संख्या भी बढ़ गई है और साथ में घरों की तबाही होती जा रही है मशहूर कहावत है कि "जिस सोने के पहनने से कान कटे भाड़ में जायें।" अगर पहले की तरह मनुष्य स्वास्थ होते और यह आचार विचार न होते तो ज़्यादा अच्छा था। यदि यह सभ्यता और प्राण लेना रोग साथ-साथ चलते रहें तो अच्छा है कि भारत के गाँवों में जहाँ नवीन आचार-विचार का प्रचलन नहीं हुआ है वहाँ वर्तमान दुःखों की तुलना में दुःख भी कम हैं। बहुधा गाँव वालों को अस्पतालों की जरूरत नहीं होती रोग भी मामूली होते हैं जिनका इलाज वे स्वयं कर लेते हैं। उनका स्वास्थ्य शहर वालों की तुलना में कहीं अच्छा होता है। वर्तमान भौतिकवाद का ही परिणाम है कि मनुष्यों का चरित्रबल और देहबल धीरे-धीरे मिट रहा है। आप इस भौतिकवाद की प्रशंसा कर रहे हैं। यह हालत तो केवल इस जगत व्यापार की है। कभी इसका भी विचार करिये कि जिससे स्थाई सुख व लाभ नहीं है बल्कि क्षणिक है जिसके न मिलने से क्षोभ होता है उसे हमारी राय में तो सुख का साधन नहीं कहना चाहिये। यह मात्र एक भुलावा है। भौतिकवाद ने जो साधन स्थापित किये हैं उनका व्यय जनता से कर के रूप में वसूल कर लिया जाता

है। इतने से काम नहीं चलता तो व्यय राजकोष से दिया जाता है। यह राजकोष भी गाँवों से भूमिकर के रूप में वसूल होता है। आजकल तो गाँव वाले मेहनत करते हैं शहर वाले मौज उड़ाते हैं।

(१४०) एक व्यक्ति ने कहा कि संसार में सबसे पहला अवतार जो परमात्मा का हुआ उसने सब तरह के मनुष्य मात्र की भलाई के लिये अच्छे काम अवश्य बताये होंगे क्या वह काम कालान्तर के भेद से उचित नहीं हैं यदि हैं तो भगवान के बार-बार अवतार लेने की आवश्यकता क्या है।

श्री महाराज ने फरमाया कि देश काल पात्र और गुणों के भेद से सामाजिक साधारण नियमों में परिवर्तन होना अर्थात् नीति-रीति में परिवर्तन की आवश्यकता होती है। प्राचीन कानून को मिटाया नहीं जाता वरन् उसमें संशोधन की आवश्यकता होती है। जिस समय में राजा नहीं थे तब उनके सम्बन्ध में नीति स्थापन करने की आवश्यकता नहीं थी। जब राजा बने तो उनके लिये नीति का स्थापित होना भी जरूरी हो गया। एक समय था सभी राजा अपने राज्य से सन्तुष्ट थे दूसरों का राज्य लेने की इच्छा न करते थे। वर्तमान समय में तो दूसरे का राज्य छीनने को समुद्र पार कर, पहाड़ लाँघ कर जाते हैं, आकाश से उड़ कर जाते हैं। एक समय में कला कौशल समान्यता घरेलू काम चलाने को थे, वर्तमान समय में कला-कौशल द्वारा दूसरों को प्रभावित कर अपनी सत्ता जमाना चाहते हैं। पहले स्वतन्त्रता का जीवन सबको पसन्द था चाहे रूखी रोटी व मोटा कपड़ा क्यों न मिले, चाकरी करना कोई नहीं चाहता था। चाकर और कूकर को समान समझते थे। पहले रईसों के घर नौकरों को खाना व कपड़ा मिलता था अब जो हजारों मज़दूर कारखानों में काम करते हैं उन्हें मज़दूरी मिलती है जिससे पेट भर खाना और तन ढकने को कपड़ा भी पूरा नहीं हो सकता सारा मुनाफा मालिक की तिजोरी में चला जाता है। पहले विवाह की रस्म नहीं होती थी जब से यह शुरू हुआ है इसके भी नियम बना दिये गये हैं। प्राचीन कालमें स्त्री पुरुष बड़े मेल से गृहस्थी चलाते थे सादा जीवन व्यतीत करते थे। अब रागरंग के सामान जो केवल रईसों के थे गाँवों की झोपड़ियों में भी दिखाई देते हैं। पहले गाँव में १०० में से पाँच घर भी पक्के नहीं होते थे वहाँ अब कई मंज़िल के मकान

हैं। जब पुरुष की कमाई से पूरा नहीं पड़ता तब स्त्रियों को कमाना पड़ता है जिससे कई बार सदाचारी स्त्रियों को भी बदनामी उठानी पड़ती है। अत्याचारी को अत्याचार से रोकने के लिये, निर्बल की सहायता के लिये कोई सत्ता ज़रूर होनी चाहिये। साधारण मनुष्य न तो ऐसे नियम बना सकता है और ना ही उसके नियमों पर कोई चलता है। ऐसे कामों के लिए कोई ऐसा मनुष्य होना चाहिए जिसमें शारीरिक मानसिक और आत्मिक बल संयम साधारण मनुष्य से अधिक हों जो ऐसा व्यक्ति होता है उसे अवतार कहते हैं।

(१४१) एक व्यक्ति ने पूछा कि किसी शास्त्र में लिखा है कि घर बार त्यागे बिना मुक्ति नहीं मिलती और किसी शास्त्र में लिखा है कि घर में रह कर भी मोक्ष प्राप्त की जा सकती है। इनमें से कौन सी बात ठीक है?

श्री महाराज ने फरमाया कि अपने-अपने स्थान पर दोनों बातें ठीक हैं। जब जिज्ञासु, भजन, पूजन, वैराग्य-विवेक का अभ्यास करता है तो उसकी प्रकृति में परिवर्तन होने लगता है तमोगुण से रजोगुण तथा रजोगुण से सतोगुण क्रमशः बढ़ने लगता है। ज्यों-ज्यों सतोगुण बढ़ता है इन्द्रियों के विस्तार में सूक्ष्मता आने लगती है। घर वालों, यार-दोस्त और व्यवहारी मनुष्य जो भजन नहीं करते उनकी प्रकृति से भेद व्यवहार स्पष्ट ज्ञात हो जाता है। इन्द्रियों में सूक्ष्मता होने के कारण जिज्ञासु को इस विरोधाभास से चित्त में दुःख होता है और प्रायः भजन में बाधा पड़ती है। इस कारण ऐसी अवस्था में त्याग की आवश्यकता होती है। यदि संग अच्छा हो विरोध न फैले और भजन अभ्यास आसानी से चलता जाये तो त्याग आवश्यक नहीं है। जब घर में रह कर ही भजन और अभ्यास से वृत्ति सतोगुणी हो जाये और सतोगुणी अवस्था प्राप्त हो जाये, ईश्वर नियमों का अनुभव हो जाये कि हर जीव अपनी प्रकृति और गुणों के अनुसार ही काम करता है तो जिज्ञासु का चित्त दुःखी नहीं होता। जैसे—शूकर और कूकर स्वभाव से ही मैला खाते हैं, कुत्ते और बिल्ली का स्वाभाविक वैर है। इसका भेद प्रकृति की भिन्नता है। इस भेद की वास्तविकता जानने पर चित्त दुःखी नहीं होता। भाई-बन्धु, घर गृहस्थी वाले, पड़ौसी, मित्र आदि भले ही साधक का विरोध करें, परन्तु जिज्ञासु का चित्त समता भाव और प्रकृति के भेद के ज्ञात होने से इससे दुःख प्रतीत नहीं करता

ऐसी अवस्था में भी त्याग आवश्यक नहीं है। मीरा बाई ने वर्षों गृहस्थी में रह कर विरोध सहा लेकिन वृत्ति ऊँची से ऊँची होती गई। जब विरोध की हद हो गई तो रैदास जी ने त्याग की राय दे दी तब मीरा ने गृह त्याग किया किन्तु वह गृहस्थी में रह कर ही सब कुछ प्राप्त कर चुकी थी।

(१४२) एक व्यक्ति ने कहा कि हिन्दू जाति में धर्म की मान्यता अधिक है; परन्तु मेलजोल नहीं है जिसको देखिये मान बड़ाई और स्वतन्त्रता चाहता है।

श्री महाराज ने फ़रमाया जिसमें धर्म की मान्यता है उसमें और किसी बात की आवश्यकता नहीं। मेलजोल से बन्धन बढ़ता ही है। स्वतन्त्र स्त्री पुरुष परस्पर मेल करते हैं फिर बेटा-बेटी-दामाद-बहू नाना प्रकार के बन्धनों में बन्धते जाते हैं। बन ढोड़ा पृथक पैदा होता है उसी में उसका बीज रहता है जिसे बिनौला कहते हैं। उसी के सूत से रस्सी आदि बनाये जाते हैं जो दूसरों को बाँधने के काम में आते हैं। मेल से पहले अपना ही बन्धन होता है फिर दूसरों का बन्धन होता है यह कौनसी बुद्धिमानी की बात है कि हम पहले अपने को बाँधे फिर दूसरों को भी बन्धन में डालें। मनुष्यों के जाति बिरादरी के परस्पर मेल के अन्दर बन्धन की भावना भरी पड़ी है। बन्धन का परिणाम कभी भी अच्छा नहीं होता। जिस व्यक्ति या जाति में धर्म है उसको मेल की आवश्यकता नहीं होती। सांसारिक लाभ उठाने के लिए मेल और बन्धन की आवश्यकता होती है। रुई के एक बीज से हज़ारों मन कपास पैदा हो सकती है बीज के निकल जाने पर कपास पैदा नहीं हो सकती और वह बन्धन ही के काम की रह जाती है। अधिक मेलजोल करने वाले भगवान को भूल जाते हैं। स्वतन्त्र मनुष्य अपने अन्दर विराजमान उस प्रभुवर जो संसार में व्याप्त है पर ही भरोसा रखता है वह सदैव कहता है कि जैसी दैव इच्छा होगी वैसा ही होगा। जहाज का पंछी जानता है कि इस अथाह समुद्र में जहाज के सिवाय और कोई सहारा नहीं है।

(१४३) एक व्यक्ति ने विनय की कि जब मैं ब्रह्म हूँ तब यह जो नाना प्रकार के साधन और भजन पूजन इनके करने की क्या आवश्यकता है।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि हमारी हृदय रूपी पट्टी पर जो प्रकृत्ति और संस्कार के विषय रूपी अक्षर लिखे हुए हैं जब तक वे धुल न जावें तब

तक उस पट्टी पर कुछ नहीं लिखा जा सकता। जो शीशा मैला हो उसमें मुख का प्रतिबिम्ब स्पष्ट नहीं दीखता, हिलते हुए जल में भी प्रतिबिम्ब साफ नहीं दीखता। भजन-पूजन और साधन हृदय रूपी पट्टी को साफ करने के लिए और चंचल चित्त को स्थिर करने के लिए ही हैं। दूसरे शब्दों में यों समझिये कि प्रवृत्ति और संस्कार के कारण जो विषय हमारी प्रकृती में हैं उन्हें नष्ट करने के लिए साधन भजन आवश्यक हैं।

(१४४) एक व्यक्ति ने कहा कि भक्तमाल में प्राचीन भक्तों का वर्णन किया गया है अगर हाल ही में कोई भक्त हुआ है तो वर्णन कीजिये।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि वृन्दावन में संगमरमर के वलदार खम्भों का जो मन्दिर है वह शाहजी ने बनवाया है यह भी बड़े भक्त थे रासलीला में उनकी बड़ी निष्ठा थी उन्होंने एक लाख रुपये की लागत का मुकुट भगवान के स्वरूप के लिए बनवाया था। दो लीलाएँ उन्होंने बनायी हैं।

(१) नौका लीला—जिसमें दिन छिपे गोपियाँ दूध दही बेच कर लौटीं तब नाव बन्द हो चुकी थी उनको यमुना पार होना था श्रीकृष्ण छोटी सी नाव लेकर प्रगट हुए और पार लगाने के लिए यह शर्त लगाई कि जो मक्खन आदि बचा हो हमें खिलादो, जो जेवर आदि पहने हो हमारे हवाले करदो, तब हम एक-एक गोपी को पार उतारेंगे। इस पर किसी गोपी ने इन्कार कर दिया। जिनका दृढ़ प्रेम था और श्रीकृष्ण में विश्वास था, जो सब कुछ भगवानको अर्पण कर चुकी थीं उन्होंने शर्त मंजूर कर लिया यह केवल उनके प्रेम की परीक्षा थी। (२) दूसरी लीला में राधा जो अपने प्रेम और निष्ठा को इस प्रकार प्रगट करती है कि मुझे तो एक बात की चाह है कि आप मेरे सामने बैठे रहा करें और मैं आपको देखा करूँ, आपसे ही बातें किया करूँ तथा आपके ही साथ खाना खाया करूँ और घूमा फिरा करूँ "मों को तो सुख प्यारो तेरे संग ही रहने में" अर्थात् आपसे पृथक मुझे किसी वस्तु में सुख नहीं। यह दोनों लीलायें प्रेम को दर्शाने वाली हैं।

(१४५) एक व्यक्ति ने विनय की कि मूर्त्ति और मन्दिरों को तोड़ने से आक्रमणकारियों को क्या लाभ हुआ? यह काम साधारण मनुष्यों ने नहीं किया

बल्कि बड़ी से बड़ी हस्थियों ने किया। आश्चर्य है कि ऐसे बड़े व्यक्तियों का इतना तङ्ग दिल था।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि जिस काम में बुराई और त्रुटि आजाती है उसे दूर करने के लिए प्रभु कुछ न कुछ कारण अवश्य उत्पन्न करते हैं यह कार्य ऐसे मनुष्यों द्वारा कराया जाता है जिनका भविष्य में पतन होना ज़रूरी होता है। वास्तव में न तो इस संसार में मन्दिर मिटे और नहीं पूजा ही गयी। मिटते भी कैसे जड़मूल से तो केवल वह वस्तु मिटती है जो ईश्वरीय इच्छा के विरुद्ध हो। ईश्वरीय इच्छा के विपरीत जो मिटाना चाहता है उनका खुद का जड़मूल से ऐसा नाश हो जाता है कि "न रहे नाम लेवा न पानी देवा"। हठ और जिद किसी की भी उचित नहीं बड़े व्यक्तियों को तो यह बिल्कुल भी शोभा नहीं देता। जो व्यक्ति किसी की आत्मा को दुखाने का काम किसी भी बहाने करता है उसका फल कभी अच्छा नहीं होता।

(१४६) एक व्यक्ति ने कहा कि श्रीकृष्ण जी की लीलाओं को कई प्रकार से समझाने का प्रयत्न किया जाता है, परन्तु मेरी समझ में एक बात नहीं आई कि यदि लीला की भी गई तो थियेटर में जो लोग लीला करते हैं उनको वेतन मिलता है और उनकी प्रसिद्धि होती है इसके विपरीत गोपियों को कुछ भी लाभ नहीं हुआ बल्कि बदनामी ही हुई।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि लीला से प्रत्येक जगह लाभ नहीं होता। बहुत से लोग पाठशाला में ड्रामा करते हैं उन्हें धन का लाभ नहीं होता वह केवल मनोरंजन के लिए होता है। इन लीलाओं में कवि वाचकों का अप्रत्यक्ष लाभ रहता है जो विचार करने से प्रतीत हो जाता है। गोपियों ने जिस भाव से भगवान को भजा उससे उनको लाभ अवश्य पहुँचा! अन्य मनुष्य इस लाभ को क्या जान सकते हैं। गोपियों के ही उदाहरण को लीजिये राधाजी ने तन, मन, धन सब भगवान को अर्पण कर दिया था। उनके साथ रात दिन खेल कर पास बैठ कर भगवान ने उनको काम क्रोध आदि से रहित कर दिया। किसी पदार्थ का रस तो हाथ से निचोड़ने पर ही निकल जाता है किसी को कूट पीस कर निकाला जाता है, सूखी वस्तुओं को पानी में भिगोकर रस निकाला जाता है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण ने नाना प्रकार की लीलाओं द्वारा

राधाजी के अङ्ग-प्रत्यङ्ग को छू कर काम-क्रोध रूपी रस को निकाल दिया था। यह पद केवल राधाजी को प्राप्त हुआ है। चन्द्रावलि सखी को अपने रूप पर बड़ा गर्व था इसके कारण ही वह कंस के पहुँच गई। राधाजी को भी वहाँ बुलाया गया राधाजी ने भगवान से प्रार्थना की कि मैं वहाँ जाना नहीं चाहती, भगवान ने कहा कि कंस मान धन यौवन से सम्पन्न है फिर वहाँ क्यों नहीं जाना चाहती? यह परिवर्तन तुम्हारे चित्त में कैसे हो गया। फिर भगवान ने राधाजी को विराट स्वरूप दिखाया। तब उन्हें ज्ञात हुआ कि जो लीलाएँ श्रीकृष्ण ने की उनके द्वारा हमारे काम क्रोध आदि के रस को निचोड़ कर हमें व्याधियों से निवृत्त कर दिया। ललिता सखी ५०० वर्ष में न मालुम कितने जन्म लेने के बाद इस पद को पहुँची। राधाजी को यह अनुभव करा दिया कि साथ रहने से ही तुमको काम नहीं व्यापता है। इनका सब रस खींच लिया तब वह श्रीकृष्ण की महिमा को समझी। यही काम सतगुरु का भी है जिज्ञासु और सच्चे साधक को यह निर्णय करते रहना चाहिए कि गुरु के उपदेश से उनकी संगति से और उनकी सेवा आदि से हमारे काम क्रोध आदि रसों की निवृत्ति हो रही है कि नहीं? यदि हो रही हो तो उसमें लगे रहना चाहिए यदि हो चुकी हो तो बात ही क्या।

[१४७] एक दिन धन और धनवानों की बात हो रही थी किसीने कहा धन सब अनर्थों की जड़ है। बस पेट भरने को रोटी और तन ढकने को कपड़ा मिलना चाहिए धन जोड़ना और बटोरना मूर्खता है। इससे बड़े-बड़े अनर्थ होते हैं। जब काफी बातचीत हो गई तब श्री महाराज से इसका जिक्र किया गया तब उन्होंने फ़रमाया कि आप लोगों से सहमत नहीं हैं हमारा तो यह विचार है कि धर्म धन कमाओ और उसे संचित करने का यत्न भी करो धनवान तो किसी दूसरे की आवश्यकता पूरी कर सकता है। धर्मात्मा पुरुषों ने ही तो धर्मशालाएँ, अनाथालय, विधवाश्रम, पाठशालाएँ बनवा कर जनता की सहायता कर देश को अधोपतन से बचाया है। धनवान ही तीनों आश्रमों यानि ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ संन्यास का पालन करते हैं और उनके चलाने में सहायता देते हैं। वरना ब्रह्मचारी क्या खाकर पढ़ेंगे और वानप्रस्थ क्या खाकर तप करेंगे अगर धनवान धन से सहायता न करेंगे तो।

ऐसी अवस्था में भी त्याग आवश्यक नहीं है। मीरा बाई ने वर्षों गृहस्थी में रह कर विरोध सहा लेकिन वृत्ति ऊँची से ऊँची होती गई। जब विरोध की हद हो गई तो रैदास जी ने त्याग की राय दे दी तब मीरा ने गृह त्याग किया किन्तु वह गृहस्थी में रह कर ही सब कुछ प्राप्त कर चुकी थी।

(१४२) एक व्यक्ति ने कहा कि हिन्दू जाति में धर्म की मान्यता अधिक है; परन्तु मेलजोल नहीं है जिसको देखिये मान बड़ाई और स्वतन्त्रता चाहता है।

श्री महाराज ने फ़रमाया जिसमें धर्म की मान्यता है उसमें और किसी बात की आवश्यकता नहीं। मेलजोल से बन्धन बढ़ता ही है। स्वतन्त्र स्त्री पुरुष परस्पर मेल करते हैं फिर बेटा-बेटी-दामाद-बहू नाना प्रकार के बन्धनों में बन्धते जाते हैं। बन ढोड़ा पृथक पैदा होता है उसी में उसका बीज रहता है जिसे बिनौला कहते हैं। उसी के सूत से रस्सी आदि बनाये जाते हैं जो दूसरों को बाँधने के काम में आते हैं। मेल से पहले अपना ही बन्धन होता है फिर दूसरों का बन्धन होता है यह कौनसी बुद्धिमानी की बात है कि हम पहले अपने को बाँधे फिर दूसरों को भी बन्धन में डालें। मनुष्यों के जाति बिरादरी के परस्पर मेल के अन्दर बन्धन की भावना भरी पड़ी है। बन्धन का परिणाम कभी भी अच्छा नहीं होता। जिस व्यक्ति या जाति में धर्म है उसको मेल की आवश्यकता नहीं होती। सांसारिक लाभ उठाने के लिए मेल और बन्धन की आवश्यकता होती है। रुई के एक बीज से हज़ारों मन कपास पैदा हो सकती है बीज के निकल जाने पर कपास पैदा नहीं हो सकती और वह बन्धन ही के काम की रह जाती है। अधिक मेलजोल करने वाले भगवान को भूल जाते हैं। स्वतन्त्र मनुष्य अपने अन्दर विराजमान उस प्रभुवर जो संसार में व्याप्त है पर ही भरोसा रखता है वह सदैव कहता है कि जैसी दैव इच्छा होगी वैसा ही होगा। जहाज का पची जानता है कि इस अथाह समुद्र में जहाज के सिवाय और कोई सहारा नहीं है।

(१४३) एक व्यक्ति ने विनय की कि जब मैं ब्रह्म हूँ तब यह जो नाना प्रकार के साधन और भजन पूजन इनके करने की क्या आवश्यकता है।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि हमारी हृदय रूपी पट्टी पर जो प्रकृति और संस्कार के विषय रूपी अक्षर लिखे हुए हैं जब तक वे धुल न जावें तब

तक उस पट्टी पर कुछ नहीं लिखा जा सकता। जो शीशा मैला हो उसमें मुख का प्रतिबिम्ब स्पष्ट नहीं दीखता, हिलते हुए जल में भी प्रतिबिम्ब साफ नहीं दीखता। भजन-पूजन और साधन हृदय रूपी पट्टी को साफ करने के लिए और चंचल चित्त को स्थिर करने के लिए ही हैं। दूसरे शब्दों में यों समझिये कि प्रवृत्ति और संस्कार के कारण जो विषय हमारी प्रकृती में हैं उन्हें नष्ट करने के लिए साधन भजन आवश्यक हैं।

(१४४) एक व्यक्ति ने कहा कि भक्तमाल में प्राचीन भक्तों का वर्णन किया गया है अगर हाल ही में कोई भक्त हुआ है तो वर्णन कीजिये।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि वृन्दावन में संगमरमर के बलदार खम्भों का जो मन्दिर है वह शाहजी ने बनवाया है यह भी बड़े भक्त थे रासलीला में उनकी बड़ी निष्ठा थी उन्होंने एक लाख रुपये की लागत का मुकुट भगवान के स्वरूप के लिए बनवाया था। दो लीलाएँ उन्होंने बनायी हैं।

(१) नौका लीला—जिसमें दिन छिपे गोपियाँ दूध दही बेच कर लौटीं तब नाव बन्द हो चुकी थी उनको यमुना पार होना था श्रीकृष्ण छोटी सी नाव लेकर प्रगट हुए और पार लगाने के लिए यह शर्त लगाई कि जो मक्खन आदि बचा हो हमें खिलादो, जो जेवर आदि पहने हो हमारे हवाले करदो, तब हम एक-एक गोपी को पार उतारेंगे। इस पर किसी गोपी ने इन्कार कर दिया। जिनका दृढ़ प्रेम था और श्रीकृष्ण में विश्वास था, जो सब कुछ भगवानको अर्पण कर चुकी थीं उन्होंने शर्त मंज़ूर कर लिया यह केवल उनके प्रेम की परीक्षा थी। (२) दूसरी लीला में राधा जो अपने प्रेम और निष्ठा को इस प्रकार प्रगट करती है कि मुझे तो एक बात की चाह है कि आप मेरे सामने बैठे रहा करें और मैं आपको देखा करूँ, आपसे ही बातें किया करूँ तथा आपके ही साथ खाना खाया करूँ और घूमा फिरा करूँ "मों को तो सुख प्यारो तेरे संग ही रहने से" अर्थात् आपसे पृथक मुझे किसी वस्तु में सुख नहीं। यह दोनों लीलायें प्रेम को दर्शाने वाली हैं।

(१४५) एक व्यक्ति ने विनय की कि मूर्त्ति और मन्दिरों को तोड़ने से आक्रमणकारियों को क्या लाभ हुआ? यह काम साधारण मनुष्यों ने नहीं किया

बल्कि बड़ी से बड़ी हस्थियों ने किया। आश्चर्य है कि ऐसे बड़े व्यक्तियों का इतना तङ्ग दिल था।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि जिस काम में बुराई और त्रुटि आजाती है उसे दूर करने के लिए प्रभु कुछ न कुछ कारण अवश्य उत्पन्न करते हैं यह कार्य ऐसे मनुष्यों द्वारा कराया जाता है जिनका भविष्य में पतन होना ज़रूरी होता है। वास्तव में न तो इस संसार में मन्दिर मिटे और नहीं पूजा ही गयी। मिटते भी कैसे जड़मूल से तो केवल वह वस्तु मिटती है जो ईश्वरीय इच्छा के विरुद्ध हो। ईश्वरीय इच्छा के विपरीत जो मिटाना चाहता है उनका खुद का जड़मूल से ऐसा नाश हो जाता है कि "न रहे नाम लेवा न पानी देवा"। हठ और जिद्द किसी की भी उचित नहीं बड़े व्यक्तियों को तो यह बिल्कुल भी शोभा नहीं देता। जो व्यक्ति किसी की आत्मा को दुखाने का काम किसी भी बहाने करता है उसका फल कभी अच्छा नहीं होता।

(१४६) एक व्यक्ति ने कहा कि श्रीकृष्ण जी की लीलाओं को कई प्रकार से समझाने का प्रयत्न किया जाता है, परन्तु मेरी समझ में एक बात नहीं आई कि यदि लीला की भी गई तो थियेटर में जो लोग लीला करते हैं उनको वेतन मिलता है और उनकी प्रसिद्धि होती है इसके विपरीत गोपियों को कुछ भी लाभ नहीं हुआ बल्कि बदनामी ही हुई।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि लीला से प्रत्येक जगह लाभ नहीं होता। बहुत से लोग पाठशाला में ड्रामा करते हैं उन्हें धन का लाभ नहीं होता वह केवल मनोरंजन के लिए होता है। इन लीलाओं में कवि वाचकों का अप्रत्यक्ष लाभ रहता है जो विचार करने से प्रतीत हो जाता है। गोपियों ने जिस भाव से भगवान को भजा उससे उनको लाभ अवश्य पहुँचा! अन्य मनुष्य इस लाभ को क्या जान सकते हैं। गोपियों के ही उदाहरण को लीजिये राधाजी ने तन, मन, धन सब भगवान को अर्पण कर दिया था। उनके साथ रात दिन खेल कर पास बैठ कर भगवान ने उनको काम क्रोध आदि से रहित कर दिया। किसी पदार्थ का रस तो हाथ से निचोड़ने पर ही निकल जाता है किसी को कूट पीस कर निकाला जाता है, सूखी वस्तुओं को पानी में भिगोकर रस निकाला जाता है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण ने नाना प्रकार की लीलाओं द्वारा

राधाजी के अङ्ग-प्रत्यङ्ग को छू कर काम-क्रोध रूपी रस को निकाल दिया था। यह पद केवल राधाजी को प्राप्त हुआ है। चन्द्रावलि सखी को अपने रूप पर बड़ा गर्व था इसके कारण ही वह कंस के पहुँच गई। राधाजी को भी वहाँ बुलाया गया राधाजी ने भगवान से प्रार्थना की कि मैं वहाँ जाना नहीं चाहती, भगवान ने कहा कि कंस मान धन यौवन से सम्पन्न है फिर वहाँ क्यों नहीं जाना चाहती? यह परिवर्तन तुम्हारे चित्त में कैसे हो गया। फिर भगवान ने राधाजी को विराट स्वरूप दिखाया। तब उन्हें ज्ञात हुआ कि जो लीलाएँ श्रीकृष्ण ने की उनके द्वारा हमारे काम क्रोध आदि के रस को निचोड़ कर हमें व्याधियों से निवृत्त कर दिया। ललिता सखी ५०० वर्ष में न मालुम कितने जन्म लेने के बाद इस पद को पहुँची। राधाजी को यह अनुभव करा दिया कि साथ रहने से ही तुमको काम नहीं व्यापता है। इनका सब रस खींच लिया तब वह श्रीकृष्ण की महिमा को समझी। यही काम सतगुरु का भी है जिज्ञासु और सच्चे साधक को यह निर्णय करते रहना चाहिए कि गुरु के उपदेश से उनकी संगति से और उनकी सेवा आदि से हमारे काम क्रोध आदि रसों की निवृत्ति हो रही है कि नहीं? यदि हो रही हो तो उसमें लगे रहना चाहिए यदि हो चुकी हो तो बात ही क्या।

[१४७] एक दिन धन और धनवानों की बात हो रही थी किसीने कहा धन सब अनर्थों की जड़ है। बस पेट भरने को रोटी और तन ढकने को कपड़ा मिलना चाहिए धन जोड़ना और बटोरना मूर्खता है। इससे बड़े-बड़े अनर्थ होते हैं। जब काफी बातचीत हो गई तब श्री महाराज से इसका जिक्र किया गया तब उन्होंने फरमाया कि आप लोगों से सहमत नहीं हैं हमारा तो यह विचार है कि धर्म धन कमाओ और उसे संचित करने का यत्न भी करो धनवान तो किसी दूसरे की आवश्यकता पूरी कर सकता है। धर्मात्मा पुरुषों ने ही तो धर्मशालाएँ, अनाथालय, विधवाश्रम, पाठशालाएँ बनवा कर जनता की सहायता कर देश को अधोपतन से बचाया है। धनवान ही तीनों आश्रमों यानि ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ संन्यास का पालन करते हैं और उनके चलाने में सहायता देते हैं। वरना ब्रह्मचारी क्या खाकर पढ़ेंगे और वानप्रस्थ क्या खाकर तप करेंगे अगर धनवान धन से सहायता न करेंगे तो।

१४८—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि पुराणों में ऐसा लिखा है कि हर गृहस्थी में ओखली में अनाज कूटते, चक्की में आटा पीसते, चूल्हे में आग जलाने, पढहड़े में पानी भरने और बुहारी देने से छोटे-छोटे बहुत से जीव मर जाते हैं। इन पाँच हत्याओं का निवारण करने के लिये नित्य प्रति हर गृहस्थी को पाँच यज्ञ करने चाहिये यानि ऋषि यज्ञ, देव यज्ञ, पितृ यज्ञ, भूत यज्ञ, और अतिथि यज्ञ।

१. ऋषि यज्ञः—ऋषियों के बनाये शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना और ब्रह्मचारी को भोजन वस्त्र देना।

२. देव यज्ञः—देवताओं का पूजन हवन आदि।

३. पितृ यज्ञः—तर्पण श्राद्ध आदि और माता-पिता का पालन।

४. भूत यज्ञः—लंगड़े लूले, अपाहिज को भोजन देना और भूतादि की बली निकालना।

५. अतिथि यज्ञः—साधु, महात्मा, अतिथि या देशाटन करने वाला मुसाफिर आ जाये तो उसका भोजन आदि से सत्कार करना।

इससे स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि बेचारे गृहस्थी के सिर पर कितना बोझा लाद दिया है। यह काम वास्तव में किसी अच्छे विचार और नियम पर किया गया था ताकि ब्रह्मचारी एकाग्रचित्त होकर पढ़े, साधू भोजन वस्त्र की चिन्ता से निवृत्त रहकर भजन कर सकें। अतिथि स्वतन्त्रता से देश विदेश घूम सकें, परन्तु वर्तमान समय में ब्रह्मचारी स्कूल और कालिजों में तरह-तरह के खेल-कूद सिगरेट पान, मिठाई इत्यादि में सैंकड़ों रुपया वार्षिक खर्च करने के उपरान्त जब विद्या पढ़कर घर आते हैं तो वर्तमान विद्या के प्रभाव से अपने माता-पिता और बुजर्गों को बुड्ढा और बेवकूफ समझने लगते हैं, पुराण शास्त्रों को गपोड़ा कहते हैं। साधू महात्मा भजन पूजन को तिलाञ्जलि देकर गेरुआ वस्त्र धारण करते ही 'अहं ब्रह्मास्मि' कहने लगते हैं। अच्छा वस्त्र, अच्छा भोजन खाकर, तीर्थ यात्रा और मेला ठेला की शोभा देखकर और कई तरह के जलसों में भाग लेकर समय व्यतीत करते हैं। यदि किसी साधू ने थोड़ी बहुत विद्या प्राप्त कर भी ली तो उसके अभिमान का तो ठिकाना ही नहीं। यदि गृहस्थी बराबर आकर बैठ जाय तो धिक्कार कर उसे

उठादें इतना भी विचार नहीं आता कि इन्हीं के धन और अन्न से ही हमारा निर्वाह चल रहा है। जो महन्ताई भी मिली है और जायदाद भी इकट्ठी हुई है तो इन्हीं की दी हुई सम्पदा है। ऐसे लोगों पर धन खर्च किया जाये तो वह इन पाँच हत्याओं का दूर करना नहीं है बल्कि मनुष्य उनको खिला पिलाकर उनको परिवरिश करने उनका अभिमान पुष्ट करते हैं। उसका फल यह है कि लड़कों की तरफ से गालियाँ मिलती हैं, साधुओं की तरफ से धिक्कार के रूप में पाप भोगना पड़ता है। ऐसे ही व्यवहार ने प्रतिवादियों को मखौल उड़ाने का मौका दे दिया कि पहले तो पुराणों में गृहस्थी बेचारे के सिर पर पाँच हत्या थोपी फिर उसे निवारण करने के अच्छे तरीके निकाले जिससे ऐसे कृतघ्नों का पेट भरता है। इससे ये अच्छा है कि गृहस्थी भी हाथ पर हाथ धर कर बैठ जाते फिर न तो उनसे कोई हत्या होती न पंच यज्ञों की आवश्यकता होती। तब पता चलता कि ब्रह्मचारियों और साधुओं के आश्रम कैसे चलते हैं। इससे भी बढ़कर विचित्र बात यह है कि रोटी पकाने के लिये सन्यासी को आग छूने की आज्ञा नहीं है परन्तु तम्बाकू आदि पीने में आग का सेवन उचित है। अकसर साधु यह कहा करते हैं कि सबके दाता राम हैं तो क्या गृहस्थियों के दाता राम नहीं। जहाँ से साधुओं को पकी-पकाई मिल जायेगी वहीं से गृहस्थियों को भी मिल जायेगी। शास्त्रकारों को क्या पता था कि इस भारत में शिक्षा के ऐसे तरीके चालू हो जायेंगे कि साधु महात्माओं और स्त्रियों को ऐसी स्वतन्त्रता मिल जायेगी जिससे सोसाइटी धर्म आदि का प्रबन्द बिल्कुल उलट-पुलट हो जायेगा। बड़े-बड़े महात्माओं के यहाँ भी चूल्हे जलते हैं पानी भरा जाता है फिर उन्हें हत्या क्यों नहीं लगती वे पंचयज्ञ क्यों नहीं करते साधुओं से तो आज कल कोई पूछने वाला ही नहीं। यह उन महापुरुषों का प्रताप है जिनके पुण्य से भेष के नाम पर पालन-पोषण हुए चला जा रहा है।

१४६—एक व्यक्ति ने कहा कि रासधारी जो कृष्णलील करते हैं वह तो बिल्कुल स्वांग होता है। गाना बजाना नाचना इससे क्या लाभ? बल्कि जनता हँसी उड़ाती है।

श्री महाराज ने फरमाया कि जिस कदर ड्रामा थियेटर इत्यादि में होते हैं सभी तमाशा होते हैं, परन्तु इनमें बड़े-बड़े वीरों बुद्धिमान और

साहसी पुरुषों और महात्माओं के चरित्र को हू बहू दिखलाने का प्रयत्न किया जाता है ताकि देखने वालों पर उसकी वास्तविकता का प्रभाव पड़े और नाचगाना बजाना इसलिये सम्मिलित कर दिया जाता है कि लीला रोचक हो जायें और रजोगुणी जीव शौक़ से उसमें लगें। रास की पहली लीला पर ही विचार करो जिसमें श्री राधाजी खेलने का बहाना करके अपनी आठ सखियों को लेकर कृष्ण भगवान से मिलने चलीं थोड़ी दूर चलकर एक सखी ने कहा राधा अब लौट चलो मैया नाराज़ होंगी राधाजी ने कहा कि थोड़ी दूर तो और खेलने चलें। वह सखी तो वहीं रह गई। इसी तरह दूसरी ने भी कहा राधाजी ने आगे जाने का आग्रह किया तो वह भी वहीं रुक गई इस प्रकार कोई सखी संकेत वन में, कोई पीली पोखर पर रुक गई, सबसे आखिरी सखी प्रेम सरोवर पर जाकर रुक गई। उससे आगे केवल राधाजी गईं और श्री कृष्ण से भेंट की। इसमें ही क्या उत्तम उपदेश है। अष्ट सखी क्या थीं—पाँच तन्मात्रा, मन, बुद्धि, अहंकार इनमें से कोई भी आखिरी मंजिल तक नहीं जासकीं केवल माया ही परमधाम तक पहुँच सकती है और तद्रूप होती है इन लीलाओं के अन्दर जो दूसरे गुप्त और ऊँचे भाव हैं उनका रहस्य तो सच्चे और परम भक्त ही समझ सकते हैं, परन्तु साधारण जीवों के लिये भी उचित उपदेश है शर्त यह है कि जानने वाला दिल और देखने वाली आंख हो। श्री कृष्ण भगवान की केवल पाँच ही लीलाओं का वर्णन भागवत्में आया है बाकी सब लीलायें जो केवल रासमें होती है भक्तोंके भाव समझने चाहिये। शाहजी जिनका संगमरमर का मन्दिर वृन्दावन में है बड़े भक्त थे। नौका लीला इनकी बनाई हुई है इसमें कितना अच्छा उपदेश है। अकेली स्त्रियों को हाट बाज़ार से लौटते समय अंधेरा होने से पहले पहुँच जाना चाहिये, किशोर (जवान) मल्लाह के साथ रात में अकेले नाव पर सवार होकर नहीं जाना चाहिये। जब पाराशर जैसे ऋषि का अकेली स्त्री को नाव में देखकर मन चलायमान हो गया तो साधारण पुरुष का क्या ठिकाना। इसी तरह निम्बार्क सम्प्रदाय के किसी आचार्य ने "गोदान हारी" लीला बनाई पर उसमें भी कितना उपदेश भरा है। कुछ लीला ऐसी भी हैं जिनमें रस को उभारने का भी भाव है जैसे बुरे वचन से क्रोध जाग उठता है। वैसे ही कथाओं और लीलाओं से रस जाग उठता है।

१५०—एक रोज़ एक व्यक्ति ने विनय किया कि साधन से जल्दी सफलता क्यों नहीं होती।

श्रीमहाराज ने फरमाया कि जिस प्रकार बिना प्राण के शरीर कितना भी सुन्दर हो बेकार होता है उसी प्रकार व्याकुलता रहित साधन शीघ्र सफल नहीं होता। कर्ता जिस लिये कर्म करता है उसके बिना रह सकता है। यदि उसके बिना न रह सके तो सफलता अवश्य हो जाये। दूसरी बात यह है कि साधन करने वाले को साधन करने से पहले यह विचार कर लेना चाहिये कि हम साधन किस लिये करते हैं और क्या चाहते हैं। अपनी चाह का पता लगा लेने से ही साधन में मन शीघ्र लगता है।

१५१—एक रोज सत्संग में यह अलिफ बे बाबा बलीराम की पढ़ी गई—

अलिफ एक साक्षी सब माहीं, मन चित बुद्ध अहं कछू नाहीं।
वाही सो यह सकल पसारा, वह सबमें है सबतें न्यारा।
अलिफ अलिफ अल्लाह यही है, घट घट बोले वही वही है।
सर्व वही है यह कछु नाहीं, ज्यों तरङ्ग सो सागर माहीं।
बे, बातिन सोही ज़ाहिर है, जोई अव्वल सोई आखिर है।
अव्वल आखिर जो पहिचाने, अज अक्रिय ज्यों को त्यों जाने।
वे बाहर जो अन्दर पायो, बाहर भीतर एको गायो।
एक अनेक भेष धरो है, सभी रूप आप देखो है।
पे, पारस ज्ञानी को संग, ज्ञानी वही जो है बेरङ्ग।
रहे सबन में सबतें न्यारों, आतम रूप-निरातम प्यारो।
पे पाखण्डी खण्डी त्यागे, परम अखण्ड रूप गत लागे।
चैन अचै बिना तहाँ अइये, रस गुण कर्म जहाँ नहीं पइये।
ते, तन में जो मन में आयो, साक्षी रूप आपमें पायो।
आपन आप देख बिसरायो, सहज समाधि सहज छक छायो।
ते, तो मैं तेरा अहं रूप, सर्व वही है एक निरूप।
उलट आपमें जोही पेखे, आप बिना सब आपै दीखे।
से, सानी वाको नहिं पाइये, जहाँ को तहाँ ही जल थल रहिये।
त्रिभुवन रूप वही प्रकट है, देख वही एक ही घट पर है।
से, सालिस सो जोई रहे, अहं रूप सोहं सों लहे।

आत्म गत परमात्म पावे, ॐ सोहं हंसा गावे।
जीम, जन्म तें रहित बखानो, अद्वैत अज आप प्रभु जानो।
रूप निरुप बिना वोह सम है, जन्म मरण का तेहि न गम है।
जीम जहल कब जाहिल पेखे, जीवन नरक माहिं यह देखे।
अहं अहं कूकर ज्यों भूंखें, दाना सब नादां सों चूंखें।
चे, चैतन जो पैयत नाहीं, दाना बीना सब घट मांही।
यों दुरसत गत जो नर पेखे, दाना बीना हक में देखे।
चे, चाहत जिनके कुछ नाहीं, चाह अचाह रहत सुख माहीं।
टोने और जन्तर सब सयाने, वे निर्मल ये मल में साने।
हे हाजिर नहीं गायब पायो, हाजिर नाजिर वही बतायो।
जाहिर बातिन आप प्रकाशी, निज चैतन्य वही अविनाशी।
हे हाजत जिनके कछु नाहीं, द्वन्द चाहते बच सुख पाहीं।
वहम ख़्याल खलल सब खोके, बन्दे से रहे साहिब होके।
खे, ख़ालिक में खल्क प्रकट है, ख़ल्क कहाँ ख़ालिक घटघट है।
घट घट में जो ख़ालिक जाने, ख़ल्क रूप ख़ालिक सब माने।
ख़े खाली जो ममतें हुआ, निरमम सो जीवित जो मूआ।
सहज सुन्न में आसन कीना, तन मन बाका बाको दीना।
दाल, दोष ढूंढे नहिं पैहै, सब बिन वह नित आपै रहे है।
वह सब में है सब वा माहीं, दाना बीना दूजा नाहीं।
दाल दीन अरु दुनिया भूले, कँवल कली जब मन की फूले।
तनतें मन जब स्वगत पावे, बाहर को सब खेल भुलावे।
जाल ज़िक्र और जाकिर ऐके, ऐके के हैं खेल अनेके।
जो जाहिर बातिन हो रहा, बातिन ज़ाहिर रूप लहा।
वही जिक्र ज़ाकिर मज़कूर, घट घट आपै ही भरपूर।
जाल, ज़िक्र बिन फिक्र जो जाने, रूप नाम बिन और न माने।
रे, सब रुप निरुप वही है, यही वही है वही यही है।
यह वह दो नहीं एके जानो, अद्वैत अज अक्रिय पहचानो।
रे रहमान राम वह एके, एके के गुन नाम अनेके।

नाम नाम सब एके जानो, राम रहीम एक कर मानो।
ज़े, ज़ारी बिन न कर ज़ोर, वही एक पायो सब ठोर
घट घट में जो प्रकट कहिये, जोर त्याग ज़ारी गत रहिये।
ज़े जाहिद हूँ मैं मदमातो, सोहं फूल अहं रस रातो
रूप नाम ओझल नहिं पेखो, बातिन बिन ज़ाहिर सब पेखो।
जे जिन्दा बन्दा साहिब का, ऐसा खेल बना बाहिब का।
जो इस जिन्दे माहिं निहारे, नित्त अनित्त विवेक विचारे।
ज़े जिन्दा सो तिन तन पायो, जे जिन्दा सो तन मन भायो।
ताजिय में सो रुप प्रकट है, साची रुप वही सब घट है।
सीन, सभी को एके जानो, दूजा भ्रम सो चित न आनो।
उलट आपमें सार विचारो, अनेक कहाँ एक चित धारो।
सीन साध बिन धान न होवे, जो गङ्गा बिन तन को धोवे।
तन धोय नहिं आवे सांत, जब लों मन की जाय न भ्रान्त।
शीन, शाद नहिं गम ते पायो, जो नर उलट आप में आयो।
जन्म मरन ते फ़ारिग डोले, ज्यों को त्यों अद्वैत मत तोले।
शीन शान अरु मान न जाने, अहं बिना सोहं जो माने।
शीतल सुखी शान्त गत बोले, द्वन्द फ़िकर में कबहू न डोले।
स्वाद, सिदक़ बिन हक़ नहीं सूझे, स्वाद वही सर्व में बूझे।
द्वन्द्व चाह दुविधा सब खोवे, अहं मेल सोहं सब खोवे।
स्वाद सबूरी जिनके आई, जलन गई भई शीतलताई।
चंचल चपल चाह मत खोई, सहज सुन्न में सुरत समोई।
ज़ू आद जावता मूरख करे, भौंक-भौंक स्वान जिम मरे।
अपनो भेद न पावे आप, जाने नहिं पुन्न अरु पाप।
ज़्वाद ज़ब्त जिन मनको कीना, रस गुन में नहिं जीवन दीना।
हमता सागर लेके बोड़ा, चाह अचाह संग सब छोड़ा।
तोय, ताहिर जो खुद ते भया, अहं त्याग सोहं गत गया।
सोहं हंसा खेल मचाया, बेहद में सब हद को पाया।
तो ताहिर अज अक्रिय गायो, उपनिषद सार भेद जो गायो।

तत्वमसि अद्वैत गत जानो, भूषण रूप कनक पहचानो।
ज़ोय ज़ाहिर बातिन कछु नाहीं, जोत वही प्रकट घट माहीं।
बातिन कहाँ जो ज़ाहिर पायो, ज़ाहिर बातिन एके आयो।
ज़ो ज़ाहिर बातिन हो रहा, बातिन ज़ाहिर रूपे लहा।
ज़ाहिर में बातिन सब पेखा, अव्वल आखिर एके देखा।
एन अजायब खेल बनाया, पिन्ड महिं ब्रह्माड छिपाया।
बूंद-बूंद सागर हो रहा, सागर बूंद जात नहिं कहा।
ऐन-ऐन है गैर न सूझा, वही एन सर्व ही बूझा।
ऐन-ऐन आँख छक छाई, आप रहत आपे गत पाई।
ग़ेन, ग़रीबी जिनके आई, सुखी रूप वेही सुख दाई।
द्विधा चाहत को संग त्यागो, सोहं अमृत सो मन पागो।
ग़ेन, ग़ैर नुकते सों कहिये, सो नुकते ही में का लहिये।
जिन यह नुकता कीना दूर, ग़ैन ऐन हुआ मासूर।
फ़े, फाके जो जीवित भये, खुदी छोड़ खुदा में गये।
ऐसे जो गये फेरि न आये, ओले पानी में समाये।
फ़े, फ़ाकिर अरु फ़िक्र कहाँ है, आपे आप निर आप जहाँ है।
आपे आप निर आप जो डोले, फ़िक्र बिना ज्यों को त्यों बोले।
क़ाफ़, कहर मत नाहिं कीजे, दया धर्म मेहर चित दीजे।
द्वन्द त्याग शान्त हो रहे, अहं कुभाव सागर नहिं बहे।
काफ़, सिफ़त कादिर की कहिये, कुदरत रूप जगत सब चहिये।
मुश्त ख़ाक को कर्त्ता करे, ख़ाक-ख़ाक में ले फिर धरे।
क़ाफ़ कुदरत मन की खोवे, हंसा जल लेके मन धोवे।
सोहं हंसा मद छक रहो, आपे में सब आपे लहो।
काफ़ करीम लईम न सूझा, अहद रूप गायब जो बूझा।
सागर माहिं बूंद जब जाई, कर्म धर्म रहै सहज समाई।
गाफ़, वली गुन रहित जो आये, निसतरे गुन उत्तम गति पाये।
सहज जतन मद छक के रहे, अक्रिय आपु प्रभु गत लहे।
गाफ़, वली बिन गुरु नहिं पैये, अलख रूप जो घट पट लहिये।
पूरन गुरु सोई मतवाला, तन मन तें जो करे निराला।

लाम, लज्जा, चित्त तें अज्ञानी, चाह द्वन्द की जानी बानी।
हंसा छोड़ देह मद माते, करके हैं आपे पछताते।
लाम, लाज बेखुद सब सब कोई, लाज निलाज नीर ले धोई।
तन, मन, धन ते होवे न्यारा, जान असार यह सर्व पसारा।
मीम, मनी जी जान भुलावें, मान अमान रहित सुख पावें।
ब्रह्म ज्ञान में माते रहे, सोहं हंसा लाते रहें।
मीम, मनी वाहीं सो जानो, घट-घट वही बोलता मानो।
खुदी कहाँ खुद आप वही है, यह कछु नाहीं वही-वही है।
नून, न्यारे जो सब तें भये, आप निर आप नगर जे गये।
सहज समाधि रूप हो रहे, हूँ में जल में नाहिं बहे।
जैसे अग्नि महिं जो पड़े, ताको अग्नि आपसो करे।
अनेक जतन कर जो वह पेखे, तरङ्ग बिना सागर नहीं देखे।
वाव वही है सब रूपे रूप, रूप निरूप वहीं से दीखे।
वही सर्व-सर्व व माहीं, वृत्त वही हम तुम परछायीं।
वाव, वही जो यह होय आयो, यह तरङ्ग वोह सागर पायो।
तरंग सर्व सागर सों आवें, फिर के सागर माहिं समावें।
हे, है कोई प्रतिबिम्ब नाहीं, देखन को दूजी परछाई।
एक-एक अनेक गति आये, कनक रूप सब भूषन पाये।
हे हिन्दु और तुरक न देखे, पाप पुण्य ही सारे पेखे।
निज चैतन्य सार वह एके, मास चाम के वन्द अनेके।
लाम, अलिफ लालच कछु नाहीं, वही एक प्रकट घट मांही।
भूषन रूप कनक होय आयो, तरंग सर्व सागर सों पायो।
लाम, अलिफ लालच नहिं कीजे, अहं बिना सोहं चित दीजे।
उलट आप तन, मन हो आवो, अद्वैत ब्रह्म देखि छक छावो।
ये, यह रूप निरूप बखानो, वही एक सर्व रूपे जानो।
रूप नाम गुण ओझल वोही, परम बुद्ध चेतन वो यह ही।
ये, यह सब वाही में पायो, तरंग रूप सागर निज आयो।
द्वैत भाव अवरुंध विसारो, वली रूप एके चित धारो।

१५२—एक शख्स ने सत्संग में यह पढ़ाः—

मस्जिद में नहीं मन्दिर में नहीं महबूब तुम्हारे दिल में है।
मौजूद है जर्रे-जर्रे में, मखलूत आब व गुल में है ॥१॥

जंगल में भटकना ठीक नहीं, काबा भी अबिस तीर्थ भी अबिस।
मकसूदे जियारत एक खुदा, तो उलफत की मंजिल में है ॥२॥

किश्ती में वही, लंगर में वही, मल्लाह व मुसाफिर में इकसाँ।
दरया में, भँवर में, बादल में, तूफान में है साहिल में है ॥३॥

छोड़ो भी जहालत को शाकिर लिल्लाह होश से बाजआवो।
यह चश्म बशीरत से पूछो, क्या जात खुदा बातिल में है ॥४॥

१५३—एक शख्स ने अर्ज़ किया कि हर मज़हब वाले अपनी-अपनी पुस्तक को आस्मानी किताब और ईश्वरवाणी तथा ब्रह्मवाणी मानते हैं, वेद ब्रह्मवाक्य है। कुरान खुदा की तरफ से नाजिल हुवा है। ईसामसीह तो खुदा के बेटे थे उनका उपदेश तो खुदा का बचन ही है। अब यह पता कैसे चले कि इनमें से कौन सी आस्मानी वाणी है।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि जो बात हर मजहब और हर मुल्क के वास्ते लागू और हितकारी है जिसमें धर्म और सच्चाई और निष्पक्षता से किसी को द्वेष करने की गुंजायश न हो, उसी को आस्मानी वाणी मानो। हठधर्मी से कोई सच्चाई को भी झुठलाने की कोशिश करे वह दूसरी बात है। इस संसार में जितने बड़े-बड़े मजहब हैं बौद्ध, जैन, यहूदी, ईसाई, इस्लाम वग़ैरा सबमें सनातन धर्म की कुछ बातें तो जीवन की सेवन हैं, कुछ देश काल पात्र के लिहाज से कतरबौंत करके लिखी गई हैं। अगर सनातन धर्म की बातें ब्रह्म वाणी है तो इस धर्म से ली हुई बातें भी आस्मानी होनी चाहिये। दूसरे मज-हब या देश में उनको प्रचलित करने से उनके देव वाणी होने में तो भेद नहीं होना चाहिये। ग्रन्थ के माने हैं पुस्तक, शास्त्र और ग्रन्थी के माने हैं गाँठ, जोड़, सन्धि गोया इन शास्त्रों में गाँठ लगी हुई है जो गाँठ खोलना जानता होगा और खोल सकेगा, वही समझ सकेगा और लाभ उठा सकेगा। दूसरे मायने "सन्धि" से मतलब जोड़ने और मेल करने से और झगड़ा मिटाने से है इसी के लिये यह शास्त्र बनाये गये हैं कि नये को पुराने से, और एक मजहब

को दूसरे से जोड़ दिया जावे और मिला दिया जावे। ऐसी वह "सन्धि" की बजाय "सँध" यानी खण्डन, झगड़ा, बखेड़ा, विरोध के काम आता है।

१५४—एक मनुष्य ने कहा कि राजा का धर्म देश की रक्षा है ताके बाहर से बैरी न चढ़ आयें और देश के भीतर लुटेरे लूट मार न कर सकें वरना थोड़े समय में ही सब कुछ नष्ट हो जाता है पीढ़ियों की जोड़ी हुई सम्पत्ति नष्ट हो जाती है।

श्री महाराज ने फ़रमाया के बाहर वालों और देश वालों से रक्षा जरूर होनी चाहिये, लेकिन इससे पहिले स्वास्थ्य की रक्षा है देश में गन्दगी और मैलेपन से जो बवा और मरी फैलती है उनमें जितने मनुष्य मरते हैं इतने लड़ाई में नहीं मरते। हाल ही में प्लेग फिर चेचक फिर इनफिलुअंजा से जितने रोगी भारत वर्ष में मरे हैं इतने शायद दुनियाँ भर में लड़ाई में नहीं मरे होंगे। स्वास्थ्य रक्षा से बढ़कर धर्म रक्षा है, रोग शोक सबका मुख्य कारण अधर्म है पाप कर्मों से स्वास्थ्य भी बिगड़ जाता है देश में झगड़ा भी फैल जाता है, ग्रह नक्षत्र और देवताओं का भी कोप होता है। अगर जनता धर्मात्मा हों और देश भर में धर्म की दुहाई फिरे तो न तो चोर बदमाशों का साहस चोरी करने का पड़ता है न बाहिर से बैरी को हमला करने का हौसला होता है धर्म आचरण से सब बाधा और तीनों प्रकार के ताप दूर हो जाते हैं, "धर्महन्यते व्याधि धर्महन्यते शत्रू यतो धर्मस्ततो जय"।

१५५—एक शख्स ने सवाल किया कि तत्व ज्ञान हो जाने के बाद सचित कर्म तो क्षय और क्रियमान कर्म निवारण हो जाते हैं, प्रारब्ध कर्म क्यों नहीं क्षय होते।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि संचित और क्रियमान के लिये तो ईश्वर या परमात्मा की अभी तक कोई आज्ञा नहीं हुई। लेकिन प्रारब्ध तो ऐसे समझो जैसे हाकिम के हुक्म से कोई बन्धन में डाल दिया जाये अब हाकिम के हुक्म की तामील तो जरूर होनी चाहिये वरना उसकी नीयत में हर्ज वाक़ा होता है। इसलिये उसके हुक्म की तामील पूरी होने के लिये प्रारब्ध का वेग जारी रहता है।

एक शख्श ने प्रश्न किया कि ऐसी भी कोई पहचान है कि जिससे यह पता चल जावे कि यह मनुष्य ब्रह्म सन्तुष्ट या ब्रह्म स्वरूप है।

श्री महाराज जी ने फ़रमाया कि सूक्ष्म वेद लक्षण का तो दूसरे मनुष्य को पता चल ही नहीं सकता परमम्वेद लक्षनों से भी ब्रह्म स्वरूप ही ब्रह्म स्वरूप को समझ सकता है मामूली मनुष्य के लिए इसका पहचानना मुशकिल है, सांख्य प्रदर्शन मानता है के पुरुष की केवल सन्निधि मात्र से प्रकृत्ति में क्रिया का बदलाव होने लगता है और संस्कार की उत्पत्ति होती है यानी सब संसार प्रकृति रूप है, परन्तु पुरुष खुद निर्विकार है इससे ज़ाहिर है कि संसार की सभी चीजें यानी प्रकृति के जड़ और चैतन्य किसी भी रूप से जिसके चित्त में विकार न हो उसी को ब्रह्म सन्तुष्ट समझना चाहिये गीता में भी उसके लक्षण दिये हुये हैं।

१५७—एक रोज इर्शाद हुवा कि (१) कर्म करने की कुशलता (२) समता (३) कर्म बन्धन से छुटना (४) अविद्या आदि कलेशों को काटना (५) चित्त-वृत्ति को रोकना (६) चित्त को एकाग्र करके जीव को नित्य सत्य स्थिर करना (७) जीव आत्मा और परमात्मा का मेल आदि-आदि योग कहलाते हैं शास्त्रों का उपदेश है—

"योगस्थ कुरु कर्माणि" यानी योग में स्थित होकर कर्म करो। योग के बहुत भेद हो सकते हैं लेकिन धर्म शास्त्रों में बारह प्रकार के योग प्रसिद्ध है (१) अष्टांग योग (२) राजयोग (३) हठयोग (४) लययोग (५) ध्यान योग (६) भक्तियोग (७) क्रिया योग (८) नामयोग (९) भेषज योग (१०) मंत्र योग (११) योग कर्म योग (१२) ज्ञान योग, योग साधना दस पाँच दिन में पूरी नहीं हो सकती, बड़े धीरज से पहले शरीर फिर इन्द्रियाँ फिर अन्तःकरण की साधना की जाती है तब ज्ञान और अनुभव होने से स्वरूप का साक्षात्कार होता है इनहीं साधनों का नाम (१) बैराग्य (२) भक्ति और (३) ज्ञान है।

१५८—एक मनुष्य ने कहा कि हिन्दोस्तान सचाई इमानदारी, वफादारी अतिथी सत्कार आदि के संसार भर में मशहूर था। अब शायद संसार भर में सबसे अधम गति को प्राप्त हो गया है। टके-टके पर धोखा, कदम-कदम पर दग़ा फरेब, बात-बात में जाल-साजी। हलफ उठा कर भरी अदालत में

झूठ। कोई अतिथी आ जाये तो घर में रोना पड़ जाये। आदमी मुँह छुपाता है, घर वाली का मूंह सूज जाता है। एक दफा का खिलाना भी कठिन हो जाता है इन सबका कारण राजा है। यथा राजा तथा प्रजा के अनुसार प्रजा की इस अधम गति का जिम्मेवार राजा है।

श्री गीता के १० वें अध्याय में श्री प्रभु ने फरमाया है मनुष्यों में मुझे राजा जान। जब श्री भगवान ने ही कलियुग रूप धारण कर रखा है तब ही तो ऐसी गति हो रही है।

श्री महाराज ने फ़रमाया के स्वांग भरने से अस्लीयत तो नहीं मिटती है। पुरुष स्त्री का स्वांग भरने से स्त्री तो नहीं बन जाता। श्री भगवान ने कलियुग का स्वांग भरा है तो उनका भगवत पना तो नहीं मिट सकता और इसी असूल पर जब राजा उनका स्वरूप है तो वह भी अधम नहीं हो सकते, परन्तु अब राजा रहे ही कहाँ ? अब तो प्रजा तंत्र जनता राज्य, जमूरियत, डैमोक्रेसी प्रजा सतक हो रहा है। भगवान का स्थापित किया हुआ राजा रहा ही कहा। अब तो प्रजा राजा को बनाती है, लिहाजा यथा प्रजा तथा राजा होना चाहिए, और वह ही हो रहा है। फिर दोष राजा के सर क्यों थोपते हो। प्रजा को दोषी ठहराओ। जैसी प्रजा होगी उनकी बहू सम्पति से ऐसे ही राज्य अधिकारी चुने जायेंगे। बेईमान शैतान किसी भले आदमी को क्यों राय देने और चुनने लगे। जिनकी बहूतायत होगी उसी तरह के अधिकारी चुने जायेंगे। उन्हीं में से राष्ट्रपति प्रधान मंत्री आदि बनेंगे।

बजीरे चुनी शहर यारे चुना।
जहाँ जूँ बगीरद करारे चुना॥

अर्थ—जब बजीर ऐसा हो और बादशाह भी वैसा हो तो जनता कैसे आराम से रह सकती है।

वाली गति होगी और वह ही हो रही है। झूठ, चोरी, दग़ाबाज़ी यह सब काम प्रजा कर रही है। हाँ यह जरूरी है कि प्रजा झूठी है तो राष्ट्र-पति आदि झूठों के बादशाह जरूर हैं। शायद भला आदमी ऐसी प्रजा का राष्ट्रपति बनना पसन्द ही नहीं करेगा।

१५६—एक रोज पुलिस के बड़े अफ़सर मिलने आये और कहा कि यह मन दुखदाई और चंचल है, सब उपद्रव इसी का है इसको बस में किस तरह से करना चाहिए।

श्री महाराज ने फरमाया के आपका तो रात दिन शैतानों से ही पाला पड़ता है। जिस तरह से उनको बस में करते हो उसी तरह से इसको भी काबू कीजिए। यदि आप दस सिपाही लेकर शैतानों को पकड़ने गये और वे ५० या १०० निकल पड़ें तो काम बिगड़ सकता है। इसलिए पहले तो आप यह पता लगाते हैं के उनकी गिनती कितनी है, उनका निवास स्थान कहाँ हैं। वहाँ से कहाँ तक उनकी दौड़ धूप है, कहाँ तक छापा मारते हैं उनके आने जाने का कौन सा रास्ता है। यदि यह पता न हो तो आप सड़क पर खड़े रहें और वे जंगल ही जंगल कहीं के कहीं जा पहुँचे। वे किस सवारी पर चढ़ते हैं आप मोटर कार में हो वे घोड़े पर चढ़ कर पगडंडी के रास्ता से निकल जायें। उनके ऐशो आराम व नशापता के क्या-क्या सामान हैं और यह सब सामान उनको कौन पहुँचाते हैं। इसके अतिरिक्त और भी जरूरी बातें मालूम करने की कोशिश करते हैं। इसी प्रकार इस मन की छानबीन करनी चाहिए। इन्द्रियों के विषय इनकी भोग सामिग्री हैं। इन्द्रियाँ भोग पहुँचाती हैं। हृदय से लगा कर नाक की नोक से बारह ऊँगल बाहर तक इसकी दौड़ धूप का मैदान है। प्राण इसका वाहन है, चित्त, बुद्धि, अहंकार तन्मात्र, इन्द्रियां और प्राण सब मन के सहायक हैं। आप इन्द्रियों का वमन कीजिए और उनको अपने काबू में कीजिए। विषयों से वैराग्य कीजिए। प्राणों का निरोध कीजिए। घुड़सवार को पकड़ लिया तो घोड़ा भी रुक गया और घोड़े को रोक लिया तो घुड़सवार भी पकड़ा गया, इसी प्रकार मन को काबू करने से प्राण, और प्राण को काबू करने से मन काबू में आ जाता है। जिस तरह से आप पकड़े हुये को हथकड़ी बेड़ियों से जकड़ देते हैं और हाकिम के सन्मुख करके उसके उपद्रवों का अन्त कर देते हैं। इसी प्रकार प्राणायाम, नासाग्रध्यान, भृकुटि ध्यान आदि के द्वारा मन को जकड़ा जा सकता है। आत्मा के सन्मुख कर देने से इसकी दौड़ धूप चहल-पहल का अन्त हो जाता है। इधर से छुट कर उधर लग जाता है।

जसे कैदी जूआ, चोरी आदि बुरे काम छोड़ कर जेलखाने में दरी बुनने सूत कातने और नाना प्रकार के उद्योग और अच्छे काम करने लगते हैं, वैसी ही गति इस मन की हो जाती है।

१६०—एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि प्रकृति कितनी प्रकार की होती है।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि इसकी गिनती करना तो असम्भव है। हर जीव की प्रकृत्ति भिन्न-भिन्न हो सकती है, परन्तु शास्त्र में ६ प्रकार की लिखी है। [१] स्वाभाविक, जैसे मिरच में कड़वाहट और बूरे में मिठास। [२] ईश वादी, पर्वत, पृथ्वी, वृक्ष, जीव जन्तु, स्वर्ग, नरक, सबका कारण ईश्वर को मानते हैं और कहते हैं कि जीव अल्प ज्ञानी होता है, अपने सुख दुख में असमर्थ है ईश्वर की प्रेरणा से स्वर्ग नरक में जाता है। [३] कालवादी, तमाम जगत की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय का कारण काल है। परम तत्व के जानने वाले योगी भी इसके आदि मध्य और अन्त को नहीं जानते। वह संसार की उत्पत्ति, स्थिति प्रलय और सूर्यादि से अनुमान किये जाने के काबिल हैं। [४] जो जिसमें होता है वे ही उसमें सहमत है। जैसे वरन और अरुणी, अग्नि के सहमत हैं। यह यदिरिच्छा वादियों का मत है [५] पूर्व रचित धर्माधर्म को नेति कहते हैं यही सबका कारण है यह नेति वादियों का मत है। [६] प्रिया नाम वादी, अहंकार आदि रूप के कारण से प्राणायाम ही प्रधान है और सबका ही कारण है।

१६१—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि सबसे बड़ा तप यह है सत्य बोलना, सबसे सरलता रखना, इन्द्रियों को सब ओर से आकर्षण कर अपने वश में रखना।

१६२—एक रोज़ इर्शाद हुआ के जिस मनुष्य में यह चार गुण हों वह कष्ट आने पर भी कभी व्याकुल नहीं होता। धीरता, दृढ़ता बुद्धि और चातुर्यता।

१६३—एक व्यक्ति ने प्रार्थना की कि संसार भर यह बात कहता है और मैं भी मानता हूँ कि भगवान और जगत दोनों हैं फिर जैसे जगत देखता हूँ वैसे भगवान क्यों नहीं दिखलाई देते।

श्री महाराज ने फरमाया अगर आँखे न हों या आँखें बंद हो तो जगत भी दिखलाई नहीं दे सकता। इस जगत को देखने के लिए यह दो आँखें बनाई गई हैं। भगवान को इस जगत से ऊपर मानते हैं उनको देखने के लिए भी इन आँखों से ऊपर भी एक आँख बनाई गई है, वह जब तक बंद है भगवान् कैसे दिखाई दें। जब वह खुलेगी भगवान ज़रूर दिखलाई देगें, और यह सब विषय विकार मिट जायेंगे। जैसे शिवजी के तीसरा नेत्र खोलने से कामदेव भस्म हो गया था।

१६४—एक रोज़ यह कव्वाली पढ़ी गई। इसमें विरह को कितना दरसाया है और प्रेम की गति कैसी बतलाई है।

तोरी प्रीत वही पिया जब से मुझे, सुख चैन न पाया दम भर को।
मन छीन के चितवन फेर लियो, दर्शन न दिखाया दम भर को॥
पिया छाड के सिगरो देश कुटुम्ब, फिरी चारों दिशा में थारी कसम।
इस आस में खो दियो अपना जनम, तू पास न आया दम भर को॥
तुम सन्मुख मिलत लजावत हो, स्वप्ने में भी हमरे न आवत हो।
यूँ छिप के मन को लुभावत हो, दुखड़ा न वटाया दम भर को॥
तेरी याद में प्यारे प्राण तजूँ, थाम कलेजा को बैठ रहूँ।
विनती भी करूँ पइयां भी परूँ, दर पर न बुलाया दम भर को॥
मिलने से जो इतनी लाज थी पिया, क्यों धूम मचा कर छीना जिया।
पग सीस निवाकर जीव दिया, घूंघट न हटाया दम भर को॥
मैं तुमरा कहा कर रोगी भयो, कृपा की नज़र से क्यों दूर कियो।
मोहे प्रीत के रोग ने घेर लिया, आकर न बचाया दम भर को॥
तेरी याद में प्राण हैं छूट रहे, कुछ बात कहो क्यों रूठ रहे।
इस प्रीत में भाग भी फूट गये, तुम से न मिलाया दम भर को॥
क्यों हमरे जिया खोवत हो, किस दोष पैं न्यारे होवत हो।
मैं रोवत हूँ तुम सोवत हो, उठ कर न हठाया दम भर को॥
त्रिखा राम की पीत में फँस लिये, चैन भयौ उर जान बल्ब।
पूरा न हुआ मन का मतलब, छतिया न लगाया दम भर को॥

१६५—एक व्यक्ति ने प्रार्थना की, कि मेरा भतीजा बड़ा फ़ज़ूल खर्च है, समझाते-समझाते थक गया हूँ, समझ में नहीं आता अब क्या करूँ।

श्री महाराज ने फरमाया के बुजुर्ग होने के नाते से समझाते रहना आपका धर्म है, वह नहीं मानता इसका आप बुरा न माने। हर मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार काम करता है। सात्विकी मनुष्य का विचार होता है—

दे डाल माल सबरा कुछ भी रख कफन को।
जिसने दिया है तन को, वही देगा कफन को॥

राजसी कहता है—

चख डाल माल सबरा, कुछ भी न रख कफन को।
जिसने दिया है तन को, देगा वही कफन को॥

तामसी की रहनी सहनी—

पैदा किया न जोड़ा, खाया सदा मुफ्त का।
जिसने दिया है तन को, वही देगा कफन को॥

१६६—एक मनुष्य ने प्रश्न किया कि सुख के मूल कारण क्या हैं और सुख काहे में है, और उसके साधन क्या हैं ?

श्री महाराज ने फरमाया—

न सुख घोड़े पालकी, न छत्र की छाँहि।
के सुख हरि की भक्ति में, के सन्तन माँहि॥

उसने फिर अर्ज़ किया कि आपने तो साधुओं के सुख के साधन बतलाये। गृहस्थियों के सुख के साधन बतलाइये।

श्री महाराज ने फरमाया—

प्रथम सुख निरोगी काया, दूजे सुख होय घर माया।
तीजे सुख सुलक्षण नारी, चौथे सुख पुत्र अधिकारी॥

लेकिन यह चारों सुख सिर्फ अपने साधन पर निर्भर नहीं हैं बल्कि पूर्व संस्कार भी होने चाहिए।

साधारण रीति से गृहस्थ के सुख की सामिग्री यह मालूम होती है। [१] रहने को घर हो चाहे वह छोटा ही सही। [२] जीवन निर्वाह के लिए

आमदनी का ज़रिया हो, चाहे पैत्रिक सम्पत्ति द्वारा हो, चाहे अपनी कमाई द्वारा। जैसे खेती बाड़ी, बीज व्यौपार, दुकानदारी या नौकरी आदि। लेकिन हो ईमानदारी से पैदा की हुई। अधर्म की कमाई चाहे कितनी भी अधिक हो अन्त में दुखदाई होती है। झूठा और बेईमान अपने संचित शुभ कर्मों के फल को अपनी क्रियमान बेईमानी से नष्ट करता है, गोया अन्न और बिसतर की चिन्ता से मुक्त होना। [३] स्त्री, यह सुख कुदरती चाहता है यानि प्राकृतिक नियमानुसार है अगर स्त्री सुशील हो तो क्या ही बात है, सोने में सुहागा, जिस घर में पुरुष स्त्री से दब कर रहता है उसमें सुख नहीं होता। [४] अच्छा पड़ोसी बैकुण्ठ के समान होता है।

बरू भल बास नरक कर ताता।
दुष्ट संग जनि देइ विधाता॥

(५) सन्तान, बगैर सन्तान के घर अन्धेरा सा समझा जाता है। और गृहस्थी सूनी होती है मनुष्य चाहे जितना भी धनवान गुणवान, विद्वान् हो जिसके सन्तान न हो उस गृहस्थी का मन सुखी नहीं होता। आज्ञाकारी पुत्र सुखदाई होता है सब सुख पैदा कर सकता है।

(६) प्रेम, प्यार जिस घर में, कुटुम्ब में, समाज में प्रेम न हो वहाँ सुख लेश मात्र नहीं माना जाता है, सम्मति प्रेम का अङ्ग है।

जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना।
जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना॥

प्रेम में देना है लेने का विचार तक नहीं। दूसरे के विचारों का और मेल जोल सहनशीलता सब प्रेम का लक्षण है जैसे भी स्वाभाव वाले मनुष्य से पाला पड़े उसके साथ गुजारा कर सके। जो सबसे अलैहदा रहता है न किसी के दुख दर्द का साथी न किसी के खुशी का हिस्सेदार, उसको तो ऐसे समझो जैसे जंगल में वास करने वाला साधन रहित साधू जो दुनियाँ को दुख रूप समझ कर उसको छोड़ कर अकेले में सुख की इच्छा से रहता है लेकिन साधन बगैर सुखी नहीं हो सकता। जो न किसी से प्रेम करे न किसी के प्रेम का पात्र हो वह मनुष्य सर्व दुखी नजर आता है उनको अपना जीवन भी भार रूप होता है। (७) श्रद्धा और आदर जो माता पिता बड़े-बूढ़े हाकिम

गुरु सबका आदर करता है और उनकी आज्ञा का पालन करता है उसका चित्त प्रसन्न रहता है जो दूसरों का आदर नहीं करता वह स्वयं दुखी रहता है बड़ों का आशीर्वाद ही सुख प्राप्त कराता है और मनुष्य फलता फूलता है [८] बराबरी, स्त्री को चाहिये कि पति से बराबरी नहीं करे, संतान माता पिता से बराबरी न करे, चेला गुरु से बराबरी न करे, मातहद हाकिम से बराबरी न करे, न अपने को बराबर समझे। स्त्री का महान सुख पतिव्रत और पति की आज्ञा पालन में है। [९] धर्म या मजहब सुख के आवश्यक कारण हैं धर्म के आचार्य्य, देवता, परमात्मा आदि जिस पर भी श्रद्धा भक्ति हो उस ही रूप से मनुष्य को सुख की प्राप्ति होती है। [१०] पर उपकार आत्म-सर्मपण निस्वार्थ सेवा में चाहे शारीरिक कष्ट हो फिर भी मानसिक सुख बहुत होता है। [११] घर का बड़ा बूढ़ा या स्वामी या पिता और विद्या गुरु कड़े दम और रौब वाले हों, ढ़ीलेपन से स्त्री बच्चे और विद्यार्थी बिगड़ जाते हैं यह लोग कुछ अपराध करें और बच्चा कुमार्ग पर चले या किसी का नुकसान करें तो उनकी हिमायत न करनी चाहिये बल्कि अपने बच्चों को धमकाने से जिसका अपराध किया हो उसका दिल सुख मानता है और झगड़ा मिट कर सुख होता है। हिमायती बच्चे भविष्य में अधिक दुख उठाते हैं [१२] बेकार, उठते बैठते जीवन बिताना सुख नहीं दुख रूप है जैसे मोटर में पेट्रोल भरकर रख दो वह चले नहीं तो गाडी खाने में धरे-धरे ही सब पेट्रोल खतम कर दिया करे इससे शरीर बेकार रोगी और मन मलीन रहता है [१३] सुख की प्राप्ति के जितने भी साधन हैं इन सब में समानता होनी चाहिये। धन सन्तान आदि सब की अधिकता और न्यूनता सुख को दुख रूप बना देते हैं। [१४] लाभ और मनोरंजन पशु पक्षी परिन्दे चिरन्दे भी लाभ और मनोरंजन के लिये पाले जाते हैं इनसे भी सुख होता है जैसे हाथी, घोड़ा, ऊँट, बैल, गदहा, बकरा, बकरी, कबूतर, तीतर, बटेर, कुत्ता आदि-आदि। ताश, चौपड, चोसर, क्रिकेट आदि खेल भी सुख दायक होते हैं [१५] अच्छा स्वास्थ्य वीरता साहस अद्भुत काम और इनके लिये आत्म समर्पण, निःस्वार्थ काम दूर देश की यात्रा से भी सुख प्रतीत होता है। [१६] प्रकृति और स्वभाव के आधीन राजस, तामस गुणों के प्रभाव से जुआ, चोरी, शिकार,

नशावन्दी, मारधाड़ में भी मनुष्य सुख प्रतीत करते हैं [१७] नई सभ्यता और नवीन विचार और नवीन विद्या के आधीन जीवन निर्वाह की सामिग्री भी सुख दायक मानी जाती है [१८] जो काम हाथ में ले उसको जी व जान लगा कर करे। जो अपने बूतेसे ऊपर है उसमें हाथ न डाले वरना सुखके बजाय परेशानी होगी [१९] साधारण जीवन, कम इच्छायें, त्याग, वैराग्य भी सुख दायक हैं। बहुत अकलमंदी छाटने से और सब काम में अगुवा बनने से दुख उत्पन्न होता है [२०] लेकिन अब संसारी सुखों की तह में दुख छिपा हुआ है वह ऐसे प्राप्त होता है जैसे गंदे जल की तहमें रेत आदिमें मैल बैठ जाताहै। [२१] जिनको मनुष्य आज सुखदायक समझता है वह कुछ समय पश्चात सुखदायक नहीं रहते आज जो योग्य वस्तु मानी जाती है कुछ समय बाद वह ज़रूरत की चीज बन जाती है [२२] इनके अतिरिक्त देश काल पात्र, प्रकृत्ति स्वभाव के आधीन और भी साधन और कारण सुख प्राप्ति के हो सकते हैं। [२३] जो लाभ धन और सुख हमने अभी बतलायें हैं इनसे ऊपर परम लाभ, परम धन, परम ज्ञान और परम सुख हैं। जो सन्तोष सत्संग विचार और चित्त शान्ति से प्राप्त होते हैं—

सन्तोषः परमो लाभः, सत्संगः परमो धनम्।
विचारात परमो ज्ञानं, शमं च मरमं सुखम्॥

[२४] सुख मानसी अवस्था है, इसलिए बहुत से ऐसे मनुष्य हैं जो हर हाल में प्रसन्न रहते हैं। वास्तव में मनुष्य वही हैं जो हर हाल में प्रसन्न रहें।

१६७—एक रोज़ सत्संग में गुरु महिमा पर चर्चा होने लगी। सबने अपना-अपना निश्चय और भाव प्रकट किया। एक सेवक ने अर्ज़ किया कि कई शास्त्रों में शंख, चक्र, गदा पद्मधारी भगवान के स्वरूप के दर्शन की महिमा यह लिखी हुई है कि इसके हो जाने से इच्छाओं की पूर्त्ति हो गई, मन वाञ्छित फल और सुख प्राप्त हो गया। जैसे अनन्त चौदस की कथा में कोडल्य ऋषि की और सत्य नारायण की कथा में गरीब ब्राह्मण की। आकाशबाणी, इल्हाम और वही द्वारा भी अमरो, नहीं। अर्थात् विधि निषेध ऐसे ही उपदेश हैं। राजा बलि को भगवान के वामन रूप के और फिर शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी रूप के दर्शन करके भी इन्द्र बनने की इच्छा बनी ही रही। अब इन्द्रासन

खाली नहीं है, जब कभी खाली हो तब ही मिल जाये। उसके द्वार पर ही भगवान विराजमान हैं तब भी उसकी इच्छा मिटी नहीं है। इच्छाओं का नाश तो तब ही होता है जब भगवान गुरु रूप धारण करके उपदेश करते हैं। इच्छाओं के नाश हुए बिना मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। इससे ही गुरु की महिमा का अन्दाज़ा लगा लो, और अनुमान कर लो।

१६८—एक व्यक्ति ने कहा कि आजकल संसार की क्या गति हो रही है कि दूसरे की बदशगुनी करने को अपनी नाक भी कटवा देते हैं, इसका क्या कारण है ?

श्री महाराज ने फरमाया कि इसका मुख्य कारण प्रकृति या स्वभाव है।

[१] तामसी—जो दूसरे का बुरा चाहे, अति तामसी जो अपना नुकसान करके दूसरे का बुरा करे।

[२] राजसी—जो अपना भला चाहे, अति राजसी-जो दूसरे का नुकसान करके अपना भला करे।

[३] सात्विकी—जो दूसरे का भला करे। अति सात्विकी जो अपना नुकसान करके भी दूसरे का भला करे।

१६९—एक सत्संगी ने प्रार्थना की कि हर वस्तु का देश, काल, पात्र से सम्बन्ध होता है—जैसे साधू महात्मा ज्ञानियों से ज्ञान प्राप्त होता है वह लोग काशी, हरिद्वार, हिमालय में रहते हैं ऐसे समय में भी उनसे मिल सकते हैं, इसी प्रकार शराफत का कहाँ स्थान है ?

श्री महाराज ने फरमाया के आप शरीफों का ही स्थान पूछते हैं तो ऐसे लोग हर देश और हर काल में प्राप्त रूप हैं। यदि आप शराफत का निवास स्थान पूछते हैं तो वह धन्यवाद में रहती है। शरीफ हर ज़गह एहसान का धन्यवाद करता है और इसी से उसकी भलेमानसी का पता चलता है। जहाँ धन्यवाद नहीं है वहाँ शराफीयत भी नहीं रह सकती।

मनुष्य एहसान पर एहसान किये जाये उसका बदला देना तो दूर की बात है। यदि एहसान के बदले में धन्यवाद भी न किया जाये तो एहसान का सिलसिला कब तक जारी रह सकता है।

१७०—एक मनुष्य ने सत्संग में अपनी मुसीबतों और दुखों का जिक्र किया कि उनकी वजह से चित्त डांवाडोल रहता है भजन नहीं हो सकता। एक सेवक ने जवाब दिया कि जितने दुखों का आपने वर्णन किया उन सबसे बड़ा दुःख भजन का न हो सकना है रामायण के सुन्दर कांड में हनुमान जी ने श्रीरामचन्द्र जी से अर्ज़ किया है—

"कह हनुमंत विपति प्रभु सोई। जब तब सुमिरन भजन न होई॥"

१७१—एक मनुष्य ने अर्ज़ किया कि न मालूम लोगों ने परमात्मा और खुदा के होने का क्यों हल्ला उड़ा दिया है। संसार के कुल पदार्थों को और मनुष्यों को हम देखते हैं, अगर परमात्मा होता वह भी कभी न कभी और किसी न किसी को दिखलाई तो देता जो देखने का दावा करते हैं वह भी यह नहीं बता सकते कि क्या है और उन्होंने क्या देखा?

श्री महाराज ने फरमाया कि दिन में सूरज की रोशनी और रात में लालटेन और दिये के उजाले से पदार्थों को देखते हैं, लेकिन इन सब प्रकार की रोशनी से घट के भीतर का हाल नहीं देखा जा सकता है। उसके देखने के लिये आत्मा की रोशनी की ज़रूरत है, जब आत्मा रूपी सूर्य प्रकाशेगा तब घट के भीतर का हाल मालूम हो सकेगा। यह जो आपने कहा किसी को तो दिखलाई देता, तो जिसको दिखलाई दिया है उसी से तो परमात्मा के होने का पता चला है कहावत मशहूर है—

ताने बाशद चीज़ के मरदम न ग्वाईद।

यानी जो पदार्थ हो ही नहीं तो उसके होने का ज़िक्र ही कैसे हो सकता है। जिनके घट में प्रकाश हो गया है उन्होंने अनुभव किया है उन्हीं से तो उसके होने का पता चला है। अब रही यह बात कि वह क्या है तो वह नाम रूप से अलग अस्ति, भाँति, प्रिय रूप है। उसके जब रूप ही नहीं तो वर्णन क्या किया जाये, लेकिन उसकी प्रतीति तो होती है जिस-जिस के घट में प्रकाश हो जावेगा उसको परमात्मा की प्रतीति होने लगेगी। जिस प्रकार बहुत तेज़ रोशनी के कारण और सूर्य को थोड़ी देर देखते रहने से आँखें ऐसी चुंधियाँ जाती हैं कि कुछ और नहीं दिखलाई देता। इसी प्रकार परमात्मा

के नाम रूप की वजह से और कुछ नज़र ही नहीं आता लेकिन यह अनुभव प्रिय होता है और उसकी अस्ति का पता देता है।

१७२—एक मनुष्य ने अर्ज़ किया कि आजकल इतना पाप और अत्याचार क्यों बढ़ गया है ? सतयुग में भी तो आखिर मनुष्य ही होंगे उनके विचार इतने शुद्ध और कर्म इतने अच्छे क्यों थे और अब इतने बुरे क्यों हैं ?

श्री महाराज ने फरमाया कि हर शरीर में जीव और परमात्मा यानी खुदी और खुदा दोनों विराजमान हैं। जिसकी खुदी बिल्कुल मिट जाती है वह परमात्मा या ब्रह्म स्वरूप हो जाता है जिसमें खुदी का अंश कम हो जाता है तो उसकी गिनती भले मनुष्यों में होती है। जिसमें खुदी और खुदा समान हों वह साधारण समझा जाता है, उसके कर्म साधारण मनुष्यों के से होते हैं। कुछ बुराई है तो कुछ अच्छाई भी जिसमें खुदी बढ़ जाती है वह अहंकारी और दम्भी बन जाता है। जिसमें से परमात्मा का अंश बिल्कुल निकल जाता है और खुदी ही खुदी रह जाती है वह रावण और हिरण्यकशपु के समान हो जाता है। वह कहता है कि बस मैं ही मैं हूँ। खुदा हूँ तो मैं हूँ, मुझ ही को परमात्मा करके मानो और मुझ ही को पूजो। ऐसे मनुष्यों के व्यवहार और विचारों का वर्णन धार्मिक ग्रन्थों में भरा पड़ा है। परमात्मा का अंश घटने और अहंकार बढ़ने से ही पाप और अत्याचार बढ़ते हैं। ऐसे मनुष्य शैतान बन जाते हैं।

१७३—एक व्यक्ति ने प्रार्थना की कि कल श्री रामायण जी की कथा बाचते समय पण्डित जी ने कहा था कि रामायण पढ़ने से अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष प्राप्त हो जाते हैं तो फिर आप योगादि कठिन क्रिया करने की क्यों आज्ञा देते हैं ?

श्री महाराज ने फरमाया कि बाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के पाँचवें सर्ग के चौथे श्लोक में यह लिखा है—

तदिदं वर्तयिष्यावः, सर्वं निखिलमादितः।
धर्मकामार्थसहितं, श्रोतव्यमनसूयता ॥

आदि से अन्त तक इस सारे काव्य का पूर्ण रूप से गान करेंगे। इसके

द्वारा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पदार्थों की सिद्धि होगी, अतः आप लोग दोष दृष्टि का परित्याग करके इसका श्रवण करें।

पण्डित जी ने मुमकिन है किसी जगह रामायण में देखा होगा कि उसके सुनने और पढ़ने से मुक्ति भी हो सकती है। अलबत्ता रामायण में जो अभ्यास के बारे में लिखा है उसका निदिध्यासन करने से मुक्त होना सम्भव है।

१७४—एक मनुष्य ने प्रश्न किया के भक्ति के ६ रसों की मिसाल देकर बताने की कृपा करें।

श्री महाराज ने फरमाया—

(१) श्रीराम जी और सीता का रमण शृङ्गार रस है।

(२) राजा दशरथ का विलाप करुण रस है।

(३) सूपर्णखाँ विकृत्य हास्य रस है।

(४) लच्मण जी और हनुमान जी के कर्म वीर रस हैं।

(५) रावण इत्यादि के काम रौद्र रस हैं।

(६) मारीच लीला भयानक रस है।

(७ कबन्ध का वृतान्त वीभत्स रस है।

(८) राम रावण का युद्ध अद्भुत रस है।

(९) यह कथा श्रवण करने में सुख होने के कारण शान्ति रस हैं।

१७५—एक व्यक्ति ने प्रश्न किया के आप निदिध्यासन और घट में प्रकाश का उपदेश करते हैं। उसके अभ्यास की विधि बतलाते हैं इससे क्या विशेष लाभ होता है। बाहर रोशनी फैली हुई है और नाना प्रकार के शब्द हो रहे हैं इनको क्यों न देखे और सुने ?

श्री महाराज ने फरमाया यदि आप विचार करें आपके प्रश्न में ही उसका उत्तर छिपा हुआ है। जितने बुरे कर्म जुआ चोरी व्यभिचार आदि हैं वह प्रकाश और हुल्लड़ में नहीं होते बल्कि उनके लिए अन्धेरा और सन्नाटा बड़ा सहायक होता है। ऐसे कर्म करने वाले अन्धेरे और सन्नाटे को ही पसन्द करते हैं। चोर दिन दहाड़े चोरी नहीं करते, और न ऐसे समय में करते हैं जहाँ जागरन हो या मनुष्य बातें कर रहे हों। बल्कि ज़रा सा भी शब्द हो तो

कुकर्मी होशयार हो जाते हैं और ज़रा सी भी रोशनी हो तो भाग जाते हैं। इसी दृष्टान्त को घट में घटाओ, जब तक उसमें अन्धेरा और सन्नाटा है तब तक ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर आदि ठहरे हुए हैं और जब तक घट में अन्धेरा है इसमें स्थित परम आत्मा का दर्शन नहीं हो सकता। भृकुटि और त्रिकुटि आदि ध्यान से जब घट में प्रकाश होता है तब ही घट में विराजमान परम आत्मा का दर्शन होता है और जब अनहद शब्द खुलता है इसकी टंकोर सुन कर ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर के पैर उठ जाते हैं और भगदड़ मच जाती है और अन्त में सब रफूरेट हो जाते हैं।

अनहद बाजे बाजन लागे, चोर नगर यह तजि-तजि भागे।
हुआ प्रकाश शब्द या घट का, जुआरी चोर, व्यभिचारी सटका॥

१७६—एक मनुष्य ने अर्ज किया के भाग और दैव क्या वस्तु हैं? यह सचमुच हैं या कादर और आलसी मनुष्यों ने दैव कल्पित कर लिया है।

श्री महाराज ने फरमाया के वाल्मीकि रामायण अयोध्या काण्ड सर्ग २२ में श्री रामचन्द्र जी ने भाग और दैव के बारे में कहा है कि जो चिन्ता से परे हो उसको भाग कहते हैं। जिसको ब्रह्मा जी भी नहीं मेट सके, उससे लड़ने का कौन साहस कर सकता है। कर्म फल भोगने के सिवाय इसके जानने का और कोई उपाय नहीं है। साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या है। जिन्होंने कठोर तप किया वह भी भाग के वश काम क्रोध में फँस कर भ्रष्ट हो जाते हैं। जिस काम के करने का न तो कभी विचार ही किया जाय और न ही उसके वास्ते कुछ यत्न ही किया जाय, शास्त्र विपरीत हो इतना होने पर भी वह अपने आप यकायक ही हो जाये और जिसको विचार करो और वह न हो बस यही दैव का कर्म समझना चाहिये। बुढ़ापे में राजा तप करने के लिए बन को जाते हैं। स्त्री यदि जाना चाहे तो उसे भी साथ ले जाते हैं। राजा दशरथ ने जवान लड़के को बन जाने का वचन दे दिया। यही भाग और दैव है। अगर कोई कहे के जब सब बात दैव और भाग पर ही निर्भर है तो साधन की क्या आवश्यकता है? इसका यह उत्तर है कि साधन करने से दैव के विषय में सन्तोष हो जाता है।

१७७—एक मनुष्य ने अर्ज किया जहाँ चार बर्तन होते हैं खटके बगैर नहीं

रह सकते हैं। इसलिए लड़ाई झगड़े आपस में सदा से होते चले आये हैं लेकिन पंचायत में कैसे आसानी से मामला सुलझ जाता था न कोर्ट फीस का खर्चा, न वकील की फीस। अब तो ग़रीब आदमी पिट जाय तो भी सर सहला कर रह जाता है। अदालत में नहीं जा सकता। पञ्चायत तो खत्म ही हो गई।

श्री महाराज ने फरमाया कि पञ्चायत तब ही हो सकती है जब पंच निर्पक्ष हों। रिश्तेदार-भाई-बन्धु, मज़हबी किसी तरह का पक्षपात इनमें न हों। मुदई और मुद्दालया सद्भाषी हों, उन सबका भाव हो कि जहाँ पंच वहाँ परमेश्वर। यह दोनों बातें तो मिट सी गई हैं। न पञ्च निर्पक्ष हैं और न ही मुदई, मुद्दालया सद्भाषी हैं। परमेश्वर में तो बहुमत सा ही क्या है, इसलिए पञ्चायत का अब समय ही न रहा। दूसरी बात अदालतों में कोर्टफीस की आमदनी घटती है इसलिए सरकार भी पञ्चायतों की हिमायत नहीं करती और न उनको कुछ अख्त्यारात ही दे रखे हैं। बल्कि जो पुराने अख्त्यार बहिष्कार करना यानि हुक्का पानी बन्द कर देना सामाजिक और वाणिज्य अधिकार हैं बन्द कर देने के पञ्चायत को प्राप्त हैं, उनको भी सरकार मंजूर नहीं करती, बल्के खिलाफ कानून समझती है, तो फिर पंचायत कैसे स्थित रह सकती है। अदालत में मुकदमा आने से कोर्टफीस की आमदनी होती है। एक वकील सच को झूठ बनाने की कोशिश करता है दूसरा झूठ को सच साबित करने की कोशिश करता है। झूठ बोलने वाले मुदई-मुद्दालया और गवाहों के विरोध में कोई कारवाई नहीं होती जो चाहे भरी अदालत में हल्फ उठा कर कह दे। गवाह मिठाई, पूरी खाना खर्चा लेते मूछों पर ताव देते घर लौट आते हैं। वकील साहबान का ठाठ तो देख ही रहे हैं। मुरदा नरक में जाये या बैकुण्ठ में, उनको अपने सफेद या पीले टके से काम है।

"कोई जीये या मरे सुथरा घोल पताशे पीये"

१७८—एक व्यक्ति ने प्रार्थना की कि हिन्दुओं में सगाई का काम नाई ब्राह्मणों के हाथ में था। जो सम्बन्ध वह करते थे इतना मुनासिब होता था कि यह काम बिल्कुल उन्हीं पर छोड़ दिया गया था। विश्वामित्र जी यज्ञ रक्षा के लिए श्रीरामचन्द्र जी को ले गये, वहाँ से सीता स्वयंवर में जनक-

पुर ले गये। वह लोग क्या बात देखते थे, दर असल क्या बातें देखनी चाहिये।

श्री महाराज ने फरमाया कि ब्राह्मण धर्मात्मा ज्ञानी और अनुभवी होते थे, अपनी सूक्ष्म दृष्टि से भूत, वर्तमान और भविष्य का हाल जान सकते थे, और नई सामुद्रिक विद्या में प्रवीण होने से ऊपरी बातें और लक्षण समझ सकते थे। जिस प्रकार और सब बातों में परिवर्तन हो गया है उनमें भी लोभ मोह के कारण तबदीली हो गई है। अब तो वर और कन्या पक्ष के बुजुर्ग जितना कुछ देख सकते हैं वह देख कर सम्बन्ध कर लेते हैं। अब तो इतना ही हो जाय तो ग़नीमत है कि लड़का जवान और शरीर पुष्ट हो। अगर किसी धन्धे रोज़गार से लगा हो तो क्या ही बात है। फिज़ूलखर्च न हो वरना जितना कमायेगा उससे अधिक उठायेगा। कोई व्यसन मसलन जुआ, चोरी, शराब, चरस, अफीम खाने वाला, परस्त्रीगामी न हो, कुलीन घराने का हो। विवाह द्वारा दो अनजान जीव मिलाये जाते हैं। विवाह होते समय तक उनको यह पता नहीं कि आइन्दा क्या करना है। गोया उनका अगामी एक अनजाने समुद्र की यात्रा के समान है जिसका हाल जहाज के कप्तान को ज्ञात नहीं, ज़रा सी असावधानी से जहाज और सब सवारियाँ नष्ट हो सकती हैं। इसलिए ऐसा वर हो जो सावधानी से जीवन निर्वाह कर सके। स्त्री की मोहिनी शक्ति ही इसका बल है और पुरुष का बल ही इसकी मोहिनी शक्ति है। स्त्रियों का स्वभाव कुछ विचित्र होता है इसलिए पुरुष इतना क्षमावान हो कि स्त्री के दोषों पर अधिक ध्यान न दे। बात-बात पर कायँ-कायँ न करें। चश्मपोशी बड़ा गुण है बल्कि स्त्री के सदाचार और गुणों की तरफ ध्यान रखे। बहुत विषयी न हो, अधिक विषय से प्रीति घट जाती है और उपरामता बल्कि घृणा उत्पन्न हो जाती है। स्त्री में क्या-क्या गुण होने चाहिए वह तो श्री रामायण जी तथा अन्य ग्रन्थों में भी लिखे हैं। उसका पतिव्रत धर्म ही एकमात्र ऐसा है कि जिसके समान और कोई गुण नहीं देख पड़ता। स्त्री के लिए मौन शान्ति और शुद्ध आचरण ही बहुमूल्य गहने हैं।

रावण के मारे जाने के बाद जब देवता लोग श्री रामचन्द्र जी की स्तुति करने आये थे तब दशरथ महाराज भी आये थे। उन्होंने सीता जी को यह उपदेश किया—

न त्वं कामं समाधेया भर्तृशुश्रूषणं प्रति।
अवश्यं तु मया वाच्यमेष ते दैवतं परम्॥
बाल्मीकि रा० युद्धकाण्ड सर्गः ११६ श्लो० ३७

"पति-सेवा के सम्बन्ध में भले ही तुम्हें कोई उपदेश देने की आवश्यकता न हो किन्तु इतना तो मुझे अवश्य बता देना चाहिये कि ये श्री राम ही तुम्हारे सबसे बड़े देवता हैं।"

१७६—एक सत्संगी ने अर्ज किया के मैं सरकारी मोटर ड्राईवर हूँ जिस अँग्रेज की सवारी में मोटर है, वह कड़े स्वाभाव का है, हर समय खुर-खुर करता है, जरा भी चूक हो तो गाली गलौंच कर उठता है। यह सरहदी इलाका है, लड़ाई का मौका है किस-किस का ध्यान रखा जाय। होश उड़ रहे हैं दिन में भी डर लगा रहता है। पठान दिन या रात में भी किसी समय भी चलती मोटर में गोली का निशाना न बना दें। सबसे आगे मोटर ड्राईवर ही होता है। मैं तो स्तीफा देना चाहता हूँ मगर युद्ध के कारण स्तीफा मन्जूर न होगा यदि भाग जाऊँ तो फिर पकड़ा गया तो कोर्ट मार्शल होगा। सजा होगी, क्या करूँ कुछ समझ में नहीं आता।

श्री महाराज ने फरमाया कि सारथी का काम बड़ी होशयारी और जिम्मेवारी का काम है। युद्ध भूमि में जय, अजय प्राप्त होने में सारथी का बहुत हाथ होता है। सारथी अच्छा हो तो योद्धा को बड़े-बड़े कष्टों से बचा लेता है।

महाभारत में अर्जुन की विजय का सबसे बड़ा कारण यह था कि भगवान श्रीकृष्ण उसके सारथी थे। जिस प्रकार गुरु अपने चेला की देखरेख रखता है और अशुभ से बचा कर उसको निकालता और शुभ में प्रवेश कराता है इसी प्रकार सारथी को समझो। इसकी बड़ी जिम्मेवारी है रास्ता चलते किसी भय के स्थान में मोटर को हलका कर दें या जहाँ डर हो वहाँ से बचा कर न निकले तो ड्राईवर और सवारी दोनों की जान जोखम में हो सकती है। सारथी को अनेकों बातों पर दृष्टि रखनी चाहिये। देश काल का ज्ञान, शुभाशुभ लक्षण, संकेत, दीनता, हर्ष, खेद, रथी का बल-अबल जानते रहना। रास्ते के ऊंचे नीचे स्थानों को देखना। सम, विषम, टीला, पहाड़, गढ़ा इनका ज्ञान, युद्ध का समय जानना, शत्रु की कमजोरियों को देखते रहना,

किस समय शत्रु सम्मुख या शत्रु के अगल बगल में रथ को ले जाना चाहिये, किस समय पीछे हटना या भगना चाहिये, कब शत्रु के मुकाबले पर ठहरना चाहिये,कब शत्रु के पीछे खड़ा रहना उचित है, घोड़ों का रथ हो तो यह ध्यान रखे कि घोड़े बहुत थक तो नहीं गये, योद्धा लड़ते लड़ते बहुत थक जाये तो इसका बल तेज घट जाये या मूर्छित हो जाये तो रथ और वाहन को युद्धस्थल से हटाना चाहिये आदि आदि। मुमकिन है इस हाकिम की बजाय किसी और के साथ आपकी ड्यूटी लग जाये तो अपने आप ही इससे पीछा छूट जायेगा। धीरता से काम लेना ठीक है।

१८०—एक मनुष्य बहुत दुःखी आँखों में आँसू भरे हुए आये और अपने पिता का स्वर्गवास का हाल कह कर फूट-फूट कर रोने लगे और बोले कि हमारा घर आनन्द से भरा था। पिताजी की आयु करीब साठ बरस हो गई थी, बाल सफेद हो गये थे, मगर स्वास्थ्य बहुत अच्छा था, शरीर हृष्ट-पुष्ट और हट्टा कट्टा था। यह दुःखदायी मृत्यु न मालूम कहाँ से आन मरी, और हमारा आनन्द भवन क्लेश भवन बन गया। तरह-तरह के इलाज किये बहुत धन खर्च किया मगर स्वारथ न लगा, और न किसी का कुछ बस चला।

श्री महाराज ने उनको बहुत धैर्य दिया और समझाया कि यह जीव स्वभाव से ही पराधीन है, अपनी इच्छा अनुसार कार्य करने में समर्थ नहीं। काल कहीं से आता नहीं और सर्वदा वर्तमान, साथ-साथ रहकर इस लोक और परलोक दोनों में अपने बस करके जीव को चलाता है। कोई दूसरा सुख-दुख का कारण नहीं है सब बातें काल के बस होती है जहाँ संयोग हैं वहाँ वियोग भी हैं, जहाँ जीवन है वहाँ मरन है जहाँ संग्रह है वहाँ ही क्षय है, जहाँ उन्नति है वहाँ पतन है। जब फल पक जाता है फिर गिरने के सिवाय उसकी और कोई गति नहीं होती। जन्म लेते समय ही मरने का निश्चय हो जाता है। मजबूत मकान बना हो समय पाकर वह भी गिर जाता है इसी प्रकार बुढ़ापा आना और बाल सफेद हो जाना मरने का नोटिस समझना चाहिये जो दिन या रात बीत जाये, या नदी का जो जल बह गया वह फिर लौट कर नहीं आता है। इसी प्रकार बीती हुई आयु लौट कर नहीं आती जिस तरह से सूर्य की किरणें जल को सुखाती हैं इसी प्रकार रात दिन की चाल प्राणियों को

आयु घटाती है। चाहे मनुष्य बैठा ही रहे, चाहे चलता फिरता रहे। उसकी उम्र घटती ही जाती है क्योंकि आयु का आधार श्वाँसों पर ही है। श्वाँस तो हर हाल में चलते ही रहते हैं, इसलिये अपने लिये शोक करे तो किसी कदर ठीक है दूसरे के लिये शोक की क्या जरूरत है। मृत्यु न आती है न जाती है वह तो साथ में चलती है साथ में बैठती है। मृत्यु से छुटकारा पाने की किसी को सामर्थ्य नहीं। जब खाल में झुरियाँ पड़ गईं, बाल सफेद हो गये बुढ़ापे में देह जर्जर हो गई तब मनुष्य कर ही क्या सकता है। सूर्य उदय होने से आनन्द होता है सूर्य छिपता है तब भी आनन्द होता है, परन्तु इसकी उदय और अस्त की गति प्रतिदिन आयु घटाती जाती है। रेल में जाने वाले मुसाफिरों का जिस प्रकार मेल और बिछोड़ा होता है। वृक्ष से टूटे पत्ते कहीं के कहीं चले जाते हैं नदी में दो काठ के टुकड़े साथ साथ डाल दो थोड़ी दूर साथ बह कर फिर अलग हो जाते हैं। एक कहीं, दूसरा कहीं चला जाता है। इसी प्रकार इस संसार में मिलना बिछुड़ना होता है। इसी प्रकार स्त्री, पुत्र, भाई, बन्धु, यार, दोस्त कुछ काल के लिये परस्पर मिल जाते हैं फिर अलग हो जाते हैं। जिस प्रकार आपस में मुसाफिर और वृक्ष अपने पत्ते अलग होने का शोक नहीं करते हैं इस तरह मनुष्य को भी मरने का शोक नहीं करना चाहिये। मनुष्य किस-किस की याद करे किस-किस को रोवे।

इन बातों पर विचार करके आत्मा को सुख या धन के लिये धर्म कार्य में लगाना उचित है। सुख भोग करने के कारण ही जीवों का जन्म होता है।

आप जैसे सत्सङ्गी को अपने पिताजी के लिये शोक करना उचित नहीं। जैसे यात्री रात में किसी गाँव की चौपाल में ठहरता है वहाँ किसी से कहता है माता पानी पिला दो, भईया थोड़ा ईंधन दे दो और सवेरे उठकर सबका मोह छोड़ कर यात्रा पर चला जाता है इसी प्रकार प्राणी अकेला ही जन्म लेता है अकेला विनाश को प्राप्त होता है। यह हमारा पिता है यह हमारा पुत्र है ऐसा मान कर जो मनुष्य इसमें आसक्त होता है उसको मतवाला समझना चाहिये। विचार करके देखने से कोई भी किसी का नहीं है। थोड़े समय का सम्बन्ध है। ज्ञानवान इसमें आसक्त नहीं होते। पिता तो एक देह का कारण मात्र है। ऋतुमति माता के गर्भ में इकट्ठा होकर मिला हुआ

रज और वीर्य जीव के जन्म का कारण बन जाता है। आपके पिताजी वहीं गये हैं जहाँ उनको निश्चय ही जाना था प्राणियों की प्रवृत्ति इसी प्रकार है।

१८१—एक मनुष्य ने प्रश्न किया कि पड़ौसी और सुहृद तथा बन्धु में क्या अन्तर होता है। उनके साथ हमारा क्या कर्तव्य है।

श्री महाराज ने फरमाया कि पड़ौसी तो वैरी भी हो सकता है, सुहृद और बन्धु भी होता है, जहाँ तक हो सके पड़ोसी से मेल मोहब्बत रखना अच्छी बात है, वजह यह है कि आजकल चोरी आदि हर आपत्ति के समय पड़ौसी जितनी सहायता कर सकता है इतनी दूर रहने वाला मित्र और भाई भी नहीं कर सकता। जीव पद में पड़े हुए और दीनभावापन्न लोगों के ऊपर दया करे और प्रत्युपकार की इच्छा रहित जो उपकार करे वह शुद्ध है और नीति के मार्ग से चलायमान होने पर भी जो सहायता करे वह बन्धु है जैसे कुम्भकरण जानता था कि रावण ने सीताजी को हरा है और रावण को समझाया भी तब भी रावण न माना इतना होते हुए भी रावण को दुखी देखकर अनीति का आचरण करता जान कर भी रावण के वास्ते लड़कर कुम्भकरण ने अपनी जान दी, यह मद होता है। जटायु बिना किसी प्रत्युपकार की इच्छा के रावण से लड़कर मारा गया यह सुहृदयता है।

१८२—एक सत्सङ्गी ने अपने भाई की शिकायत की कि वह जबरदस्त है मेरा हिस्सा नहीं देता। मुझे बहुत सताता है। मैं उसे धाड़े (डाके) वालों से मरवा दूँगा।

श्री महाराज ने फरमाया कि ऐसा कदापि न करना। भाई आखिर भाई है जान से भी मारेगा तो छाया में पटकेगा गैर का भरोसा और विश्वास करना उचित नहीं। इसमें बड़ा कलंक लगता है। जब आखरी दफा मेघनाद यज्ञ करने लगा तो विभीषण जी बन्दरों की सेना और लक्ष्मण जी को साथ लेकर उसका यज्ञ विध्वन्स करने गये तब मेघनाद ने उनको बहुत धिक्कार दी कि तू सगे भाई को छोड़ कर वैरी का सेवक बना है यह काम साधु लोगों में निन्दनीय और शोचनीय है। कहाँ तो बन्धु बान्धवों का वास और कहाँ शत्रु के साथ सहवास। तेरी बुद्धि कार्य अकार्य का विचार करने में असमर्थ

है। इसलिये इन दो बड़ी बातों का अन्तर नहीं समझ सकता। सज्जन गुण रहित और शत्रु गुणवान होने पर भी सज्जन का ही आश्रय लेना ठीक है।

गुणवान् वा परजनः स्वजनो निर्गुणोऽपि वा।
निर्गुणः स्वजनः श्रेयान् यः परः पर एव सः॥

बाल्मीकी युद्धकाण्ड सं ८७ श्लो० १५

उन धाड़ेतियों का भरोसा मत करना। आपके भाई को मार कर फिर आप पर भी हाथ साफ़ कर सकते हैं। जो पराया धन, पराई स्त्री हरता है और जिसके लिए उसके बन्धु बान्धव शंका करते हैं उसका उन्हें तीन में से एक दोष से भी क्षय हो जाता है। जो अपने दोष से आप ही मरे उसको मारने या दूसरों से कतल कराने को क्या आवश्यकता है। विचार करो विभीषण ने रावण से अपमानित होकर या राज के लोभ से श्री रामचन्द्र जी से मिल कर और लंका का सब भेद बतला कर रावण का मरवा दिया, लेकिन रावण को मरा हुआ देख कर बन्धु स्नेह से विभीषण उस समय बहुत रोया और पछताया। मगर "फिर पछताये क्या होत है" इस लिये आप ऐसा खोटा काम कभी मत करना। ऐसा कर्म तो क्या ऐसा विचार करना भी सत्सङ्गी के लिये अयोग्य है। सुनो, धन सम्पत्ति ऐसी वस्तु है कि श्री रामचन्द्रजी को भरत जी पर संदेह हो गया था इसलिये अयोध्या में प्रवेश करने से पहिले हनुमान जी को अयोध्या भेजा था कि आकार से, चेष्टा से, दृष्टि से और वचन से भरत जी के भाव की परीक्षा कर आओ। आपके भाई साहब धन दौलत को देख कर भटक गये तो आश्चर्य की क्या बात है।

१८३—एक मनुष्य ने अर्ज़ किया कि योरुप और अमरीका वाले नाना प्रकार की ईजादें और आविष्कार कर रहे हैं फिर भी उनकी तृप्ति नहीं होती।

श्री महाराज ने फरमाया कि सतवंती स्त्री को जैसा भी पति प्राप्त हो जावे उसको पाकर तृप्त रहती है दूसरे पुरुष की कभी स्वप्न में भी इच्छा नहीं करती और कुचलन स्त्री नित्य छैल छबीले जवानों से मिल कर भी संतुष्ट नहीं होती, उसको हर समय नये पुरुषों से मिलने की इच्छा बनी ही रहती है। यही हाल आविष्कारियों का है। मन का स्वभाव चंचल होने से मनवांछित फल

प्राप्त होने पर भी अगर वह संतुष्ट नहीं होता और भटकता रहता है। इससे स्पष्ट होता है कि सच्चा पदार्थ उसको प्राप्त नहीं हुआ। जिस पुरुष को आनन्द और भोग के नये से नये अनेक पदार्थ प्राप्त होते जाते हैं फिर भी उसकी तृष्णा बढ़ती ही जाती है और वह मनुष्य उसके पीछे इस धुन में लगा ही रहता है कि इससे बढ़ कर कोई और पदार्थ ईज़ाद करूँ। धन प्राप्ति और मान बड़ाई की इच्छा उसे चैन नहीं लेने देती उनका जीवन इसी प्रकार भटकते-भटकते बीत जाता है, धन-दौलत स्त्री-पुत्र मान बड़ाई आदि पदार्थों को पाकर तृप्ति नहीं होने से समझ आती है कि इन अनन्त वस्तुओं और पदार्थों की ईज़ाद आत्मिक भूख को नहीं मिटा सकती। सत उसी का नाम है कि जिसको पाकर और किसी पदार्थ को पाने की इच्छा न रहे और न उपजे।

हिन्दुस्तान के ऋषि मुनियों का आदर्श और वेदान्त की शिक्षा मुक्ति प्राप्ति है। जिसकी प्राप्ति का मार्ग साधन चतुष्टय है। पहली सीढ़ी या साधन सत् और असत् का निर्णय यानी विवेक है। जब असत् पदार्थ का पता लग गया तो उसको त्यागना आवश्यक है। इसको वैराग्य कहते हैं और सत् को ग्रहण करने के लिए षट सम्पत्ति होनी चाहिए। मन का निरोध जिसको सम कहते हैं इन्द्रियों का दमन, सर्दी, गर्मी, भूख प्यास, सुख दुख आदि का सहन तितीक्षा है। श्रद्धा, शास्त्र और गुरु के वचनों पर श्रद्धा की जाय ठीक हैं। अगर श्रद्धा न होगी तो इन पर एक चित्त और दृढ़ भाव से अमल कैसे होगा। चित्त डाँवाडोल रहने से यत्न ठीक प्रकार से नहीं हो सकता।

उपरति—संसार के पदार्थों और विषय भोगों से दिल भर जाना। जैसे रोज़-रोज़ मीठा ही मीठा खाने से मुँह फिर जाता है। चित्त का एकाग्र हो जाना और संशय, शंका और तर्क न उठना, इसको समाधान कहते हैं। उसके पश्चात् मुमुक्षिता है। जिसके कारण उस सत् वस्तु आत्मा का अनुभव करने की तत्पर इच्छा होती है। मुमुक्षु का चित्त किसी संसारी पदार्थ धन, मान, बड़ाई, अहंकार आदि की तरफ नहीं जाता। साधारण उपदेशक तो कह ही रहे हैं कि आविष्कार ठीक रास्ता नहीं है। साधु महात्मा गीता के असूल पर हैं कि किसी को कर्म से मत हटाओ। वह कर्म ही उसका व्याख्यान करेगा। उस कर्म को करते-करते जब थक जायेगा और उससे शान्ति न प्राप्त होगी तब

वह स्वयं ठीक रास्ते पर आ जायेगा। चोर को चोरी का दण्ड और फ़िज़ूल खर्च को (फ़िज़ूलखर्ची) का फल, और शराबी को शराब का परिणाम ही बतला देता है कि यह रास्ता ठीक नहीं है। जिस तरह से कोई भूल कर या हठ से गलत रास्ते पर चलता है तो रास्ते के कांटे ही उसको बतला देते हैं कि इसको छोड़ और दूसरे रास्ते पर चल तब वह सीधे रास्ता की ओर मुड़ता है उस समय उपदेश का मौका होता है और थोड़ा सा उपदेश भी बहुत काम कर जाता है।

१८४—एक मनुष्य ने अर्ज़ किया कि ब्राह्मण, क्षत्री, शूद्र, ऊँच, नीच सब बराबर हैं यह जो हवा आजकल चल रही है उसका क्या परिणाम होगा क्या वास्तव में सब एक हो जायेंगे ?

श्री महाराज ने फरमाया यह तो मानी हुई बात है कि हर बात और हर मामले में सब बराबर नहीं हो सकते। रंग-रूप, शक्ल, बलशक्ति, विद्या-बुद्धि, समझ-बूझ, धन, दानी इन में तो प्रत्यक्ष अन्तर दीख पड़ता है। इनमें समानता हो जाना सम्भव नहीं प्रतीत होता। सभ्यता कहिये या नियम कहिये यह कई प्रकार के होते हैं। १. मनुष्यकृत, २. समाजकृत, ३. राज्यकृत, ४. ऋषिकृत, ५. देवकृत, ६. ईश्वरकृत और ७. आत्म सम्बन्धी। इनमें से मनुष्यकृत तो बहुत ही जल्दी बदलते रहते हैं। समाजकृत में परिवर्तन होता रहता है। राज्य में परिवर्तन होने से राज्यकृत नियम भी बदल जाते हैं, हॉलाकि कानून में सबका अधिकार समान हो सकता है। विशेष अधिकार जब किसी मनुष्य या समाज को दिया जाता है तो दूसरों को ईर्षा पैदा होती है। ऋषिकृत भी देश पात्र के लिहाज से बदलते रहते हैं। मसलन हिन्दुस्तान के ऋषि मुनियों ने जो नियम हिन्दुस्तान पर लागू किये वह यूरोप और अमेरिका के रहने वालों पर नहीं लागू हो सकते, बल्कि सारे हिन्दुस्तान पर भी उनका लागू होना आदि कठिन है। जो नियम, आचार-विचार हिमालय पर्वत पर रहने वालों के लिये बने हैं वह रासकुमारी वालों के लिये नहीं हैं। सरहदी इलाके के कोहाटियों और पेशावरियों के लिये जो नियम स्थापित किये हैं वह बंगालियों और आसामियों के लिये नहीं हैं। इसी प्रकार देवकृत नियम भी काल के आधीन बदल जाते हैं। कहीं सर्दी, कहीं गर्मी तत्वों के लिहाज से इनमें भी परिवर्तन

होता रहता है। ईश्वरीय नियमों में भी परिवर्तन हो जाता है जैसे संसार की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय नक्षत्रों का बनना बिगड़ना सिर्फ आत्म तत्त्व ही ऐसा है कि जिसमें कोई परिवर्तन न कभी हुआ और न अब हो रहा है न भविष्य में हो सकता है। वह सदा एक रस में स्थित हैं। इसलिये ईश्वर प्रार्थना और भजन आदि में ऊँच-नीच, रंग-रूप, जात-पात आदि का कोई विचार नहीं।

"जात पात पूछे नहिं कोई, हर को भजे सो हर का होई"

जो हर का हो गया वह सब का हो गया। ईश्वरकृत वस्तु आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी में भी सब का अधिकार है। आकाश सब को स्थान देता है, वायु में सब स्वांस लेते हैं, सूर्य सब के लिये सामान है। तालाब, नदी से सब जल प्राप्त कर सकते हैं। पृथ्वी में सब को वास और अग्नि करने का अधिकार है। इससे ऊपर आत्म विचार से तो सब उसी आत्मा का अंश है और वह ही सब में बाहिर, भीतर समाया हुआ है।

१८५—एक मनुष्य ने अर्ज़ किया कि अगर जाँच का जाय तो हाल में बीसों मज़हबी संशोधिक निकल पड़ेंगे कोई कहता है कि मूर्त्ति पूजन उल्टा रास्ता है, कोई कहता है कि तान्त्रिक मत खराब है, कोई कहता है भक्ति ढोंग है, कोई कहता है खुदा वहम और गुमान है, कोई कहता है परमेश्वर है ही नहीं, मनघड़न्त बात है। ऐसे मनुष्यों को सुधारिक कहा जाय या बिगाड़िक। जो एक बात और मसला भी जानता है वह दूसरों के विपरीत दिल खोल कर ज़हर उगलता है। जिज्ञासु बड़ी उलझन में पड़ जाता है कि क्या करे और क्या न करे, आपकी इस विषय में क्या राय है।

श्री महाराज ने फरमाया कि मामूली विद्या के तरीके को मिसाल के तौर पर ले· लीजिये कि प्राईमरी, अप्राईमरी और सैकेन्ड्री और कालेज की शिक्षा के लिये अलग-अगल विद्यालय, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय हैं। इनके अतिरिक्त किसी विशेष विद्या या उद्योग को प्राप्त किया जाये तो डाक्टरी, इञ्जियनरिंग, वकालात, युद्ध-शिक्षा, विदेश भाषा आदि के लिये अलग सभा और कालेज और विश्वविद्यालय हैं। हर श्रेणी की शिक्षा के लिये गुरु, शिक्षक, प्रोफेसर अलग-अलग हैं और उनके काम का विभाग भी उसी शिक्षा के

के अनुसार है। अगर कोई प्राईमरी क्लास का मास्टर यह कहे कि शिक्षा तो बस प्राईमरी ही ठीक है, एम. ए., बी. एस. सी. वकालत, इञ्जियनरिंग, डाक्टरी बिलकुल ढकोसला है इनको प्राप्त करना और काम में लाना आना अपनी बुद्धि को खराब करना है। ऐसे स्वास्थ बिगड़ जाता है और दिमाग भटक जाता है। या एम. ए. के प्रोफ़ेसर आदि कहें कि बस शिक्षा तो एम. ए., एम. एस. सी. यानि कालिज की ही ठीक है, यह प्राईमरी शिक्षा तो नीचा काम है और नीचे दर्जे वाले ही इसको प्राप्त करते हैं तो विचारवान उनको क्या कहेंगे। क्या एम. ए. और एम. एस. सी. पढ़ने के लिये प्राईमरी शिक्षा की आवश्यकता नहीं। क्या इसके प्राप्त किए बग़ैर एम. ए. कोई भी पास कर सकता है। क्या हर एक साईनसी विद्यार्थी का यह उद्देश्य नहीं होना चाहिये कि मैं एम.ए. ज़रूर करूँगा, अवस्था और आवश्यकता के अनुसार इञ्जियनरिंग आदि ज़रूर पास करूँगा। जो आज विद्यार्थी हैं वह ही भविष्य में प्रोफेसर या प्रिंसीपल बनेंगे, क्या उसके साथ उनके मुँह से यह कहना शोभा देगा कि प्राईमरी की शिक्षा या किन्डर गार्डन और खेल, कूद द्वारा शिक्षा देना जहालित और मूढ़ विश्वास है। सच्ची शिक्षा तो एम. ए. या एम. एस. सी. ही है बस उसी को आरम्भ में प्राप्त करने का यत्न करें और इसी की पुस्तकें मोल लेकर पढ़ें। जब बालक सात वर्ष का हो तब ही से उसको आगरा कालेज या लखनऊ के मेडिकल कालेज या रुड़की के इञ्जियनरिंग कालेज में पढ़ने के लिये भेज दिया जाये या बरिस्ट्री पास करने के लिये विलायत भेज दिया जाये यदि ऐसा ही किया जाये तो क्या वह विद्यार्थी विद्या उपार्जन कर सकेगा, क्या प्रथम श्रेणी की विद्या प्राप्त किये बग़ैर वह बचपन से ही एम. ए. की किताबें साथ लिये रहने से या एम. ए. क्लास के लेकचर सुनने से वह एम. ए. पास कर सकेगा। बड़े से बड़े महात्मा, गुरु और मज़हबी प्रचारक एक-एक बात को लेकर ऐसे अड़ गये हैं और अड़ रहे हैं कि किसी दूसरे की बात तक सुनने के लिये तैयार नहीं। अगर कोई उनसे वार्तालाप करे या उनका भ्रम दूर करना चाहे तो जो गति बन्दर को उपदेश देने से बईया की हुई उसी गति को प्राप्त हो। कुछ गुरुजन अब हैं और कुछ गुज़र चुके हैं उनके विचार उनके ग्रन्थों से स्पष्ट होता है इसलिये हमारा तो ऐसा विचार है

कि तामसी मनुष्यों को तामस कर्म में लगाने से ही शनैः शनैः उनकी तरक्की हो सकती है। राजसी मनुष्यों को ठीक रास्ते पर लाने के लिये यज्ञ, कर्म, पशु, बलि आदि राजसी कर्म करने चाहिये । आध्यात्म विद्या के जिज्ञासु के जो विचार, योग अभ्यास और ज्ञान की शिक्षा देनी चाहिये। जो सज्जन और गुरुजन देवताओं को नहीं मानते और उनके विपरीत ज़हर उगलते हैं उन्हें या उनके अनुयाईयों की बनाई हुई पुस्तकों से हमारे एक अज़ीज़ ने पढ़ कर सुनाया "सब से ऊँचा देवताओं का देव है जो सारे देवताओं का असली तेज और बल है। जो पाप से परे आनन्द स्वरूप सब से ऊँचा देवताओं का देव है आदि आदि।" इससे स्पष्ट होता है कि देवता भी हैं और उनसे ऊपर देवताओं का देव भी है। अब रही बात पूजन की तो किसी ने मानसी पूजन किया तो किसी ने पुष्प, फल, जल, चन्दन आदि से पूजन किया इसमें तो कुछ हानि नहीं नज़र आती। देवताओं के पूजन वाले भी यही मानते हैं कि यह हनुमान जी हैं, यह भैरों जी हैं, यह सूर्य देवता हैं, यह चन्द्रमा देवता हैं उनको परमेश्वर और परमात्मा तो नहीं कहते । इसी प्रकार सब ही मजहबों और मतों में उस मत और सामाज के स्थापित करने वाला और उपदेशकों ने तरीका और ढङ्ग चला रखे हैं । सिर्फ अपनी राजसी और तामसी वृति के अनुसार जब तक वह दूसरों को बुरा भला न कहलें और नोंक, झोंक न करलें तब तक उनको चैन नहीं पड़ता है । इसमें इनका कसूर भी क्या है स्वाभाव को कोई त्याग नहीं सकता, थोड़ा बहुत असर इसका आ ही जाता है और उनकी असलियत प्रकट हो जाती है। मूर्त्ति पूजन अपने प्यारे की यादगार उसकी इज़्ज़त सच्चे प्रेम और मुहब्बत का परिचय भी हो सकता है। ऐसी सूरत में उसको पितर पूजा भी कह सकते हैं। उनके गुणों की स्मृति पूजक के दिल को ताज़ा रखती है । मानताओं का पूरा होना भक्त के दृढ़ विश्वास का फल है।

१८६—एक मनुष्य ने सवाल किया कि राजा जो कर या टैक्स लेता है उसको कैसे काम में लाना चाहिये।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि राजा के देश और धन के पाँच भाग होते हैं। १. धर्म के वास्ते, २. सेवकों के वास्ते, ३. प्रजा पालन के

के वास्ते, ४. देश और जनता की रक्षा के लिये और ५. राजा उसकी स्त्री और उसके पुत्रों के वास्ते। इनमें से जिस किसी मद में से बचत हो उसको किसी आने वाली ज़रूरत के लिये जमा रखे या किसी खास ज़रूरत से और कामों में कम खर्च करके खास काम में ज़्यादा खर्च करे। जैसे युद्ध के समय अपना खर्चा भी कम करे, यश बढ़ाने और प्रजापालन के कामों में भी कमी करे। राज्य सेवकों को भी कमी के साथ धन दे और इस तरह की हुई बचत से युद्ध के काम को पूरा करे।

१८७—एक रोज इर्शाद हुआ—

साधु सिंघ की एक गति, जीवत ही को खाये।
भाव हीन मृतक समान, वाके पास न जाये॥

१८८—एक मनुष्य ने कहा कि आजकल बड़े-बूढ़ों की समझ न मालूम कैसी हो गई कि बच्चों की झूँठी शिकायत करके माँ-बाप से पिटवाते हैं। सेवा करते जाओ तब भी ढुरफुस लगाते ही रहते हैं।

श्री महाराज ने फरमाया कि आप बिलकुल सच कहते हैं कि पहले "बूढ़ी कहे सो सच और बूढ़ा कहे सो सच" माना जाता था अब "बीबी कहे सो सच, बेटा कहे सो सच" का समय आ गया है। बुढ़ापे में पहले अनुभव बढ़ जाता था अब सठिया जाता है। लेकिन उसी बुढ़ापे की आशा तो आप भी कर रहे हैं। आयु बढ़ेगी तो बुढ़ापा आता ही है। लेकिन यह याद रखना चाहिये कि बड़े बूढ़े खास कर माता-पिता की सेवा मुक्ति का सच्चा साधन है। यह सच्ची भक्ति है। माता-पिता की सेवा से श्रवणकुमार आकाश में सितारा यानि नक्षत्र बन कर स्थित है उसके पास दोनों तरफ दो सितारे और हैं, कहते हैं उसकी माँ और पिता डोली या बेंगी में बैठे हैं।

१८९—एक मनुष्य ने पूछा कि स्वप्न में हम बोलते भी हैं, देखते भी हैं, स्वांस भी लेते हैं और हमारी ज़बान तो बन्द रहती है यह किस ज़बान से बोलते हैं।

श्री महाराज ने फरमाया कि हर मनुष्य के शरीर में चार ज़बानें हैं। १. नाभि में, २. सीने में, ३. गले में और ४. मुँह में। इनके सिलसिले से परा, पश्यन्ति, मध्मा और बैखरी वाणी निकलती है। जाग्रत में बैखरी वाणी

जो मुँह से निकलती है सुनाई देती है। स्वप्न अवस्था में मध्मा सुनी जाती है। सुषोप्ति में पश्यन्ति का अनुभव होता है और तुरिया में परा साक्षी रूप होती है।

१९०—एक मनुष्य ने अर्ज़ किया कि भगवान् ने कर्म और उसका फल साथ रखे। देखने में भी आता है कि जो करता है सो भरता है जब यही बात है, तो महात्माओं को कर्म का फल क्यों नहीं लगेगा। जो कहते हैं कि महात्मा कर्म के फल के भागी नहीं होते यह क्या बात है, उनके साथ यह रियायत क्यों की जाती है।

श्री महाराज ने फरमाया कि मनुष्य हर काम को दया या प्रेम या मोह या मद आदि में करता है। इसलिये जो उपकार भी किसी का करता है वह पर या पराया समझ कर करता है। इसलिये अच्छे या बुरे दोनों प्रकार के कर्मों का फल उसको मिलता है इस बात को तो आप भी मानते हैं महात्मा लोग सब संसार को अपना रूप या अपने समेत सब भगवान् का रूप समझते हैं। जब सब को अपना ही रूप या एक रूप समझ लिया फिर अगर कोई मनुष्य अपने मुँह पर आप थप्पड़ मारे तो उसको क्या सज़ा मिलती है और कौन सज़ा देता है। हालाँकि मारने का कर्म तो ज़रूर हुआ मगर उसका फल नज़र नहीं आता, कौन किसको फल दे उसके शरीर से कर्म इस प्रकार होते हैं जैसे किसी मशीन में से चीज़ें बन-बन कर अपने आप निकलती हैं इस असूल से महात्माओं के शरीर से ईश्वर की इच्छा या होनहार पूर्ण करने के होते हैं। जब अहंग न हो तो कर्म का फल उसके सिर पर कैसे थोपा जाये।

१९१—एक मुसलमान सत्सङ्गी ने पूछा कि आन् हज़ूर ने किसी किताब में पढ़ा है या मालूम किया है कि हज़रत सलअलाह अलह व अलाह वसल्लम (ऊपर का यह शब्द सन्मानार्थ है जैसे कि—श्रीश्री १०८ श्री आदि) का विसाल कैसे हुआ।

श्री महाराज ने फरमाया कि किताब रोज़ातुल असफिया में ऐसा लिखा है कि हज़रत चौदह रोज़ बीमार रहे। बुध के दिन अट्ठासवीं सफर (महीने का नाम है) को सिर में बहुत दर्द हुआ फिर भी हर रोज़ हर एक बीबी

के पास तशरीफ़ ले जाते थे और हमेशा पूछते थे कि कल मैं कहाँ रहूँगा। यह हाल देख कर सब ने कहा कि हम राज़ी हैं कि आप बीमारी तक आशिया के घर में रहें। तब हज़रत एक हाथ हज़रत अब्बास के कन्धे पर, दूसरा हाथ हज़रत अल्ली के कन्धे पर रख कर पाँव ज़मीन पर घसीटते हुए बड़ी तकलीफ से आशिया के घर गये। चौदहवें दिन यानि बारह रबी उल्लअविल (महीने का नाम है) को मल्कुलमोत एराबी की शक्ल में आये और दर्वाज़े पर पुकारे "अस्लामालेकम या हसल उलबैक मैं आऊँ" उसने पासेअदब से ऐसा कहा। हज़रत ने पूछा कि ज़यारत (मिलने) को आये हो या रूह के लिये ? उसने अर्ज़ किया ज़यारत के लिये यकीनन आया हूँ। दूसरी बात आपकी मर्ज़ी पर है। हुकुम हो तो रूह का आसमाने पाक (सतखण्ड) पर ले जाऊँ। अगर यहाँ ठहरना मंज़ूर हो तो फिर जाऊँ। उसी समय जबराइल (धर्मराज) आ पहुँचे। हज़रत ने फरमाया कि कुछ ऐसी खबर सुनाओ कि जान मेरी बंदेग़म से आज़ाद हो। जबराइल ने कहा कि दर्वाज़े आसमान के खुले हैं और फिरशते अगौनी को हाथों में नूर के तबाग लिये आपकी पवित्र आत्मा पर न्योछावर और निसार करने को खड़े हैं। फिर हज़रत ने फरमाया कि कोई ऐसी खुशखबरी दो कि ग़म को मेरे दिल से निकाले। जबराइल ने कहा कि स्वर्ग के द्वार खुले है। हूर व कसूर (परियें) एलीयन (स्वर्ग का महल) में आपके इन्तज़ार में खड़े हैं। फिर हज़रत ने फरमाया कि इससे बड़ी खुशी की खबर दें जिससे नक्शे अन्दो (फिक्र) का मेरे दिल से मिटे। जबराइल ने कहा कि आलमे उल्ल गाइब में यूँ मुकर्रिर हुआ है कि कयामत के दिन अवल ताजे शफात का आपके सिर पर रखा जायेगा और पहला शफी के फल कबूलियत का आपके दरखत (वृक्ष) शफायत से जुदा होगा। यह सुन कर शुक्र खुदा का किया और फरमाया कि वह बात सुनाओ जो गिरह (गाँठ) ग़म की दिल से खुले। जबराइल ने पूछा कि आन् हज़रत किस ग़म में हैं और फिक्र आपकी क्या है कि ऐसी खुश खबरियों से भी ग़म नहीं मिटा।

हज़रत ने जबाब दिया कि तमाम ग़म व अन्देशा उम्मत के वास्ते है कि बाद मेरे इनके काम का क्या सर अन्जाम होगा। जबराइल ने कहा कि खातिर जमा रखिये कि आपसे आगे कोई पेग़म्बर बहिश्त (स्वर्ग) में नहीं

जायेगा और न बहिश्त का दर्वाज़ा तेरी उमित से पहले किसी के वास्ते खोला जायेगा। यह सुन कर हज़रत ने खुश होकर जबराइल से कहा कि तुम जिस काम के लिये आये हो उसे पूरा करो। उस समय निशानियाँ सुकरात की हज़रत के चेहरे पर ज़ाहिर हुईं। सोमवार के दिन यह वाक्या हुआ उस वक्त अबूबक्कर सद्दीक ने खतबा पढ़ा कि जो कोई मुहम्मद रसूल ईलाही सल अल्ला अल्लह, अल्ला वसल्लम् की बन्दगी करता है सो यह जाने कि हज़रत मर गये और जो कोई परवरदिगार आल्म को पूजता है वह हैलायमूत है। न मरा है, न मरेगा।

१६२—एक व्यक्ति ने प्रार्थना की कि आपका मत बड़ा निराला है, योग भी बतलाते हैं, वेदान्त का खुल्मखुल्ला नहीं तो किसी-किसी रूप में उपदेश है ही। मूर्त्ति पूजन के विरोध में तो आपके श्री मुख से कभी एक शब्द भी नहीं सुना। मूर्त्ति पूजन को लाखों, करोड़ों बुरा कहते हैं। आप सब देवी देवताओं का नाम बड़ी श्रद्धा से लेते हैं। यहाँ तक कि मुहम्मद साहब, ईसामसी, श्री दयानन्द सरस्वती, राधास्वामी मत और सब को बड़ा आदर देते हैं।

श्री महाराज ने फरमाया कि हमने कोई नया मत नहीं चलाया जो कुछ ऋषि, मुनि, महात्मा कह आये हैं या बतला गये हैं या वेद, शास्त्र या पुराणों में पढ़ा है उसी को ठीक रास्ता समझते हैं। अपने मन से ऐसा निर्णय नहीं किया कि इनमें जो हमको अच्छा लगे तो ठीक है बाकी ठीक नहीं। हमारा तो ऐसा निश्चय है कि देशकाल मनुष्यों की प्रकृति और अधिकार के अनुसार सब बातें ठीक लिखी हैं और सब ही अधिकार प्रति करने योग्य हैं। रोचक, भयानक, यथार्थ सब ही प्रकार सज्जन जिज्ञासु अपनी हालत विचार और आत्म उन्नति के अनुसार जिसमें उसकी रुचि और श्रद्धा जम जाये वह कर सकता है या इन बातों का विचार करके जो कुछ गुरुजन उपदेश करें वह कर सकता है। जिस वस्तु पर बात का विरोध न हो उसकी शक्ति का पता नहीं चलता। एक नया गढ़ बना हो जब तक किसी वैरी का आक्रमण उस पर न हो तो उसकी मज़बूती और कमज़ोरी का क्या पता हो सकता है लेकिन जब चारों तरफ से उस पर गोले बरसें, नीचे से बारूद की सुरंग लगा कर उड़ाया

जाय, ऊपर से बम्ब छोड़े जायें, सिपाई दावा बोल दें फिर भी किला न गिरे तब तो उसकी पकाई निश्चय हो जाती है। जब से इस संसार का लिखा इतिहास मोजूद है तब तक से ही मूर्त्ति पूजन जारी है और उसका विरोध भी उसी काल से चला आ रहा है। बड़े से बड़े ऋषि, मुनि, आचार्य, साधु, महात्मा, सन्त, पीर, पैगम्बर, ओलिया सब ने ही ऐड़ी से लगा कर चोटी तक का जोर लगा लिया लेकिन मूर्त्ति पूजन का मिटाना तो दर किनारे उसकी जड़ भी कोई हिला न सका। इससे पता चलता है कि इसकी जड़ अथाह है। उसकी थाह भी कोई न पा सका और न ही पता चला सका फिर मिटा तो क्या सकता है पत्ते जरूर नोचे जाते हैं, दो चार डालियाँ भी तोड़ दी जाती हैं, लेकिन पत्तों की क्या बात है वह तो पतझड़ में अपने आप ही झड़ जाते और फिर नये निकल आते हैं डालियों की जगह भी नई कुलें फूट आते हैं, नई डालियाँ बढ़ जाती हैं। इससे प्रकट होता है कि मूर्त्ति पूजन का रास्ता सच्चा है और सचाई को कोई मिटा नहीं सकता, ऐसा समझते हुए हम ऐसे झमेलों में पड़ कर अपना सिर क्यों पिचायें और क्यों दूसरों का दिल दुखायें। श्रीमद्भगवद्गीता जी के अ० ३ श्लो० २९ में लिखा है।

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु।
तानकृत्स्नविदोमन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत ॥

किसी को उसके निश्चित किये हुए कर्म से न हटाये। श्री रामकृष्ण परमहंस जी की मिसाल ले लो। शाक्तमत, मूर्त्ति पूजन, इसलाम, आन्तरिक, अद्वैत वाद सब ही कर छोड़े और अनुभवी महात्मा और परमहंस माने जाते हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष कारणों से भगवान के होने का विचार पैदा होता है और इनमें से पहले एक या दो या तीन की पूर्त्ति हो जाने से उनके दर्शन तथा उसमें तल्लीन होने की भावना पैदा होती है। भोग विलास सुख की प्राप्ति की इच्छा, भय, दुख, मृत्यु आदि के मिटाने में असमर्थता से भी मनुष्य जानता है कि अपने से बड़ी कोई और हस्ती या शक्ति जरूर है वे ही इसकी पूर्त्ति कर सकती है। सूर्य, चन्द्रमा, सागर, पर्वत, आकाश, तारे, अग्नि, वायु, बिजली, मेघ आंधी को देख कर विचार होता है कि न तो मनुष्य ने इन्हें

बनाया और न कोई बना ही सकता है। न मनुष्य के चलाये चलते हैं। इसलिए मनुष्य से ऊपर इनका बनाने वाला, इनको चलाने वाला, जब ज़रूरत न हो तो उनको अन्तर्ध्यान करने वाला कोई न कोई ज़रूर है। मनुष्यों का मरना, तारों का टूट कर गिरना यह बातें मनुष्य के दिल में जिज्ञासा पैदा करती है। जहाँ तक इन्द्रियों की हद है और उससे ऊपर चारों अन्तःकरण से ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करने की तीव्र जिज्ञासा पैदा होती है और कर्म, उपासना, ज्ञान का रास्ता धार्मिक ग्रन्थों में लिखा है या गुरुजनों से प्राप्त करके उनका श्रवण मनन करके निद्धियासन करता है और क्रमशः उन्नति करके ईश्वरीय ज्ञान और आत्म ज्ञान प्राप्त करता है यह विचार कि हम कौन हैं हमारा जीवन क्या अर्थ रखता है, कैसे अन्त हो जाता है, यह जगत क्या है और किसने क्यों बनाया है, क्षण-क्षण में यह तबदीलियाँ कैसे हो रही है, मनुष्य और शास्त्र ईश्वर का वर्णन कर रहे हैं, यह क्या है इसको शुभ विचार या विवेक कहते हैं। ईश्वर से मिलने की तीव्र इच्छा भक्ति है और उससे मिलने, दर्शन प्राप्त करने के लिए जो यत्न किया जाता है वह उपासना है। जब इस पद पर मनुष्य पहुँच जाता है तो इसको इसके आगे का अनुभव होता है। यह कुल चमत्कार ईश्वर की शक्ति का है जिसको माया कहते हैं। पुरुष तो निर्विकार और अकर्त्ता है। देश काल नाम आदि परिछेद से परे दृष्टा रूप है इसको ज्ञान कहते हैं।

१९३—एक मनुष्य ने अर्ज किया कि मेरा दिल इलाज आदि करने को बहुत चाहता है। हिकमत, वैदिक, डाकटरी, होम्योपैथिक कुछ भी मुझे आ जाये तो मेरी इच्छा पूरी हो जाये, लेकिन मैं तो पढ़ा लिखा नहीं हूँ सीखूँ तो कैसे सीखूँ, कोई युक्ति आप बतायें तो बड़ी कृपा होगी।

श्री महाराज ने फरमाया कि दुनियाँ भर के हकीमों में लुकमान की अच्छी गिनती है। वह न्यूबिया के रहने वाले थे, रंग बिल्कुल काला था, बकरियाँ चराते थे। एक मनुष्य ने तीस पैन्स सोने की कीमत पर उन्हें खरीदा था इनके मालिक ने हुकम दिया की एक बकरी काट कर उसका अङ्ग जो सबसे बेहतर है उसे भून कर लाओ। लुकमान बकरी का दिल और जबान भून कर ले गये, कुछ दिन बाद मालिक ने फिर कहा एक बकरी फिर काटो और

उसका सबसे अधम और बुरा अङ्ग भून कर लाओ। लुकमान फिर बकरी का दिल और जबान भून कर ले गये। मालिक ने पूछा कि पहले दिल और जबान को बेहतर अङ्ग समझ कर लाया था अब बदतर अङ्ग मान कर वो ही लाया है। लुकमान ने कहा की जब जबान बुरी बातों से और दिल नक्कारा वचनों से साफ हो तो बुद्धिमानों के नजदीक सबसे उत्तम अङ्ग हैं नहीं तो सबसे अधम है। इस बात से खुश होकर उसने लुकमान को आजाद कर दिया। जब परमात्मा ने उनको हिकमत प्रदान की तो एक दिन बहुत जनता के सामने हिकमत का व्याखान दे रहे थे तो उनके दोस्त अमाम शैहबानी ने पूछा कि तुम हमारे साथ बकरियाँ चराते थे यह हिकमत कहाँ से सीखी और यह पदवी कैसे पाई। लुकमान ने उत्तर दिया कि सच बोलने से और बेकार बातें छोड़ने से और इमानत में खयानत न करने से, आप भी इस पर अमल करके देखिये और अजमाईए।

१९४—एक रोज़ ईर्शाद हुआ कि आलस्य, मद, मोह, चंचलता, गोष्ठी, उदण्डता, सुख की इच्छा अभिमान और लोभ विद्यार्थी के लिए दोष मानें गये हैं।

१९५—एक मनुष्य ने अर्ज किया कि शास्त्र और पुराणों में लिखा है, और साधु महात्माओं के मुख से भी सुना है कि यह संसार भगवान की लीला मात्र है। क्या भगवान बाजीगर या बच्चों की तरह लीला करते हैं।

श्री महाराज ने फरमाया कि योग वासिष्ठ आदि महा ग्रन्थों में तो फुरना मात्र लिखा हैं और श्रुत्रि "एकोऽहं बहू स्याम:" भी यह कहती है कि अत्यन्त सुख का अनुभव करते हुए यह फुरना हुई कि नाना रूप से इस सुख का अनुभव होना चाहिए। गोया यह श्रुति इस संसार की बीज रूप है इसी से सब देवता उत्पन्न हुए।

सुख के असूल को आदेश बना कर चारकान चौरासी लाख योनी उत्पन्न की, चूँकि सब उसी परमात्मा के संकल्प या फुरना से उत्पन्न हुए हैं इसलिये उसके सब गुण इसमें वर्तमान हैं विचार और कर्म की स्वतन्त्रता संकल्प का पूरा होना आदि। अब मिसाल के तौर पर एक लीला को लीजिए लक्ष्मी जी के मन में यह विचार उठा कि मैंने भगवान की भुजाओं का

बनाया और न कोई बना ही सकता है। न मनुष्य के चलाये चलते हैं। इसलिए मनुष्य से ऊपर इनका बनाने वाला, इनको चलाने वाला, जब ज़रूरत न हो तो उनको अन्तर्ध्यान करने वाला कोई न कोई ज़रूर है। मनुष्यों का मरना, तारों का टूट कर गिरना यह बातें मनुष्य के दिल में जिज्ञासा पैदा करती है। जहाँ तक इन्द्रियों की हद है और उससे ऊपर चारों अन्तःकरण से ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करने की तीव्र जिज्ञासा पैदा होती है और कर्म, उपासना, ज्ञान का रास्ता धार्मिक ग्रन्थों में लिखा है या गुरुजनों से प्राप्त करके उनका श्रवण मनन करके निद्धियासन करता है और क्रमशः उन्नति करके ईश्वरीय ज्ञान और आत्म ज्ञान प्राप्त करता है यह विचार कि हम कौन हैं हमारा जीवन क्या अर्थ रखता है, कैसे अन्त हो जाता है, यह जगत क्या है और किसने क्यों बनाया है, क्षण-क्षण में यह तबदीलियाँ कैसे हो रही है, मनुष्य और शास्त्र ईश्वर का वर्णन कर रहे हैं, यह क्या है इसको शुभ विचार या विवेक कहते हैं। ईश्वर से मिलने की तीव्र इच्छा भक्ति है और उससे मिलने, दर्शन प्राप्त करने के लिए जो यत्न किया जाता है वह उपासना है। जब इस पद पर मनुष्य पहुँच जाता है तो इसको इसके आगे का अनुभव होता है। यह कुल चमत्कार ईश्वर की शक्ति का है जिसको माया कहते हैं। पुरुष तो निर्विकार और अकर्त्ता है। देश काल नाम आदि परिछेद से परे दृष्टा रूप है इसको ज्ञान कहते हैं।

१९३—एक मनुष्य ने अर्ज किया कि मेरा दिल इलाज आदि करने को बहुत चाहता है। हिकमत, वैदिक, डाक्टरी, होम्योपैथिक कुछ भी मुझे आ जाये तो मेरी इच्छा पूरी हो जाये, लेकिन मैं तो पढ़ा लिखा नही हूँ सीखूँ तो कैसे सीखूँ, कोई युक्ति आप बतायें तो बड़ी कृपा होगी।

श्री महाराज ने फरमाया कि दुनियाँ भर के हकीमों में लुकमान की अच्छी गिनती है। वह न्यूबिया के रहने वाले थे, रंग बिल्कुल काला था, बकरियाँ चराते थे। एक मनुष्य ने तीस पैन्स सोने की कीमत पर उन्हें खरीदा था इनके मालिक ने हुकम दिया की एक बकरी काट कर उसका अङ्ग जो सबसे बेहतर है उसे भून कर लाओ। लुकमान बकरी का दिल और जबान भून कर ले गये, कुछ दिन बाद मालिक ने फिर कहा एक बकरी फिर काटो और

उसका सबसे अधम और बुरा अङ्ग भून कर लाओ। लुकमान फिर बकरी का दिल और जबान भून कर ले गये। मालिक ने पूछा कि पहले दिल और जबान को बेहतर अङ्ग समझ कर लाया था अब बदतर अङ्ग मान कर वो ही लाया है। लुकमान ने कहा की जब जबान बुरी बातों से और दिल नक्कारा वचनों से साफ हो तो बुद्धिमानों के नजदीक सबसे उत्तम अङ्ग हैं नहीं तो सबसे अधम है। इस बात से खुश होकर उसने लुकमान को आजाद कर दिया। जब परमात्मा ने उनको हिकमत प्रदान की तो एक दिन बहुत जनता के सामने हिकमत का व्याखान दे रहे थे तो उनके दोस्त अमाम शैहबानी ने पूछा कि तुम हमारे साथ बकरियाँ चराते थे यह हिकमत कहाँ से सीखी और यह पदवी कैसे पाई। लुकमान ने उत्तर दिया कि सच बोलने से और बेकार बातें छोड़ने से और इमानत में खयानत न करने से, आप भी इस पर अमल करके देखिये और अजमाईए।

१९४—एक रोज़ ईर्शाद हुआ कि आलस्य, मद, मोह, चंचलता, गोष्ठी, उदण्डता, सुख की इच्छा अभिमान और लोभ विद्यार्थी के लिए दोष मानें गये हैं।

१९५—एक मनुष्य ने अर्ज किया कि शास्त्र और पुराणों में लिखा है, और साधु महात्माओं के मुख से भी सुना है कि यह संसार भगवान की लीला मात्र है। क्या भगवान बाजीगर या बच्चों की तरह लीला करते हैं।

श्री महाराज ने फरमाया कि योग वासिष्ठ आदि महा ग्रन्थों में तो फुरना मात्र लिखा हैं और श्रुत्रि "एकोऽहं बहू स्यामः" भी यह कहती है कि अत्यन्त सुख का अनुभव करते हुए यह फुरना हुई कि नाना रूप से इस सुख का अनुभव होना चाहिए। गोया यह श्रुति इस संसार की बीज रूप है इसी से सब देवता उत्पन्न हुए।

सुख के असूल को आदेश बना कर चारकान चौरासी लाख योनी उत्पन्न की, चूँकि सब उसी परमात्मा के संकल्प या फुरना से उत्पन्न हुए हैं इसलिये उसके सब गुण इसमें वर्तमान हैं विचार और कर्म की स्वतन्त्रता संकल्प का पूरा होना आदि। अब मिसाल के तौर पर एक लीला को लीजिए लक्ष्मी जी के मन में यह विचार उठा कि मैंने भगवान की भुजाओं का

पराक्रम कभी नहीं देखा उसको पूरा करने के लिये लीला रची गई। शास्त्रों में तो नहीं लिखा है मगर शायद भगवान के कोमल अंग और लक्ष्मी जी के स्वरूप को देख कर जय और विजय द्वार पालों के मन में भी कुछ संकल्प उठा हो उस वक्त सनकादिक आदि नारायण के दर्शन को आए और जय विजय को शाप दिया गया। इस संकल्प और लीला को पूरा करने के लिए तीन जन्म धारण करने पड़े। अब विचार कीजिये यह संकल्प भगवान की लीला तो न थी, इसी प्रकार और लीला भी रची जा रही है भगवान कल्प वृक्ष और कामधेनु हैं। इसीलिये हर एक जीव के संकल्प भगवान का अंश होने से पूरे होते हैं।

१८६—एक सत्संगी घर छोड़ने और तीर्थ स्थान में वास करने की बार-बार आज्ञा मांगते थे।

श्री महाराज जी ने फरमाया कि आप अपनी मर्जी से जो चाहें करें हम तो यह चाहते हैं कि आप अपने घर को ही तीर्थ स्थान बनालें तो बेहतर होगा। जिस कर्म में क्लेश न रहता हो, पुत्र बुद्धिमान हो, स्त्री प्रिय भाषणी हो, हैसीयत के मुताबिक धन हो, जिस गृहस्थी की अपनी ही स्त्री में रुची हो, भगवान का पूजन, भजन, कीर्त्तन होता हो साधु, संत, भिखारी को अन्नजल मिलता हो, नौकर चाकर आज्ञाकारी हों, सज्जन पुरुषों से मिलना जुलना और उनके यहाँ आना जाना हो तो ऐसा गृहस्थ आश्रम ही धन्य है। आपको यह सब बातें प्राप्त हैं फिर आप किस तीर्थ पर जाने का बिचार कर रहे हैं। दूसरी आज्ञा शास्त्र की यह है कि पुत्रों को ऋण से मुक्त करके, किसी जीव का प्रबन्ध करके, और योग्य कन्याओं का योग्य वर से विवाह करके फिर मुनि व्रत से वन में रहने की इच्छा करे यह सब काम भी अभी आप नहीं कर पाये फिर तीर्थ वास की धुन कैसे लग रही है। दूसरी बात यह है कि उन स्थिर काम करने वाले मनुष्यों में सुख होता है न अकेले में मनुष्य तो इनके संग से चिल्लाते और संत त्याग से खिन रहता है।

१८७—एक दिन श्रीमहाराज ने यह वचन फरमाये—

(१) अकर्मएय गृहस्थ, और प्रपञ्च में फँसे सन्यासी शोभा नहीं पाते।

(२) वरदान पाना, राज्य प्राप्ति और पुत्र जन्म तीनों सुख एक तरफ, शत्रु के कष्ट से छुटकारा एक बराबर होते हैं।

(३) माता, पिता, अग्नि, गुरु और आत्मा इनकी बड़े यत्न से सेवा करनी चाहिये।

(४) जिसकी पराजय नहीं चाहते हों उसको बिना पूछे भी कल्याण कारी बात बता दो।

(५) आत्मज्ञान, खिन्नता का अभाव, सहनशीलता, धर्म परायणता, वचन की रक्षा और उसका पालन, दान यह गुण अधम पुरुषों में नहीं होते।

(६) सबके साथ कोमलता का वर्ताव करने का फल सब तीर्थों के पुण्य से अधिक होता है।

(७) १—बोलने से न बोलना अच्छा होता है। २—सत्य बोलना मौन से द्विगुण अच्छा है। ३—सत्य से प्रिय सत्य त्रिगुण अच्छा है।

(८) अकुलीन मनुष्य दुष्ट पुरुषों की सहायता से, छल कपट से, निरन्तर के उद्योग से, बुद्धि से, पुरुषार्थ से, धन भले ही प्राप्त कर ले, परन्तु उत्तम कुलीन पुरुषों के सम्मान और सदाचार को वह पूर्ण रूप से नहीं प्राप्त कर सकता। तप, इन्द्रिय संयम, स्वाध्याय, यज्ञ, पवित्र कुल में विवाह, अन्न दान, सदाचार यह सात गुण जिस कुल में वर्तमान हों वह उत्तम कुल कहलाता है।

(९) सज्जन के घर तृण का आसन, बैठने और लेटने को पृथ्वी, ठण्डा जल, मीठी वाणी की कभी कमी नहीं होती।

(१०) मोक्ष की इच्छा रखने वाला, तप, दान, तीर्थ यात्रा, वेद शास्त्रों के फल के पुण्य का आश्रय नहीं लेते। निष्काम भाव से परस्वार्थ करते हुए रागद्वेष से रहित विचरते हैं।

(११) स्त्री, राजा, सांप, सिंह, पढ़ा पाठ, सामर्थवान व्यक्ति, शत्रु, भोग, स्वास्थ्य, अग्नि और आयुष्य पर बुद्धिमान को पूर्ण विश्वास कभी नहीं करना चाहिए।

(१२) ब्रह्मज्ञानी को स्वर्ग तृण है, सूर को जीवन तृण है, इन्द्रियजित को स्त्री तृण तुल्य है। निस्पृह को जगत तृण है।

१९७—एक व्यक्ति ने बड़े दुःख के साथ कहा कि मेरा जीवन बड़ा दुख रूप हो रहा है यह संसार दुख की खान नजर आता है। ऐसे जीवन से मर जाऊँ।

श्री महाराज ने फरमाया कि आपने इस संसार को ऐसा दुखदाई क्यों समझ लिया है, और इस जीवन से ऐसे निराश क्यों हो गये हो। इसमें दुख सुख मिले हुए हैं। अगर दुख है तो उसके साथ या उसके पश्चात सुख भी है और जहाँ सुख है वहाँ दुख भी आ मौजूद होता है। जिस जगह नकारे बजते सुनाई देते हैं कुछ काल पश्चात् वहाँ रोना पीटना भी सुनने में आता है। यहाँ कोई चीज सदा एक रस नहीं रहती मरना मुक्ति नहीं बल्के मुक्ति तो मुक्त होकर जीते रहना है। मरने से आजादी व छुटकारा नहीं बल्के जीवन मुक्त असली छुटकारा और आजादी है। जिस प्रकार सिर्फ नदी पार करने को पुल बनाते हैं और उसी काम में लाते हैं उस पर रहने को मकान नहीं बनाये जाते। पुल की जगह केवल गुजरने के लिये है। इसी प्रकार कर्म फल भोग रूपी नदी से पार उतरने को यह संसार और शरीर पुल रूप हैं, इस शरीर से तैरने और पार उतरने का काम लेना चाहिए। यह तो निश्चय है कि परमात्मा एक ही है और उसकी माया के तीन गुणों से कुल ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है। देश भाषा के भेद से परमात्मा के नाम पृथक्-पृथक् हो सकते हैं और हैं भी, परन्तु उसकी एकता में अन्तर नहीं। जब कुल ब्रह्माण्ड का उत्पत्ति कर्त्ता पिता और उसकी माया रूपी हमारी माता एक ही है तो फिर हम सब एक ही हुए। ऐसी हालत में हमारा जीवन केवल हमारे लिए ही नहीं परन्तु संसार भर के लिए ही होना चाहिए। जब इस परिणाम पर हम पहुँचते हैं तो प्राणी मात्र का दुख सुख जो अज्ञान से पृथक-पृथक दीखता है, ज्ञान रूपी सूर्य के उदय होने से यह भ्रम मिट जाता है तब उसको कोई वस्तु दुखदाई नहीं प्रतीत होती। ऐसी अवस्था को प्राप्त करने के लिए जो यत्न और तरीके बनाये गये हैं उनका आचरण करना ही सच्चा धर्म कहलाता है। मरना तो फरजी अर्थात् कृत्रिम है, अमर तो सचाई है। कोई वस्तु जो

आपको प्राप्त हो उससे अकेले ही सुख न उठाओ, बल्के अपने भाई बन्धु रिश्तेदार और मित्रों तथा संसारी जीवों, खास कर गरीबों, मोहताजों, यतीमों, विधवाओं को सुख पहुँचाओ इससे, आपका सुख बढ़ेगा।

१९८—एक मनुष्य ने पूछा कि योग क्यों किया जाता है और उसके करने में किस बात की आवश्यकता होनी चाहिए।

श्री महाराज ने फरमाया कि जैसे तराज़ू के दोनों पलड़ों को बराबर करने से वस्तु बिल्कुल ठीक तुल जाती है और खाता और वही को सन्तुलित करने से हिसाब में कमी बेशी और भूल चूक का पता चल जाता है उसी प्रकार योग क्रियाओं के करने से शरीर, वाणी, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि आदि सम हो जाती हैं। उनमें समता और स्थिरता होने से दीन दुनियाँ अर्थात् व्यवहार, परमार्थ, प्रवृत्ति, निवृत्ति सब काम ऐसे ठीक चलते हैं जैसे घड़ी की बाल कमानी का पइया ठीक चलने से घड़ी की गति स्थाई हो जाती है। योग में उत्साह और किसी हद तक उद्वेग और व्याकुलता होनी चाहिये। श्री भगवद्-गीता के अ० ५ के श्लोक १२ के अनुसार युक्ति और अ० १७ के श्लोक २९, अ० १२ के श्लोक २० में कही हुई श्रद्धा, अ० १८ के श्लोक ५१-५२-५३ में कही हुई युक्ति के अनुसार काम करना चाहिए।

१९९—एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि मुक्त आत्मा, सन्त, परम-सन्त अपने मुक्त पद आनन्द को त्याग कर इस संसार में क्यों आते हैं, मनुष्यों को उपदेश और उनकी देख रेख में अपना समय क्यों लगाते हैं।

श्री महाराज ने फरमाया कि मुक्त के अर्थ छूटा हुआ रिहा, आज़ाद आनन्दित, बरी, प्रसन्न आदि हैं। किसी मनुष्य के हाथ की हथकड़ी यदि उतार ली जाये, परन्तु पाँव में बेड़ी पड़ी हो तो वह मुक्त नहीं माना जायेगा। या हथकड़ी और बेड़ी उतार ली जायें और वह जेलखाने के अन्दर हो तो भी वह स्वतन्त्र नहीं माना जा सकता। जो महात्मा सर्व सृष्टि को अपना रूप, अपनी आत्मा और अपना ही अंग समझते हैं तो एक उनके ही मुक्त होने से उनका सारा शरीर तो मुक्त नहीं माना जा सकता। जब वह विचार करते हैं कि संसार भर के जो मनुष्य अभी मुक्त नहीं हुए वे भी तो उन्हीं का अंग बल्कि स्वयं वे ही हैं, जब वे फँसे हुए बन्धन में ही हैं तो मुक्तात्मा अपने

आपको प्रसन्न और आनन्दित मान कर कैसे मुक्ति का सुख भोग सकते हैं। वे तो सबके मुक्त होने पर ही पूर्ण मुक्ति समझते हैं। इसी कारण वह रात दिन इसी भावना से प्रभावित होकर काम करते रहते हैं।

२००—एक व्यक्ति ने अर्ज किया कि मेरा मन बड़ा चंचल है रात, दिन मनोरथों में लगा रहता है, बहुत यत्न कर चुका हूँ यह भगवान के चिन्तन में लगता ही नहीं और मरता ही नहीं।

श्री महाराज ने फरमाया कि हर रोज की यह बात है कि मेरा मन खाने को चाहता है, मिठाई चाहता है, सुख भोग चाहता है और भगवान को भी यही मन चाहता है। यदि यह अपने आप मर गया या इस अकेले को अपनी या किसी दूसरे की सहायता से मार डाला तो उसके मरने से क्या संसार की सब प्रकार की चाहना मर जायेगी और संसारी सुखों को चाहना के साथ भगवद् दर्शन और भगवत मिलन की आशा का भी तो अन्त हो जायेगा। इसलिए इस माराधाड़ी का विचार और यत्न करने से पहले उसके परिणाम पर भी ध्यान करने की आवश्यकता है, इसलिए मारने पीटने के विचारों को छोड़ दीजिए। मन को एक तरफ से हटा कर केवल दूसरी ओर लगाने की आवश्यकता है। जब किसी प्रकार की भी इच्छा न रहे न संसारी मनोरथ हों, न भगवद दर्शन की चाह हो तो उस अवस्था में इसका मरना और जीता रहना बराबर है।

२०१—एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि सगुण उपासना में पुष्प, पत्र, जल और फल की आवश्यकता पड़ती है क्या आत्म पूजन में भी किसी सामिग्री की आवश्यकता होती है?

श्री महाराज ने फरमाया कि आत्म पूजन तीन फूलों से होता है। बोध, साम्य और सम।

सम्यक ज्ञान का नाम बोध है अर्थात् आत्मतत्व को ज्यों का त्यों जानना। इस आत्मा को सब में पूर्ण देखने को साम्य कहते हैं और चित्त को निवृत्त करना, आत्मतत्व से बाहर न फिरना सम या साम्यता कहलाता है। आत्मा का ज्ञान अर्चन से पूजन होता है। पूज्य, पूजक, पूजा त्रिपुटि से आत्म देव की पूजा नहीं होती।

२०२—एक व्यक्ति ने अर्ज किया कि आप भजन को ठहर-ठहर कर करने के वास्ते क्यों कहते हैं। घण्टा दो घण्टा लगातार भजन करने में क्या हर्ज होता है ?

श्रीमहाराज ने एक सेवक को बुलाकर पूछा कि आप लगातार भजन करते हैं या कुछ देर ठहर कर। उसने अर्ज़ किया कि कुछ कुछ देर ठहर कर। फिर पूछा ऐसा क्यों करते हो और लगातार करने में क्या हानि दीखती है ?

उसने कहा कि भजन करने से सब इन्द्रियाँ अन्तर्मुख होने लगती हैं और भीतरी विषयों का रस लेती हैं। आँख अन्तर के प्रकाश को देखती है, कान अन्तर के शब्द सुनते हैं, जिह्वा ऊपर से टपकने वाले रस का स्वाद लेती है, नासिका अन्दर से उठने वाली गंध को सूंघती है, स्पर्श का सुख रोम रोम में प्रतीत होता है। यहाँ तक कि जिह्वा अन्दर की तरफ को अपने आप उलटना चाहती है । इस सुख में वृत्ति डूबकर, लय या तन्द्रा का रूप धारण कर लेती है और साक्षी नहीं रहती। जहाँ साक्षीपन मिटा, मन अपना काम उसी प्रकार करने लगता है जैसे वह स्वप्न में करता है। ऐसा होते ही भजन का अभिप्रायः रह जाता है। इस लिए जब इन्द्रियों की वृत्ति अन्दर के रसों में डूबने लगे और चैतन्यता मिटने लगे तो भजन रोक कर सावधान हो जाना चाहिये तथा पढ़ना लिखना सीना पिरोना या और कोई काम ले बैठना चाहिये, परन्तु जो भी काम किया जाये उसी में तन मन बिल्कुल लगा रहे और तरफ को वृत्ति न जाने पाये।

२०३—एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि मूढ़ किस को कहते हैं ?

श्री महाराज ने फरमाया कि स्वयंभूमनु ने मूढ़ के ये लक्षण कहे हैं-

(१) जो शिक्षा का अधिकारी न हो या शिक्षा करने योग्य न हो उसको शिक्षा देता है।

(२) जो धन प्राप्ति के लिये दरिद्री की सेवा करता है।

(३) जो शत्रु की रक्षा करके कुशल चाहता है।

(४) अपने कर्म का अपने मुँह से वर्णन करता है।

(५) अपने से प्रबल मनुष्य से जो वैर ठानता है।

(६) जो नीच और निन्दित कर्म करता है।

(७) जो अश्रद्धालु से गुरु ज्ञान कहता है।

(८) जो गुरु और अपने गोत्र वालों के साथ निन्दित कर्म करता है।

(९) जो अपने पुत्र को त्याग कर मान की इच्छा करता है।

(१०) जो अपना बीज दूसरे के खेत में डालता है।

(११) जो अपनी स्त्री से अपना गुप्त मन्त्र कहता है।

(१२) जो देने का इक़रार करके नहीं देता।

(१३) जो बात का भेद समझे बगैर बकता फिरता है।

(१४) जो कर्म के फल का विचार नहीं करता।

(१५) जो भिखारी या मंगते से क्रोध करके कड़वे वचन बोलता है।

(१६) जो धनवान होकर धन से दान, भोग नहीं करता।

(१७) जो अपने भाई के हिस्से को हड़पना चाहता है।

इनके अतिरिक्त जो लोक परलोक का विचार नहीं करता और समय का लाभ नहीं उठाता वह सबसे बड़ा और महामूढ़ कहलाता है।

२०४— एक रोज यह इर्शाद हुआ कि—

रास्तीमूजबे रजाये खुदा अस्त।
कस न दीदम कि गुम शुदाये रा अस्त ॥

अर्थ—सचाई जो है वह ईश्वरी इच्छा है। हमने किसी को सचाई के रास्ते में गुम होते नहीं देखा।

पड़ोसी भाई-बन्धु, माता-पिता, गुरु, हाकिम, राजा और बादशाह इन सबको राजी रखने से सुख होता है, परन्तु परमात्मा को राजी रखने से परम लाभ और महा लाभ होता है और उसकी रजामंदी रास्ती व सच्चाई से होती है। इसलिए इस युग में परमात्मा को सत्यनारायण कहते हैं। सच्चाई पर चलने वाला कभी भटकेगा नहीं और अपनी मंजिल पर ज़रूर पहुँचेगा तथा अपना आदर्श प्राप्त करेगा।

२०५ —एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि मोक्ष क्या है और उसकी प्राप्ति के क्या साधन हैं। जगत् कैसे भासता और निवृत्त होता है।

श्री महाराज जी ने फ़रमाया कि मनुष्य जीवन का आदर्श और

लक्ष्य मोक्ष है। उसकी प्राप्ति के तीन साधन हैं—पहला अर्थ, दूसरा, धर्म, तीसरा काम।

शरीर के स्वस्थ रखने, इन्द्रियों और मन को सुखी बनाने के लिए भोजन, वस्त्र और घर घोड़े की जरूरत पड़ती है। दुनियाँदारी के सब काम भी इसी में आ जाते हैं। इन जरूरतों के पूरा करने को अर्थ कहते हैं। जन साधनों द्वारा यह जुटाये जायें और अर्थ पूरे किये जायें वह धर्म पूर्वक हों। यह अर्थ अधर्म से भी प्राप्त किये जा सकते हैं, परन्तु उसका नाम अनर्थ होगा। इस प्रकार अर्थ और धर्म द्वारा शरीर को चला कर और कर्म उपासेना साधन आदि के अभ्यास और ज्ञान द्वारा मोक्ष पद को पहुँच कर आदर्श प्राप्त कर लेता है और ब्रह्म में लीन हो जाता है, परन्तु अनगिनत जीव जो अभी छोटी योनि में हैं और वहाँ से धीरे-धीरे कर्म करके ऊपर की योनि प्राप्त करते आ रहे हैं वह भी तो मनुष्य योनि में आने चाहिए। इस योनि में आये बगैर मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए अर्थ और धर्म के अतिरिक्त काम की भी आवश्यकता है। उसका भी समाज के नियम और शास्त्र की आज्ञानुसार सेवन करना होता है। विवाह आदि का दस्तूर इसी नियम को पूरा करने के लिए रखा गया है और उससे जो सन्तान उत्पन्न होगी अपने मोक्ष का मार्ग चलाती रहेगी जैसा पहले से चलता आ रहा है।

उपासना में निर्गुण और सगुण का भेद है। निर्गुण उपासना कष्ट साध्य है इसलिए पहले सगुण उपासना का ही अभ्यास किया जाता है। इसी से ही ध्यान जमाने को मूर्त्ति और चित्र आदि बनाने की प्रथा निकली है। सनातन धर्म में जितने देवी देवता हैं उनके स्वरूप अनुभव से स्पष्ट करके पुराण और शास्त्रों में लिख दिये हैं। ठीक उसी रूप की मूर्त्ति बननी चाहिए तब ही उसकी पूजा और ध्यान हो सकता है। जैसे गणेश जी की मूर्त्ति यदि बिला सूंड बनाई जाये तो गणेश जी का ध्यान कैसे ठीक हो सकता है। इसी लिए कलाकार मूर्त्ति और चित्रकार चित्र के रूप को पहले अपने चित्त में बसा लेता है और उसी मानसी रूप के अनुसार मूर्त्ति धड़ता है, चित्र बनाता है या साँचे में ढालता है। या यूँ कहो कि अव्यक्त को व्यक्त बनाता है और भक्त उस मूर्त्ति की पूजा और ध्यान द्वारा शनैः शनैः मूर्त्ति से अमूर्त्त प्राप्त करता

है। द्वैत से अद्वैत पद को प्राप्त कर लेता है। गोया पहले सामीपय, सारूपक, सायुज्य, मुक्ति प्राप्त कर लेता है और उस निर्मल चिन्मात्र पद में स्थिर हो जाता है। विचार से नतीजा यह निकलता है कि सब संकल्पों से बाहिर और सब संकल्पों का अधिष्ठाता यह अन्धकार रूप जड़ जगत चेतन आत्मा से ही सिद्ध होता है और उसी के द्वारा इसका अभाव होता है। जैसे प्रकाश से ही अन्धकार सिद्ध होता है और प्रकाश से ही अन्धकार का अभाव होता है।

२०६—एक रोज़ इर्शाद हुआ कि दूसरों के मज़हबी, मानसी और आत्मिक सिद्धान्तों का सन्मान करना चाहिए। भूल कर भी कभी उनका निरादर न करे। उनके साथ मिलकर देश-रक्षा, मजहबी आज़ादी, मानसी भ्रातृ सम्बन्ध, परस्पर व्योहार, सामाजिक कल्याण, नागरिक सम्बन्ध, सभ्यता और उन्नति चाहे वह मस्तिष्क हो या ज्ञानोत्पत्ति सब में मिलकर काम करे। जब कभी चित्त दुखी हो, या मोह ग्रस्त हो जाये, या कोई दुर्घटना घट जाय या हिरास हो और घबरा जाये, या निराशा उत्पन्न हो तब श्री भगवद्गीता या ऐसे किसी महान ग्रन्थ को पढ़ें तो यह बातें बड़ा सहारा बन जायें जैसे अर्जुन को बनी थीं।

२०७—एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि यह कैसे पता चले कि भगवान किससे प्रसन्न हैं और किस काम से वे प्रसन्न होते हैं।

श्री महाराज ने फरमाया कि थियेटर कं० का मालिक बहुत से आदमी इकट्ठे करके उनसे तमाशा कराता है जो अच्छा स्वांग भरते हैं और उसको सांगोपांग करके दिखलाते हैं उनसे तमाशा देखने वाले बड़े प्रसन्न होते हैं और तालियाँ पीट कर उस स्वांग की तारीफ करते हैं और अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं। उसी ऐक्टर से कं० का मालिक भी प्रसन्न होता है, उसकी तरक्की भी करता है। इसी प्रकार इस संसार रूपी लीला काण्ड को बनाने वाला परमात्मा भी उस मनुष्य से प्रसन्न होता है जो अपने कर्म और व्यवहार से जनता को प्रसन्न करता है।

२०८—एक व्यक्ति ने पूछा कि हिन्दुओं में यह वर्ण व्यवस्था का झगड़ा कैसे उठ खड़ा हुआ, इससे बड़ी हानि हो रही है।

श्री महाराज ने फरमाया कि समय के हेर फेर से अच्छी बात भी बुरी लगने लगती है और बुरी बात अच्छाई का रूप धारण कर लेती है। संसार भर में चार पदार्थ मुख्य हैं। १. धर्म, २. देश, ३. धन, ४. धंधा। इनमें से जिस एक को जन समुदाय ने ग्रहण कर लिया, उसका पृथक-पृथक नाम पड़ गया। जैसे धर्म सम्बन्धी काम करने और उसके चलाने वाले ब्राह्मण कहलाने लगे। जिन्होंने देश की आन्तरिक और बाहरी रक्षा का काम अपनाया और शस्त्र धारण किये उनका नाम क्षत्री पड़ गया। जिन्होंने धन सम्बन्धी कर्म जैसे कार-व्योहार, खेती-बाड़ी और दुकान सम्भाली वह वैश्य हो गये। जिन्होंने उद्योग धन्धे, लोहा, लकड़ी, ईंट, पत्थर, चमड़ा, रुई, तेल आदि बनाने और घरबार की सफाई का काम हाथ में लिया उस जनसमुदाय ने शूद्र नाम धारण किया और अपने अपनाये काम के लिहाज़ से लोहार, बढ़ई, राज, संतराश, चमार-मोची, जोलाहे, धुनिये, तेली, धोबी, मेहतर, खटीक इत्यादि नामों से जाने गये और अपनी-अपनी मंडली के काम को बड़ी होश्यारी से करने लगे और अपने-अपने काम में निपुणता प्राप्त की। जो मनुष्य जिस काम में सर्वदा लगा रहता है वह उस काम का उस्ताद बन जाता है। जिस मण्डली ने जिस काम को अपनाया उसी के अनुसार उसका नाम हो गया। हर एक व्यक्ति उसी नाम से पुकारा जाने लगा। इस वर्ण व्यवस्था में ऊँचाई-नीचाई, हीनता, लघुता और महानता का कोई सवाल नहीं। अपने अपने सम्भाले और अपनाये काम को ठीक रूप से चलाना ही कर्त्तव्य है।

२०६—एक व्यक्ति ने अर्ज़ किया कि जो भजन और योग की मर्यादा आपने बतलाई है उसमें तो बड़ा कष्ट मालूम होता है। आप कृपा करके जो कुछ भी देना चाहते हैं वह वैसे ही दे दीज़िए।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि चिकने और मैले पात्र में कोई भी अच्छा पदार्थ नहीं डाला जा सकता। पात्र चाहे सादा हो, चाहे कलईदार, चाहे चांदी और सोने का हो, मैले और गन्दे पात्र में दूध, दही, घी आदि भी नहीं डाले जा सकते। यदि कोई डाले भी तो वह पदार्थ खराब हो जाता है। इसलिए पात्र को माजना और साफ करना ज़रूरी है।

२१०–एक दिन सत्संग में यह शेर पढ़े गयेः—

१. चो तायत कुनी लिबासे शाई मपोश।
चूं दरवेश मुखलिस बरावर खरोश॥

२. गुनागार अन्देशानाक अज़खुदा।
बेअज पारसाये, इबादत नमा॥

३. न परहेज़गारो न दानिशवरद।
हमीं बस के दुनियाँ बदी में खुरन्द॥

४. खुरो पोश बखशाये राहत रसां।
निगाह ज़र चे दारी न बैरें कसां॥

५. चे खुद रा कवी हाल बीनी ओखुश।
बशुकराना बादे ज़ईफां बेकुश॥

६. न रेजद खुदा आबरूये कसे।
के रेजद गुनाह आबे चश्मशबसे॥

७. चू आयद बिकोशिश तदवीर पेश।
बतीफ़ीके हक दां न अज़ सइयेखेश॥

८. तो कायम बखुद नेसती यक कदम।
जो ग़ैअज मदद मेरसद दमबदम॥

९. तवानाइये तन मदां अज़ खुरश।
के लुतफे हकत मेदेहद परवरश॥

१०. अगर इज़्ो जो अस्त गैर दिलो कैद।
मन अज़ हक शनासम न अज़ अमरेग़ैर॥

११. न जाअस्त दरबारगाहे ग़नी।
के बेचारगी बेह जो किबरे मनी॥

१२. तकबर कुनद मरदे हशमत परस्त।
न दानद के हशमत बहुकुम अन्दरस्त॥

१३. अज़ हुश्यार आकल न ज़ेबद के दस्त।
ज़नद अजरेबाने नादां मस्त॥

१४. खिरद मंद बाशद जहाँ दीदा मरद।
के बिस्यार गर्म आजमूदस्त सरद॥

१५. जवाने सरअज़् रायेमादर बेताफत।
दिले दर्द मंद चो आज़ज बेताख्त॥

१६. दो तन परवरिशाये किशवर कशा।
यके अहले हिम्मत, दिगर अहले राह॥

१७. कलम ज़न निगाहदार व शमशेर जन ।
न मुतरिब के मर्दे नेआयद जे जंग ॥
१८. जे नाम आवरां गोये दौलत बुरंद ।
के दानां ओ शमशेर - जन परवरंद ॥
१९. मनेह दरम्यान राज ब हरकसे ।
के जासूसे हमकासा दीदम बसे ॥
२०. अगर शैहरयान रा रसाई गज़न्द ।
दरे शैंहर बर रहे दुश्मन मेयन्द ॥
२१. निंगाह बानीये मुलको दौलत बलाअस्त ।
गदा बादशाहत व नामश गदाअस्त ॥

अर्थ १. जब भजन करते हो तो बादशाहों की सी पोशाक मत पहनो । सच्चे साधू की भाँति प्रार्थना करो ।

२. जो गुनहगार परमात्मा का भय मानता है वह उस साधु से अच्छा है जो दिखलावे के लिये तप करता है ।

३. ऐसा करने वाला न परहेज़गार होता है न बुद्धिमान । बस वह तो दुनियाँ के भोग ही भोगता है ।

४. खाओ, पहनो, दान दो और दूसरों को सुखी करो । धन की चौकीदारी करके किसके लिए रखते हो ?

५. जब तुम अपने आपको शक्तिमान, सुखी और खुश देखते हो तो परमात्मा का धन्यवाद करो और कमजोरों को सहारा दो ।

६. जो अपने पापों के प्रायश्चित में रोता है वह बेइज्ज़त कभी नहीं होता ।

७. जब पुरुषार्थ से भलाई सामने आये तो उसे अपने पुरुषार्थ का फल मत समझो बल्कि भगवान् की देन मानो ।

८. तुम में अपने पैर पर खड़ा होने की सामर्थ्य ही नहीं; तुम्हें तो भगवान् की तरफ से कदम-कदम पर सहायता मिल रही है ।

९. ये तुम मत समझो कि भोजन से ही शरीर पुष्ट होता है यह तो भगवान् की कृपा से पल रहा है ।

१०. कोई मान करे या अपमान करे उसको मनुष्य का किया हुआ मत समझो बल्कि यह जानो कि भगवान की ऐसी इच्छा है।

११. भगवान् के दरबार से यह आवाज आ रही है कि घमण्ड और अभिमान से दीनता भली है।

१२. बड़ाई चाहने वाला घमण्ड करता है, वह यह नहीं जानता कि उसकी बड़ाई प्रभु के हुकुम से मिलती है।

१३. समझदार और विचारवान किसी नादान और मस्त से कभी भी हाथा-पाई नहीं करता।

१४. बहुत देशाटन करने वाला बुद्धिमान होता है। क्योंकि उसने गर्म सर्द सबको अज़माया हुआ है।

१५. जवान लड़के को अपनी माता की आज्ञा का विरोध नहीं करना चाहिए और न ही ऐसा व्यवहार करे जिससे उसके दिल को कष्ट हो।

१६. राज को ठीक प्रकार चलाने के लिए राजा को चाहिए कि बहादुर और नेक सलाह देने वालों की पालना करे।

१७. जो कलम और तलवार चलाना जानते हैं, उनसे सम्भल के रहे। नाचने गाने वालों को मुँह न लगाये उनसे बहादुरी नहीं हो सकती।

१८. जो राजा बुद्धिमान और वीरों की रक्षा करता है उसे कीर्ति प्राप्त होती है।

१९. हर किसी से भेद की बात मत कहो क्योंकि साथ बैठकर शराब पीने वाले भी जासूस (भेदिये) होते हैं।

२०. जो राजा प्रजा को तंग करता है, उसके शहर का फाटक शत्रुओं के लिए खुला रहेगा।

२१. राज-प्रबन्ध, धन, और दौलत यह सब बला और बखेड़े हैं। सच्चे फ़क़ीर देखने को तो फ़क़ीर हैं वास्तव में बादशाह हैं।

एक रोज ईर्शाद हुआ कि वैराग्य, भक्ति और ज्ञान ये तीन मुक्ति के साधन हैं। इनमें से तृष्णा हन्ता रूप वैराग्य ही प्रथम है। समस्त मनुष्यों की देह में अहंकार और स्त्री, पुत्र, धन आदि विषयों में ममता होती है। संसार का आम स्वभाव ऐसा है कि स्त्री कुरूपा हो तो मनुष्य उससे कुढ़ा करता है, यदि अत्यन्त रूपवती हो तो उसकी तरफ पर पुरुषों के चुङ्गल में फसजाने का खटका लगा रहता है। मित्र सेवक भिखारी कोई भी पुरुष क्यों न हो अद्भुत रूपवती स्त्री को वह चाह भरी दृष्टि से देखने ही लगता है। इसी तरह स्त्री भी अपने से अधिक रूपवान पुरुष को देख कर उसे मन ही मन में नहीं कूढ़ा करती ? इस प्रकार रूपवती स्त्री का पति ईर्षा से क्षण भर भी चैन नहीं पाता। स्वतन्त्र स्वभाव स्त्री दुश्मन से बढ़ कर ही होती है। अगर वह पर पुरुष की इच्छा करने वाली हो तो ग़ज़ब ही समझना चाहिए।

पुत्र उत्पन्न होने में भी कितना शारीरिक कष्ट व धन का व्यय होता है, फिर उसके जीवित रहने की बड़ी इच्छा रहती है फिर न जाने चोर, मूर्ख, जुआरी, शराबी कैसा हो ? सर्व गुण सम्पन्न पुत्र तो बिरले के ही होता है। वह भी अगर अल्प आयू या रोगी हुआ तो दुख का कारण ही है। जब तक दैव अनुकूल रहता है और सबको सुख पहुँचाता रहता है तभी तक सगे सम्बन्धी होते हैं। उनमें अन्तर पड़ा और उल्टे दुश्मन बने। इस ज़रा से पेट भरने के लिए कितने-कितने अनर्थ करके बहुत साधन कमाने की कोशिश करता है। मगर प्रारब्ध बिना फूटी कौड़ी भी नहीं मिलती। यदि धन मिल भी गया तो चोर और राजा आदि से भय रहता है, और उसको खर्च भी स्त्री, पुत्र और पुत्री का स्वार्थ साधने में किया जाता है।

राजा लोग कैसे-कैसे अनर्थ रूपी करों से और कुकर्मों से धन इकट्ठा करके उसको हाथी, घोड़े युद्ध के लिए खर्च करते हैं और दुश्मनों के हमले से मंत्रियों और सेविकों के षड्यन्त्र से या स्त्रियों द्वारा गुप्त घात से सदा ही चिन्ता सागर में डूबे रहते हैं।

"यह देह काहे का बना हुआ है। इसका विषयों से क्या सम्बन्ध है" इसका बिचार करते रहने से अहमता ममता निवृत्त हो जाती है।

स्त्री व पुरुष के संयोग से रज और वीर्य के मेल से जीव अपने कर्मानुसार गर्भ में आता है। नौ मास तक मलमूत्र और कफ से पूर्ण माँ के गर्भाशय की जठर अग्नि में जलता रहता है। जहाँ रज ही उसका भोजन है। गर्भ उलटा टेडा हो जाये तो तकलीफ का कहना ही क्या है। बच्चा मर भी जाता है। ठीक प्रसव होने पर भी गर्भाशय के तंग द्वार से निकलने में भी बड़ा कष्ट होता है। जन्म के अनन्तर आधि वियाधि, स्वजनों की विपत्ति कला से उसे बड़ा दुख उठाना पड़ता है। चौरासी लाख यौनियों में से भ्रमता हुआ जब मनुष्य योनि में आता है। उस वक्त भी जिनको आत्म और अनात्मा का विवेक और देह की विनाश शीलता का ज्ञान नहीं तो भी भले ही वो बुद्धिमान हो उसकी आयु व्यर्थ ही जाती है। एक-एक श्वांस त्रिलोकी के मूल्य से ज्यादा है। ऐसी अनमोल जिन्दगी यों ही गुजर गयी तो इससे बढ़ कर और क्या हानि होगी। और योनियों में भलीभाँति अपने शरीर की भी सुधि नहीं होती। भूखे प्यासे थके होने पर भी बोझा ढोने वाले पशु अपना कष्ट नहीं कह सकते, इस मनुष्य शरीर पर ही विचार करो चमड़े का एक थैला है जो हड्डी, माँस, खून, चरबी, मज्जा, वीर्य, पित, कफ, थूक, लार, पसीना, मल, मूत्र से भरा हुआ है। इसके नौ द्वार से शरीर के रोम-रोम से मैल निकलता है। मनुष्य को स्वयं अपने शरीर से निकलते हुए मल-मूत्र से घृणा होती है मगर यह नहीं समझ सकता कि यही गन्दगी देह में भरी है परमात्मा ने बड़ी कृपा करके खाल से इसको ढक दिया है, वरना चीटियाँ--ही जीना मुश्किल कर देती। चील, कौवे, गिद्ध, माँस को नोच-नोच के ले जाते। मूढ़ पुरुष शरीर के स्वाभाविक विषयों को छुपाता है और बाहरी गुणों को प्रगट करता हुआ उसकी प्रशंसा करता है। उस पर चन्दन कपूर का लेप करता है। शरीर में घाव हो जाते हैं और दो चार दिन न धोया जावे तो कीड़े पड़ जाते हैं जो शरीर फूलों की सेज पर सुख से सोता है और सिंहासन पर विराजता है वही एक दिन जमीन में गाड़ दिया जाता है या आग में जला दिया जाता है या यूँ पड़े-पड़े सड़ जाता है या कीड़े और जानवर खा जाते हैं। जिस सच्चिदानन्द परमात्मा की सत्ता से यह अनित्य और अपवित्र शरीर चेष्टा करता है उसको भुला कर इस घृणित देह में जो बुद्धिमान अहम्भाव उत्पन्न करता है वह

दूसरे के देह को क्या समझेगा। जिस तरह से मुसाफिर को ठहरने के स्थान और वहाँ के पुरुषों के दुख सुख और उनका धन आने या जाने से राग व द्वेष नहीं होता उसी तरह से अतिथी के समान मुमुक्षु अपने घर में रहे आयापन के अभिमान से शून्य और विषयों से रहित पुरुष अपने घर में रहता हुआ भी कर्मों से बन्धित नहीं होता। क्या हरी घास का जंगल-सफेद बालू का वन-वृक्ष की शीतल छाया--मन्द सुगन्ध शीतल वायु--कलोल करते हुए पक्षी और बहती हुई नदियाँ भी मित्र के समान मनुष्य का दिल नहीं बहला सकतीं। विषय खुद छूटते हैं तो बहुत दिनों तक खटकते रहते हैं क्योंकि उन्हें अपनी इच्छा से छोड़ा जावे तो वह सुख और कल्याण के देने वाले हो जाते हैं। वैराग्य रूपी सौभाग्य के पात्र--प्रसन्नचित्त विषयासक्त है और यथा प्राप्त प्रारब्ध फल भोगने वाला पुरुष इसी जन्म में कृतार्थ हो जाता है।

भक्ति-चित्त में सतोगुण उत्पन्न होने पर ज्ञान बिजली के समान उदय तो हो जाता है मगर वो स्थिर तभी रहता है जब चित्त शुद्ध हो। अन्तःकरण बिना परमात्मा की भक्ति के कभी शुद्ध नहीं होता। जो लोग हरी भक्त से ज्ञानी हुए हैं वो अपने ज्ञान के कारण को समझते हैं मूर्त्ति यानि साकार और अमूर्त्ति भक्ति निराकार दो ही ब्रह्म के रूप उपनिषदों ने कहे हैं। लेकिन भगवद्गीता में कहा है कि अविवेक उपासना की अपेक्षा विवेक उपासना सुगम है। भक्ति स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार की कही गई है। स्थूल भक्ति यह है कि अपने वर्ण आश्रम के धर्म का आचरण करना। भगवान की मूर्त्ति का उत्साह पूर्वक विविध सामग्रियों से पूजन करना। निरन्तर हरी भक्तों का संग करना, भगवत कथा सुनने में अत्यन्त उत्साह रखना, सत्य भाषण करना। पर-स्त्री-पर-धन, पर-निन्दा से दूर रहना। अश्लील बातों से घृणा करना, पुन्य, तीर्थ, स्थानों में जाने के लिये तत्पर रहना, ऐसी चिन्ता करना कि भगवत कथा श्रवण बिना की आयु व्यर्थ ही बीत गई। यह सब स्थूल भक्ति के लक्षण हैं। इसी तरह से स्थूल भक्ति का अभ्यास करते-करते सूक्ष्म भक्ति उदय होती है। जिसके लक्षण ये हैं—स्मृति और पुराणों के सद्वाक्यों से सुनी हुई भगवान की मूर्त्ति के मानस पूजन का अभ्यास, एकांत सेवन, सत्य समस्त प्राणियों में परमात्मा को वर्त्तमान जानना और संपूर्ण प्राणियों से अवरोध और उन पर दया प्रालब्ध उनको स्वल्प लाभ में संतोष रखना। स्त्री

[दोसौ तीन

और पुत्र आदि में ममता शून्य होना। अहंकार और क्रोध से रहित होना। मीठा बोलना, प्रसन्न चित्त रहना, अपनी निन्दा और अस्तुति में समान रहना। सुख दुःख और शीत-उष्ण द्वन्दों को सहना। आपत्ति से भय न करना, निद्रा आहार और व्यवहार में, अनादर में अनासक्त रहना। व्यर्थ वार्त्तालाप के लिये अवकाश न होना। निरन्तर शान्त चित्त रहना भगवद् सम्बन्धि भजन और गीत और बाँसुरी के शब्द से आनन्दित होना। और सात्विक भाव उत्पन्न होना। इस सात्विक भाव में रोक कर रखा हुआ मन परमात्म स्वरूप का अनुभव करता है और उसके स्थिर हो जाने पर चित्त की अवस्था मतवाले हाथी के समान हो जाती है। वह समस्त प्राणियों में भगवान को और भगवान में समस्त प्राणियों को देखने लगता है। ऐसी अवस्था हो जाने पर वह भक्त, भक्तों में श्रेष्ट हो जाता है। भगवान कृष्ण सगुण भी हैं और निर्गुण भी हैं। इन चर्म चक्षु से दृश्य पदार्थ ही जाने जा सकते हैं। इनसे भगवान का निर्गुण स्वरूप दिखाई नहीं दे सकता। वह तो ज्ञान दृष्टि का स्वरूप है अगर वह स्वरूप चर्मचक्षु से दिखाई देता तो श्रीकृष्ण भगवान अर्जुन को और श्रीवेदव्यास जी महाराज संजय को दिव्य दृष्टि क्यों देते बल्कि इससे ही साबित होता है कि श्रीकृष्ण भगवान का रूप अदृश्य था और चर्म दृष्टि से न दिखाई देने के कारण ही दिव्य दृष्टि देने की जरूरत पड़ी थी। जिस तरह से गोलाकार सूरज साक्षात एक देश में दिखलाई देता है किन्तु वह सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करता है। और सबको एक साथ ही सब जगह दिखाई देता है। भक्ति में श्रद्धा, सरलता मृदुलता होनी चाहिये। छोटा निष्कपट बालक किसी से यह नहीं कहता कि मुझे प्यार करो। मगर उसकी सरलता निष्कपटता और भोलापन देखकर चित्त खुदबखुद उसको प्यार करने को चाहता है। इसी तरह से भक्त को भगवान प्यार करते हैं।

आत्मज्ञानः—अगाध विषय जल से भरे हुए इस संसार समुद्र में नौ छेदों वाली नरदेहरूपी नौका है। जो कर्मवायु से प्रेरित होकर इधर-उधर डगमगाती है। इन छेदों के खुले रहने से उसमें विषय रूप जल भर जाता है। और वह डूबती रहती है इन छेदों के रोक देंने से सुख पूर्वक संसार सागर से उस पार पहुँच सकता है। इन्द्रियनिग्रह के बिना इस मिथ्या प्रपंच को कोई पार नहीं कर सकता जिस तरह नदी अपने उत्पति स्थान से नीचे बह कर

समुद्र में जा मिलती है अगर इस उत्पति स्थान पर ही स्थिर रहती तो वही मिलकर समुद्र बन जाती। इसी प्रकार यदि मन बाहरी विषयों में नहीं जावे और अपने कारण का विचार करता हुआ अपने, में आप ही स्थिर हो जावे तो वह स्वयं ही आत्मा बन जायेगा। कुमार्ग की ओर दौड़ते हुए चित रूपी पशु को रोकने के लिये बिधाता ने वैराग्य को ही गले का कंठ बनाया है। समस्त इन्द्रियों को रोक देने पर सैकड़ों उपायों से भी बाहर निकलना असम्भव जानकर चित्त इस तरह शान्त होकर स्थिर हो जाता है। जैसे शेर पिंजड़े में पड़ा हुआ बहुत प्रयत्न निकलने का करके थक कर पड़ जाता है।

(१) प्राणस्पन्द के रोक देने से। (२) सत्संग से। (३) वासनाओं के त्याग से (४) और सच्दिानन्द की भक्ति से, मन धीरे-धीरे अपने वेग को छोड़ देता है। मगर वैराग्य हो जाने पर बिना बुद्धि के आनन्द की प्राप्ति नहीं होती और बोध गुरु के उपदेश से ही होता है। इससे सबसे पहले गुरु की शरण में जाना चाहिये। आत्मा की प्रतीति शास्त्र गुरु और अपने अन्तःकरण इन तीन साधनों से होती है। शास्त्र पढ़कर या किसी से सुनकर ज्ञान हुआ। गुड़ मीठा है फिर गुरु ने बताया कि यह गुड़ है जब उसे खाया तो उसके मिठास का पता लगा। यह साक्षात् या ज्ञान है। इन्द्रिय और देह से किसी पदार्थ का अनुभव नहीं हुआ करता। अगर ऐसा होता तो मरते हुए पुरुष को दाह का दुःख प्रतीत नहीं होता। प्राण से भी अनुभव नहीं होता ; क्योंकि सोते हुए पुरुष का माल चोर लेजावें तो उसकी हानि का उसे ज्ञान नहीं होता।

अगर उन्हें मन का विषय कहें तो वह सबका एक साथ ही अनुभव क्यों नहीं कर लेता। वास्तव में मन भी पराधीन है अगर उसे स्वतन्त्र माना जावे तो उसको प्रारब्ध से कौन बचा सकता है। किसी अँधेरे घर में दिया जलाकर उसके ऊपर ऐसा घड़ा औंधा रख दिया जाये जिस पर पाँच छेद हों और अलग अलग छेद के सामने बीना, कस्तूरी, रतन, पंखा आदि रख दी जावे तो घडे के छेदों से निकलने वाले तेज के अंश से इन विविध पदार्थों का पृथक्-पृथक् ज्ञान होता है। घड़े के छेदों से, मिट्टी से, पातर से, तेलसे बत्ती से, प्रत्यक्ष विरुद्ध होने का कारण इनमें किसीसे नहीं होता है। इसी प्रकार शरीर में भी प्रत्येक ज्ञान का आधार आत्मा है माया सत् असत् से

विलक्षण है । अनादि और सदियों से परमात्मा के आश्रय रहने वाली है। यह त्रिगुणात्मक माया ही चराचर जगत को उत्पन्न करती है। उसके स्वभाव का कुछ पता नही चलता। मुनिजनों द्वारा विचार पूर्वक देखे जाते हैं। यह बिजली के समान तुरन्त अन्तर्ध्यान हो जाती है । यह ब्रह्म के आधीन होने से माया और जीव के आश्रित होने से अविद्या कही जाती है। यह जड़ और चेतन की ग्रन्थि चित्त है। अविद्या से आवृत्त शुद्ध चेतन ही जीव कहलाता है। जैसे कि घट और मठ उपाधि से आवृत्त आकाश भी घटाकाश, मठाकाश कहलाता है। जिस प्रकार सूर्य अपनी ही किरणों से उत्पन्न हुए मेघों से ढ़क जाता है परन्तु मेघ समूह से दिन के दिनत्व में कोई विकार नहीं होता। इसी प्रकार शुद्ध आत्मा चिरकाल तक अज्ञान से आवृत तो रहता है परन्तु प्राणियों में जो लोक प्रसिद्ध चेतना भक्त है उसका अच्छादन नहीं होता। स्थूल शरीर २४ तत्वों से बना है। पञ्चकरण किये हुए पञ्चमहाभूत आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रि, पाँच प्राण और चार अन्तःकरण सूक्ष्म शरीर १७ तत्व से बना है। पाँच प्राण पाँच तन मात्रा पाँच कर्मेन्द्रिय की ताकतें मन, बुद्धि। इस शरीर के अन्दर जो वासनाओं का समूह है वे ही कारण कहलाता है वह मन, बुद्धि, आत्मा का मजमूआ है। उसको अक्षर पुरुष कहते हैं यह कारण शरीर कहलाता है, इस सूक्ष्म शरीर के अन्दर जो लिङ्ग देह है उसके आश्रय है उसको महाकारण समझना चाहिए। बुद्धि में शुद्ध चैतन्य का जो प्रतिबिम्ब है उसी को जीव कहते हैं। जिसके कारण शरीर में "मैं" इसी प्रकार की स्फुरना होती है। यह चैतन्य का प्रतिबिम्ब जीव भाव को प्राप्त हुआ नेत्र आदि इन्द्रियों के द्वारा बाहिर पदार्थों को प्रकाशित करता है, जिस तरह बहते पानी में सूर्य का प्रतिबिम्ब हिलता नज़र आता है इसी प्रकार चित्त की चंचलता से चैतन्य में भी चंचलता प्रतीत होती है। जो भद्र पुरुष ऐसा अनुभव कर लेता है के ब्रह्म मैं हूँ वह विश्व रूप हो जाता है देवता भी उसका पतन नहीं कर सकते, टेडी या सीधी लकड़ी अग्नि से दग्ध हो जाने पर अग्नि रूप हो जाती है। इसी तरह से आत्म निष्ट पुरुष आत्माकार हो जाता है। जिस प्रकार जल से भरे अनेक सकोरों में एक ही सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है, उसी प्रकार एक ही परमात्मा अनेक देहों में भासता है। शकोरा टूटने से सूर्य लय नहीं होता और जल हिलने से सूर्य नहीं हिलता। यह चर अचर

जगत एक ही सूर्य के प्रकाश में अपने समस्त कार्य करता है। उसी प्रकार एक ही आत्मा की सत्ता से सकल ब्रह्माण्ड गति शील हो रहा है। एक ही जल से केला, मोतिया, प्याज़, लहसुन, पोस्त होते हैं। एक ही ईख से गुड़, शक्कर और मिश्री बनती है। एक ही सोने से कङ्गन, कड़े अनेक भेद होते हैं। उसी प्रकार भिन्न-भिन्न स्वभाव अकार और आचरण वाले ऊँच नीच जगत की एक ही आत्मा की सत्ता से हो रहे हैं। बने हुए भोजन को जब तक नहीं खाये तब तक उसके छू जाने का भय और क्षुधा की पीड़ा रहती है। उसको खा लेने पर वह दोनों ही नहीं रहते। गुड़ की भेली में जो मधुरता है वह उसके छोटे से छोटे कण में भी होती है। इसी प्रकार गुड़ और उसकी मिठास में कोई भेद नहीं है। कपूर और उसकी सुगन्धी में भेद नहीं। निद्रा के आरम्भ में और जागने के अन्त में जिस शुद्ध निर्विषय भाव का अनुभव होता है यदि वह अन्तःकरण में स्थिर हो जाये तो उससे अद्वैत आनन्द की प्राप्त होती है। सूर्य के प्रकाश से जैसे मनुष्य अपने-अपने कार्य करते हैं सूर्य कुछ नहीं करता। वैसे ही आत्मा भी न कुछ करता है न कराता है। गर्म लोहे को पीटने से उसमें स्थित अग्नि को चोट नही लगती। लकड़ी को काटने से उसके भीतर रहने वाली अग्नि नही कटती। इसी तरह शारीरिक दुख सुख से आत्मा लिप्त नहीं होता। आत्मा तो साक्षी है। दीपक की रोशनी चोर को न चोरी से रोकती है और न चोरी करने को प्रेरित करती है। घर में यदि कोई दुख हो जाय या कोई पैदा हो तो दीपक को हर्ष शोक नहीं होता। इसी प्रकार आत्मा चित्त और इन्द्रियों को उनके व्यवहार में नियुक्त नहीं करता। वह असंग और उदासीन साक्षि रहता है। दीपक सूर्य, चन्द्र, अग्नि अपने और पराये सबके प्रकाशक हैं। तथापि उनसे प्रकाशित नहीं होता। बल्के उनका भान चक्षु इन्द्रिय द्वारा आत्मा ही से होता है यदि आत्मा सहायक न हो तो प्रकाश होने पर भी चक्षू इन्द्रिय को पदार्थों का ज्ञान नहीं हो सकता। जिस परमात्मा के द्वारा सब कुछ जाना जाता है उसको किससे जाने। आत्मा तो आत्मा ही से जाना जाता है। पुरुष, हाथी, कूकर, शुक्र, ब्राह्मण और चाण्डाल में वह एक ही सच्चिदानन्द को देखता है। वह ही अद्वैत--आनन्द का भोग करता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

दोहो सात

* प्रार्थना *

दिलो जां दीनो ईमां जो लेना हो गुरु ले लो।
करूँगा उजार देने में नहीं चाहे कसम ले लो॥

मरण बिछड़त ही पिया उलट गयो संसार।
चंदा चंदन चांदनी, भये जरावन हार॥

कूक करूँ तो जग हसे, नहीं तो लागे घाव।
ऐसे दुहरे दर्द को, विधना कहा उपाय॥

वही वृन्दावन कुञ्जबन, वही सखा वही ठोर।
एक ऊधव बृजराज बिन, भये और के ओर।

तुम चाहो या मत चाहो, राम याद गुरु राय।
मैं चाहत हूं आपको, प्रेम प्रीत के भाय॥

हम यह दो बोल के हारे हैं—तुम हमारे हो हम तुम्हारे हैं।

तन, मन, धन अर्पण कियो, शरण गही मैं नाथ।
मन भावे सोई करो, लाज तुम्हारे हाथ॥

कोई काहू में मगन, कोई काहू में मगन।
मैं तो वाही में मगन, जामे लागी है लगन॥

बाहरी ग़फलत नहीं है, आज तक इतनी खबर।
कौन है मतलूब मैं, किसके तलबगारों में हूँ॥

साहिब इतना माँगहूँ, के रूखा सूखा देय।
चुपड़ी मागत मैं डरूँ, कहीं रूखी न हर लेय॥

रूखी सूखी खाय के, ठंडा पानी पी।
देख पराई चुपड़ी, मत ललचावे जी॥

न मैं किया न कर सकूँ, साहिब करता मोर।
करन करावन आप है, पल्टू-पल्टू शोर॥

मीन काट जल धोईये, खाये अधिक प्यास।
तुलसी प्रीत सराहिये, मुये मीत की आस॥

प्रीत तो कीजे एक से, जासे मन पतयाय।
ठौर ठौर की प्रीत में, मन कलंक लगजाय॥



flat 37x5 — 1 Ton
flat 50x6m — 1 Ton
Square 1" x 1" = 1 Ton
Angle 2" x 2" x 1/4" — 2 Tons
Sq 16 mm — 3 Tons
Sq 8 mm — 1 T
flat 50x16 — 1 "
flat 40x10 — 1 ton
Round 4" — 1
Channel $2\frac{1}{2}$" — 1
Angle $1\frac{1}{2}$ x $\frac{1}{8}$ 1
10r 25 mm —

Meti